ya Samaj Foundation Chen

अग्नि शिखा

VOL. 20 - 1990 No. 6-11 Vol. 21 No. 1-2,4

G.K.V. Lib.
Hardwar

Domain. Gurukul Kan

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

079501

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Stock Verification-20[illegible]

Stock Verification-20[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्निशिखा

Vol 20
1990
No 6-11
Vol 21
No 1, 2, 4

079501

अखिल भारतीय पत्रिका

जनवरी १९९०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनवरी १९९० वर्ष २०, अंक ६, पूर्णांक २३४

विषय-सूची

सन्देश :		१
'संपादकीय' : तैयारी		२
पाठकों से		३
दैनन्दिनी		४
उपनिषद् की भूमिका	श्रीअरविंद	८
ईशावास्योपनिषद्	श्रीअरविंद	२३
श्रीअरविंद के साथ बातचीत		३६
सोसायटी समाचार		३८
रामकृष्ण वचनामृत		३९

आवरण पृ० १--पुष्प का माताजी का बतलाया हुआ अर्थ :
पूर्ण उत्सर्ग
(सिद्धि का सबसे निश्चित मार्ग)

आपका अग्निशिखा/पुरोधा का चंदा ... में समाप्त हो रहा है। कृपया अग्निशिखा के १० और पुरोधा के १४ शीघ्र भेजें अन्यथा अगला अंक वी. पी. पी. से जायगा। वी. पी. पी लौट आने से हमें बहुत हानि होती है। अलग अनुस्मारक नहीं भेजा जायगा। कृपया चेक न भेजें। चाहें तो २२५ और २७५ एक साथ या किस्तों में देकर अग्निशिखा और पुरोधा के या ५०० देकर दोनों के आजीवन सदस्य बन सकते हैं।

अग्निशिखा वार्षिक १०.०० आजीवन २२५.००

श्रीअरविंद सोसायटी की मासिक पत्रिका

संपादक : रवींद्र, अनुबेन
प्रकाशक : श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी–६०५००२
मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी–६०५००२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि

संदेश

मैं जानता हूं कि यह तुम्हारे लिये और हर एक के लिये कष्ट का समय है। सारी दुनिया के लिये यही बात है। अस्त-व्यस्तता, कष्ट, अव्यवस्था और उथल-पुथल हर जगह व्यापक है—यही व्यापक स्थिति है। जो अच्छी चीजें आनेवाली हैं वे या तो तैयारी कर रही हैं या पर्दे के पीछे विकसित हो रही हैं और जो बुरी चीजें हैं वे ही सब जगह मुखर हैं। करने योग्य बस एक ही चीज है, प्रकाश के आनेतक डटे रहो और बढ़ते चलो।

—श्रीअरविंद

इसपर माताजी की टिप्पणी है : *यह बात लोगों से बार-बार कही जा सकती है। आज की स्थिति में यह असाधारण रूप से सत्य है। डटे रहो और बढ़ते चलो।*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संपादकीय :

तैयारी

नया वर्ष आ गया है। नयी आशाएं, नयी अभीप्साएं दुबकी हुई-सी झांक रही हैं। उन्हें बाहर आकर अपना चेहरा दिखाते हुए भी डर लगता है। ऐसी बातें कहने पर हमें यही उलाहना सुनना पड़ता है कि आश्रम के सुखद एकांत में रहनेवाले हमारी दुनिया की मुश्किलों को क्या समझें, फिर वे हमारी मुश्किलों का समाधान कैसे कर सकते हैं।

बात ठीक भी है, आश्रम में हमें घूस देने या लेने की जरूरत नहीं होती, हमारे यहां भाषा, जाति, प्रान्त या धर्म को लेकर कलह नहीं होता फिर भी आश्रम ब्रह्मांड का एक छोटा-सा पिंड है। यहां बैठे हुए श्रीअरविंद समस्त देशों को, सारे विश्व को भली-भांति देख सकते थे, अपने कमरे में बैठे-बैठे वे मानव मात्र की नाड़ी देख सकते और देखते रहते थे, वे अपने एक पत्र में कहते हैं :

''तुम्हारी कठिनाइयों की अत्यधिक तीव्रता इस कारण है कि योग निश्चेतना की चट्टान से आकर टकरा गया है और व्यक्ति में हो या संसार में, यह निश्चेतना ही आत्मा की और भगवान् के कार्य की विजय में प्रतिरोध की नींव है। कठिनाइयां व्यापक हैं—आश्रम में भी और बाहरी जगत् में भी।

''संदेह, हतोत्साह, श्रद्धा की कमी या क्षय, आदर्श के लिये प्राणिक उत्साह का क्षय, भविष्य के लिये आशा का निष्फल होना या घबराना—ये व्यापक लक्षण हैं, बाहरी दुनिया में कहीं अधिक खराब लक्षण दिखाई देते हैं जैसे कटुता और दोष-दर्शिता का बढ़ाव, किसी भी बात पर विश्वास करने से इंकार, ईमानदारी में कमी, बहुत अधिक भ्रष्टाचार, भोजन, धन, आराम, सुख-सुविधा में तन्मयता, उच्चतर वस्तुओं का बहिष्कार और जगत् पर आनेवाली बुरी-से-बुरी चीजों की आशा और प्रतीक्षा। लेकिन ये सब चीजें चाहे जितनी उग्र हों, हैं सामयिक और अस्थायी, जो लोग जगत्-ऊर्जा और आत्मा की क्रियाओं के बारे में कुछ जानकारी रखते हैं, वे इनके लिये तैयार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। स्वयं मैंने भी पहले ही देख लिया था कि ये बुरी-से-बुरी चीजें आयेंगी। ये उनका काल से पहले का अंधकार है इसलिये मैं इनसे हतोत्साह नहीं होता। मैं जानता हूं कि इस अंधकार के पीछे क्या तैयार हो रहा है। मैं उसके आने के पहले चिह्नों और लक्षणों को देख और अनुभव कर सकता हूं, जो भगवान् की खोज में हैं उन्हें दृढ़ता के साथ खड़ा रहना और अपनी खोज में स्थिर रहना होगा। कुछ समय के बाद अंधेरा कम होने लगेगा और फिर गायब हो जायेगा और प्रकाश का आगमन होगा।''

माताजी से पूछा गया था कि प्रकाश के आने में इतना अधिक समय क्यों लग रहा है? उन्होंने कहा, ''मनुष्य की मूढ़ता ही इसका बड़ा कारण है।''

एक और जगह श्रीअरविंद कहते हैं, ''माताजी की विजय तत्त्वतः हर व्यक्ति की अपने ऊपर विजय है। इसके बाद ही भगवान् का काम सामंजस्य की पूर्णता के साथ बाहरी रूप में प्रकट हो सकता है।

आइये हम इसके लिये तैयारी करें और इसकी तैयारी करते हुए नव वर्ष का स्वागत करें।

पाठकों से

प्रिय पाठक,

नया वर्ष आ रहा है। हर वर्ष की तरह इस वर्ष से भी हम नयी-नयी आशाएं रखते हैं। इकबाल ने कहा है, ''कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी—बरसों रहा है दुश्मन दौरे ज़मां हमारा।'' और यह बात, यह रहस्य क्या है यह श्रीअरविंद ने बतलाया है जब वे कहते हैं कि भारत ने धर्म की पकड़ को कभी नहीं छोड़ा, आत्मा पर विश्वास को ढीला नहीं होने दिया। इसलिये श्रीकृष्ण का वचन हमारे लिये हमेशा सत्य रहता है कि जब कभी मनुष्यों की ओर से पुकार उठती है तो आद्याशक्ति का अवतरण होता है और वह असुरों का कचूमर निकाल देती है। भारत को अपनी आत्मा के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रति, अपनी आत्म-शक्ति के प्रति सच्चा रहना चाहिये। वह शक्ति हमेशा उसे बल देगी और ऊपर उठाएगी। इसी शक्ति ने कठिनतम घड़ियों में भारत की सहायता की है और जब उसे पददलित किया गया, बुरी तरह से कुचला गया, जब ऐसा लगता था कि बस अब यह देश समाप्त हो गया, उसकी गिनती भी उन देशों में हो जायेगी जो कभी चमके थे पर अब संसार से लुप्त हो चुके हैं, तब भी आत्मशक्ति ने उसे बचाया और फिर से खड़ा कर दिया। यह संकल्प-शक्ति किसी भी विधि-विधान, नियति या बल से अधिक शक्तिशाली है।

धर्म पूर्ववर्ती वानरों या बर्बरों की सहज वृत्तियों से नहीं बल्कि छिपे हुए देव के शाश्वत प्रकाश की इंद्रधनुषी किरणों की बाढ़ के रूप में आता है, उसकी परिपूर्ति होती है परम सिद्धि के शुद्ध, शुभ्र प्रकाश में जब सभी प्राणी हमारी आत्मा के अंदर एक हो जायेंगे और हमारी आत्मा अपने सच्चे ऐक्य का अनुभव कर लेगी, तब न कहीं मोह रहेगा न दुःख और शोक, सब कुछ आनंद ही आनंद होगा।

आज चाहे जितना अंधेरा छाया हो, मुसीबतों के चाहे जितने बादल मंडरा रहे हों परंतु धर्म का प्रकाश हमें अवश्य उबार लेगा; परंतु होना चाहिये वह धर्म, मत-मतांतर या 'रिलीजन' नहीं, वह धर्म जिसके लिये पांच हजार वर्ष पहले हमें आश्वासन दिया गया था

''स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्''

इस महान् वचन को दुनिया जहान की कोई शक्ति नहीं झुठला सकती, कमजोर नहीं कर सकती।

दैनन्दिनी

जनवरी

१. अपने विचार में **आध्यात्मिक शक्ति** और **धन** को कभी मत मिलाओ, यह सीधा विध्वंस की ओर ले जाता है।
२. अमीर को भगवान् धन देते हैं, लेकिन गरीब के लिये अपने-आपको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दे देते हैं। सब कुछ इसपर निर्भर है कि गरीब धन को ज्यादा मूल्य देता है या भगवान् को।

३. जो एक है उसे विभक्त मत करो। विज्ञान (सायंस) और आध्यात्मिकता दोनों का एक ही लक्ष्य है—परम देवत्व। उनमें फर्क बस इतना है कि आध्यात्मिकता उसे जानती है और विज्ञान (सायंस) नहीं जानता।

४. तुम्हें एक बात जान लेनी चाहिये और उसे कभी न भूलना चाहिये : रूपांतर के कार्य में जो कुछ सत्य और निष्कपट है उसे हमेशा रखा जायेगा, जो कुछ मिथ्या और कपटपूर्ण है वह गायब हो जायेगा।

५. जबतक तुम्हारे अंदर धैर्य और अटल अध्यवसाय न हो तबतक रूपांतर के पथ पर न चलना ही ज्यादा अच्छा है।

६. स्थिर-शांत रहो और केवल काम के लिये ही नहीं, रूपांतर सिद्ध करने के लिये भी बल और सामर्थ्य जुटाओ।

७. अगर तुम अपने अंदर से उन चीजों का उन्मूलन कर दो जो संसार में भ्रांतिपूर्ण हैं तो संसार भ्रांतिपूर्ण न रहेगा।

८. अस्तव्यस्तता के अंदर भी भागवत व्यवस्था का बीज है।

९. यह केवल आशा नहीं, निश्चय है कि प्रकृति का पूर्ण रूपांतर होगा। ज्योति की विजय पर पूरी श्रद्धा रखो। जड़ पदार्थ और मानव व्यक्तित्व अपने रूपांतर का विरोध करते हैं, उसका शांत धैर्य के साथ सामना करो।—श्रीअरविंद

१०. सहायता करने का सबसे अच्छा तरीका है—धरती पर जो परम चेतना उतरी है उसे अपने अंदर रूपांतर का कार्य करने देना।

११. केवल तभी जब मनुष्य ऐकांतिक रूप से, भगवान् पर निर्भर होंगे, और किसीपर नहीं, अवतार के लिये यह जरूरी न रहेगा कि वह उनके लिये जान दे।

१२. महान् अज्ञान व्यक्ति से अंधकार और विनाश की शक्तियों के सुझावों को उत्तर दिलवाता है। भगवान् की अपार दया के प्रति सच्ची कृतज्ञता के भाव के द्वारा आदमी ऐसे संकटों से बच सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१३. लोग किसी देवता को तब स्वीकारते हैं जब उसके सिर के पीछे प्रकाश का घेरा हो, किसी राजा को तब स्वीकारते हैं जब उसके हाथ में राजदंड हो।

१४. हमें विरोधी शक्तियों को अपनी शरारत करने का अवसर कभी न देना चाहिये—वे जरा-सी निश्चेतना का भी लाभ उठाती हैं।

१५. मां के सभी रूपों में काली सबसे अधिक शक्ति के साथ स्पंदनशील और सक्रिय प्रेम को प्रकट करती हैं और कभी-कभी अपने भयानक रूप के बावजूद वे अपने अंदर सर्वशक्तिमान् प्रेम की स्वर्णिम भव्यता को वहन करती हैं।

१६. अगर धरती पर दिव्य सृष्टि को चरितार्थ करना है तो देवताओं को भी परम प्रभु के प्रति समर्पण करना होगा।

१७. प्रभु अपने विश्व को तभी अपने पूरे अधिकार में लेंगे जब विश्व स्वयं प्रभु बन जायेगा।

१८. हमेशा विरोधी शक्तियों के बारे में सोचते रहना और उनसे डरना बहुत भयानक दुर्बलता है।

१९. समस्त गतिविधियों का ऐकांतिक रूप से भगवान् की ओर मुड़ना कुशल-क्षेम पाने का सबसे अच्छा उपाय है।

२०. सर्वोत्तम सुरक्षा है भागवत कृपा में अचल श्रद्धा।

२१. सच्ची संपदा वह है जिसे मनुष्य भगवान् को अर्पित करता है।

२२. उदारता अपने-आपको देती है और बिना मोल-भाव के देती है।

२३. मिथ्याभिमान से दिया गया उपहार न तो देनेवाले के लिये लाभदायक होता है न पानेवाले के लिये।

२४. हम जिस उत्साह के साथ मन से मिथ्यात्व का त्याग करते हैं उसी उत्साह के साथ शरीर को बीमारी को त्यागना चाहिये।

२५. गलत चीजों की कल्पना करना बंद कर दो तो साथ ही तुम्हारे कष्ट समाप्त हो जायेंगे।

२६. जब भौतिक जगत् भागवत भव्यता को अभिव्यक्त करेगा तब सब कुछ अद्भुत हो जायेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२७. शत्रु के बारंबार आक्रमणों के सामने तुम्हें अपनी श्रद्धा को अक्षुण्ण बनाये रखना और विजय पानेतक सहते जाना चाहिये।

२८. भागवत चेतना तुम्हारा रूपांतर करने के लिये काम कर रही है, उसे अपने अंदर खुलकर काम करने देने के लिये तुम्हें उसकी ओर खुलना चाहिये।

२९. धरती पर इतना अधिक धुंधलापन गिरा है कि केवल अतिमानसिक अभिव्यक्ति ही उसे विलीन कर सकती है।

३०. हर एक के लिये अपने चैत्य को ढूंढ़ना और उसके साथ निश्चित रूप से तादात्म्य पाना अनिवार्य है। अतिमानस अपने-आपको चैत्य द्वारा ही अभिव्यक्त करेगा।

३१. भगवान् हमेशा ही विजयी होते हैं लेकिन अपने तरीके से, मानव तरीके से नहीं, अपनी ही इच्छा से, मानव इच्छा से नहीं।

————

भारत के विश्वास-चिकित्सक अपने मरीजों से कहते हैं कि पूरे विश्वास के साथ अपने-आपसे कहो : मेरे अंदर कोई बीमारी नहीं। मेरे अंदर किसी प्रकार की बीमारी नहीं।'' मरीज इसे बार-बार दोहराता है। इस तरह मानसिक रूप से उसके इंकार करने पर वह बीमारी चली जाती है। इसी तरह, अगर तुम अपने-आपको बहुत ही बीमार, कमजोर और बुरा समझो तो तुम सचमुच वैसे ही बन जाओगे। यह जानो और विश्वास रखो कि तुम बहुत शक्ति पा सकते हो; आखिर तुम्हारे अंदर शक्ति आ जायेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपनिषद् की भूमिका

उपनिषद् भारतीय मानस की सर्वोत्कृष्ट कृति है और यह एक महत्त्वपूर्ण तथ्य उसके अनुपम मानस और आत्मा के असाधारण मोड़ का साक्षी है कि उसकी प्रतिभा की उच्चतम आत्माभिव्यक्ति, उसका श्रेष्ठतम काव्य, उसके विचार और शब्द की बड़ी-से-बड़ी रचना कोई साधारण कोटि की साहित्यिक या काव्यात्मक उत्कृष्टतम कृति न होकर इस प्रत्यक्ष और गभीर स्वरूपवाले आध्यात्मिक अंतःप्रकाश की बाढ़ हो। गभीरतम आध्यात्मिक अनुभूतियों का अभिलेख होने के नाते उपनिषद् एक ही साथ गभीर धार्मिक पवित्र ग्रंथ, अक्षय प्रकाश, शक्ति और विशालता के अंतःप्रकाशात्मक और अंत-र्भासात्मक दर्शन के प्रलेख हैं। ये चाहे पद्य में लिखे गये हों या लयात्मक गद्य में पर हैं चरम, अविरत प्रेरणा की आध्यात्मिक कविताएं, अपनी शैली में अपरिहार्य, अभिव्यंजना और लय में अद्‌भुत। यह ऐसे मन की अभिव्यक्ति है जिसमें दर्शन, धर्म और काव्य एक बना दिये गये हैं क्योंकि यह धर्म एक संप्रदाय के साथ समाप्त नहीं हो जाता और न ही वह धार्मिक-नैतिक अभीप्सा में सीमित है। वह भगवान् की, स्व की, हमारी आत्मा और सत्ता की उच्चतम और पूर्ण सद्‌वस्तु की अनंत खोज की ओर उठता है और ज्योतिर्मय ज्ञान के आनंद तथा प्रेरित और परिपूर्ण अनुभूति के आनंद से भरकर बोलता है। यह दर्शन सत्य के बारे में कोई अमूर्त भौतिक चिंतन या न्यायसंगत बुद्धि की रचना नहीं है। वह है देखा हुआ, अनुभव किया हुआ, जिया हुआ, अंतर्तम मन और अंतरात्मा में निश्चित शोध और स्वत्व के कथन के आनंद में संजोया हुआ सत्य। यह काव्य सौंदर्य-बोधात्मक मन की कृति है जो विरलतम आध्यात्मिक आत्म-दर्शन और आत्मा और भगवान् और विश्व के गभीरतम प्रबुद्ध सत्य के आश्चर्य और सौंदर्य को अभिव्यक्त करने के लिये अपने सामान्य क्षेत्र से ऊपर उठा लिया गया है। यहां वैदिक द्रष्टाओं का अंतर्भासात्मक मन और घनिष्ठ मनोवैज्ञानिक अनुभूति एक चरम पराकाष्ठा में जा पहुंचते हैं जहां, कठोपनिषद् के शब्दों में आत्मा अपना शरीरतक अनावृत कर देती है, अपनी आत्माभिव्यक्ति के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्दतक को प्रकट करती है और मन के लिये लय-ताल के उन स्पंदनों को प्रकट कर देती है जो आध्यात्मिक श्रवण के भीतर अपने-आपको दोहराते हुए अंतरात्मा का निर्माण करते हुए प्रतीत होते हैं और उसे आत्म-ज्ञान के शिखरों पर संतुष्ट और पूर्ण रूप में प्रतिष्ठित करते हैं।

उपनिषदों की इस विशिष्टता पर बहुत बल देते हुए आग्रह करने की जरूरत है क्योंकि विदेशी अनुवादकों ने इस विशिष्टता की अवहेलना की है, वे विचार-दृष्टि के जीवन और आध्यात्मिक अनुभूति के आनंद का अनुभव किये बिना उनके बौद्धिक अर्थ करते हैं। लेकिन इन्हीं चीजों ने इन प्राचीन मंत्रों को उस समय, और आज भी उनके लिये जो उस तत्त्व में प्रवेश पा सकते हैं जिसमें ये कथन व्याप्त हैं, केवल बुद्धि के लिये नहीं बल्कि अंतरात्मा और संपूर्ण सत्ता के लिये अंतःप्रकाश बनाया, उन्हें बौद्धिक विचार और उक्ति नहीं बल्कि श्रुति, आध्यात्मिक श्रवण और प्रेरित धर्मग्रंथ बनाया। आज उपनिषद् के दार्शनिक विषय के मूल्य की सराहना पर ज्यादा जोर देने की जरूरत नहीं है क्योंकि, चाहे बड़े-से-बड़े मनस्वियों द्वारा पर्याप्त स्वीकृति में कमी होती फिर भी, दर्शन का सारा इतिहास अपनी साक्षी देने के लिये प्रस्तुत होता। उपनिषद् बहुत-से ऐसे गंभीर दर्शनों और धर्मों के माने हुए स्रोत हैं जिन्होंने भारत में अपने हिमालय के पालने में से बहती हुई नदियों की तरह लोगों के मन और प्राण को उर्वर बनाते हुए, उसकी अंतरात्मा को शतियों के लंबे जुलूस में जीवित रखा, वे हमेशा उन्हींकी ओर प्रकाश के लिये लौटते रहे। नया प्रकाश देने में कभी कोई कसर नहीं रखी। ये जीवनदाता जलों के अक्षय स्रोत हैं। अपने समस्त विकास के साथ बौद्ध धर्म उसकी अनुभूति के एक पक्ष की एक पुनरुक्ति मात्र था, यद्यपि था एक नये दृष्टि-बिंदु से और बौद्धिक व्याख्या की ओर तर्क की नयी परिभाषाओं में। इस तरह बौद्ध धर्म इसका रूप बदलकर, परंतु इसके वास्तविक अर्थ में न के बराबर हेरफेर कर उसे समस्त एशिया और पश्चिम में यूरोपतक ले गया। पाइथागोरस और प्लेटो के विचारों के अधिकांश में उपनिषदों के विचारों को फिर से खोजा जा सकता है और नूतन प्लेटोनिज़्म और गूढ़ ज्ञानवाद का गहनतम अंश इन्हीं से बना है, जिसका पाश्चात्य दार्शनिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार पर बहुत प्रभाव पड़ा है। सूफीवाद उन्हीं बातों को एक और धार्मिक भाषा में दोहराता है। जर्मन तत्त्वज्ञान का अधिकांश अपने सारतत्त्व में उन महान् वास्तविकताओं के बौद्धिक विकास से बढ़कर कुछ नहीं है जिन्हें इस पुरातन शिक्षा में अधिक आध्यात्मिक दृष्टि से देखा गया था। आधुनिक विचार अधिक निकट, अधिक सजीव और ऐसी तीव्र ग्रहणशीलता के साथ उन विचारों को तेजी के साथ आत्मसात् करता जा रहा है जो दार्शनिक और धार्मिक चिंतन में एक क्रांति का विश्वास दिलाती है। यहांपर वे चिंतन अनेक परोक्ष प्रभावों के द्वारा रिस-रिस कर घुस रहे हैं और कहीं धीरे-धीरे—सीधी, खुली धाराओं में से बह रहे हैं। शायद ही कोई मुख्य दार्शनिक विचार हो जिसका प्रमाण, बीज या संकेत अतीत के इन लेखों में न हो—और एक दृष्टि के अनुसार ये ऐसे विचारकों के चिंतन हैं जिनके विचारों के पीछे अनगढ़, बर्बर, प्राकृतिक, सर्वजीववादी के अज्ञान के सिवा कोई और अतीत या पृष्ठभूमि न थी। और विज्ञान के अधिक बड़े सामान्यीकरण सदा भारतीय मनीषियों के भौतिक प्रकृति के सूत्रों के सत्य पर लागू होते हैं जिनका अन्वेषण उन्होंने अपने मौलिक, अपने महानतम अर्थों में आत्मा के गहन सत्य में किया था।

फिर भी ये ग्रंथ बौद्धिक प्रकार के दार्शनिक चिंतन नहीं हैं, यह ऐसा तत्त्वज्ञानात्मक विश्लेषण नहीं है जो धारणाओं की परिभाषा करने, विचारों को चुन लेने और उनमें जो सच्चे हैं उन्हें छांट लेने, सत्य को तर्कसंगत बनाने या मन को अपनी बौद्धिक पसंदों में द्वंद्वात्मक तर्क द्वारा सहारा देने के लिये श्रम करता है और सत्ता का किसी-न-किसी विचार के प्रकाश में एक अनन्य समाधान खोजकर और सभी चीजों को उसी दृष्टिकोण से, उसी केंद्र-बिंदु और निर्णायक परिप्रेक्ष्य से देखकर संतुष्ट होता है। अगर उपनिषद् उस प्रकार के होते तो उनमें ऐसी अमिट प्राणशक्ति न होती, उनका इतना अमोघ प्रभाव न होता, वे ऐसे परिणाम न ला पाते और यह न देख पाते कि उनकी उक्तियां स्वतंत्र रूप से अन्वेषण के अन्य क्षेत्रों में अपना औचित्य सिद्ध कर रही हैं और वह भी बिल्कुल विपरीत तरीकों से। इसका कारण यह है कि इन द्रष्टाओं ने सत्य के बारे में सोचा नहीं उसके दर्शन किये थे। उन्होंने उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंतर्भासीय विचार के सशक्त शरीर और प्रकट करनेवाले बिंब से आवृत्त जरूर किया परंतु ऐसे आदर्श पारदर्शक शरीर से जिसके द्वारा हम असीम को देख सकते हैं, क्योंकि उन्होंने चीजों को आत्मसत्ता के प्रकाश में अवगाहा और अंनत की आंखों से देखा, इसलिये उनके शब्द हमेशा सजीव और अमर, अक्षय महत्त्ववाले, अनिवार्य प्रामाणिकता, संतोषजनक निश्चयात्मकतावाले होते हैं, और यही सत्य का अनंत आरंभ होता है। अपने अंततक पहुंचनेवाली हमारे अन्वेषण की सभी रेखाएं उसी सत्य पर जा पहुंचती हैं जिसकी ओर मानवजाति अपने मन में और महानतम अंतर्दर्शनों के युगों में निरंतर लौटा करती है। उपनिषद् वेदांत हैं, वेदों से भी उच्चतर कोटि के ज्ञान के ग्रंथ हैं लेकिन गहनतर भारतीय शब्द 'ज्ञान' के अर्थ में। ज्ञान का अर्थ केवल बुद्धि द्वारा सोचना-विचारना नहीं, केवल बौद्धिक मन द्वारा सत्य के मानसिक रूप का अनुसरण और ग्रहण नहीं है बल्कि अंतरात्मा द्वारा उसके दर्शन और आंतरिक सत्ता को शक्ति के साथ उसमें पूर्ण निवास, ज्ञान के विषय के साथ एक तरह के तादात्म्य द्वारा आध्यात्मिक ग्रहण है। और चूंकि इस प्रकार का प्रत्यक्ष ज्ञान केवल आत्मा के पूर्ण ज्ञान द्वारा ही पाया जा सकता है और पूर्ण किया जा सकता है इसीलिये वेदांती ऋषि उसके साथ तादात्म्य द्वारा उसे जानना, उसमें निवास करना और उसके साथ एक होना चाहते थे। और इस प्रयास द्वारा वे आसानी से देख पाये कि जो आत्मा हमारे अंदर है वह सभी वस्तुओं की वैश्व आत्मा के साथ एक है, और यही आत्मा ही भगवान्, ब्रह्म, परात्पर सत्ता या सत् है। उन्होंने इस एक और एक करनेवाले अंतर्दर्शन के प्रकाश में विश्व की सभी चीजों और मनुष्य के आंतरिक और बाह्य अस्तित्व के अंतर्तम सत्य को देखा, अनुभव किया और उसमें निवास किया। उपनिषद् आत्मज्ञान, जगत्-ज्ञान और भागवत-ज्ञान के महाकाव्यात्मक सूक्त हैं। वे दार्शनिक सत्य के जिन महान् सूत्रीकरणों से भरे हैं वे अमूर्त बौद्धिक सामान्यीकरण नहीं हैं, ऐसी चीजें हैं जो चमक सकती और मन को प्रकाशित कर सकती हैं परंतु जीवित नहीं हैं और अंतरात्मा को आरोहण की ओर गति नहीं देतीं। वे उत्ताप के साथ-ही-साथ अंतर्भासात्मक और अंतःप्रकाशात्मक ज्योति के प्रकाश हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकमेव सत् के परात्पर परम देव, भागवत और वैश्व आत्मा के प्रसारण और दर्शन हैं तथा इस महान् वैश्व अभिव्यक्ति को वस्तुओं और उसके प्राणियों के साथ उसके संबंध के अन्वेषण हैं। ये अंतःप्रेरित ज्ञान के गीत सभी भजनों की तरह धार्मिक अभीप्सा और आनंद के भावस्वर से अनुप्राणित हैं, परंतु निम्नतर धार्मिक भाव के संकीर्ण रूप से तीव्र भाव से नहीं, वादों से परे और भक्ति के विशेष रूपों से नहीं बल्कि भगवान् के उस वैश्व आनंद से अनुप्राणित हैं जो स्वयंभू और वैश्व आत्मा के उपगमन और ऐक्य से हमारे पास आता है। बौद्ध धर्म और परवर्ती हिंदू धर्म के समस्त उच्चतम नैतिकवाद यद्यपि मुख्य रूप से आंतरिक दृष्टि के साथ ही संबंध रखते हैं और प्रत्यक्ष रूप से बाह्य मानव क्रिया से नहीं, फिर भी वे जिन सत्यों को व्यंजकरूप और शक्ति प्रदान करते हैं उन्हींके जीवन और अर्थपूर्ण निर्गमन हैं। और किसी भी नैतिक नियम और सद्‌गुण के मानसिक नियम से बढ़कर है भगवान् तथा सभी जीवित सत्ताओं के ऐक्य पर आधारित आध्यात्मिक कर्म का परम आदर्श। इसीलिये जब वैदिक धर्म के रूपों में से जीवन चला गया तब भी उपनिषद् जीवित और सृजनशील बने रहे और महान् धार्मिक संप्रदायों को जन्म दे सके और धर्म के भारतीय विचार को दृढ़ रख सके।

उपनिषद् अंतःप्रकाशात्मक और अंतर्भासात्मक मन और उसकी ज्योतिर्मय अनुभूति के सृजन हैं। उनका समस्त विषय, रचना, भाषा, अलंकार-योजना, गति मौलिक प्रकृति द्वारा निश्चित और उसकी छाप लिये रहते हैं। ये सर्वोत्कृष्ट और सर्वग्राही सत्य, ऐक्य, आत्मा और वैश्व भागवत सत्ता के ये अंतर्दर्शन संक्षिप्त और अत्यंत महत्त्वपूर्ण वाक्यों में ढाले गये हैं जो उन्हें तुरंत अंतरात्मा की आंख के आगे ले आते हैं और उन्हें उसकी अभीप्सा और अनुभूति के लिये वास्तविक और आदेशात्मक बना देते हैं या फिर वे काव्यात्मक वाक्यों में व्यक्त किये गये हैं जो प्रकट करनेवाली शक्ति और संकेतात्मक विचार-रंग से भरे हैं जो सांत बिंब द्वारा समस्त अनंत की खोज करते हैं। वहां एकमेव प्रकट होता है लेकिन साथ ही बहुत से पक्ष भी प्रकट होते हैं और प्रत्येक को अभिव्यक्ति के प्राचुर्य के कारण अपना पूरा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूरा महत्त्व मिलता है। और मानों सहज आत्मशोध में हर शब्द और पूरे वाक्यांश के बोधदायक औचित्य में अपना स्थान और अपना संबंध पा लेता है। अंतःप्रेरित गति में बड़े-से-बड़े तत्त्वज्ञानात्मक सत्य और मनोवैज्ञानिक अनुभूति की सूक्ष्मतम सूक्ष्मताएं आ जाती हैं और उन्हें एक ही साथ निरीक्षण करनेवाले मन के लिये यथार्थ और शोध करनेवाली आत्मा के लिये अंतहीन संकेतपूर्ण बना दिया जाता है। पृथक् उक्तियां, मुहावरे, एक-एक श्लोक, संक्षिप्त परिच्छेद हैं जो अपने अंदर एक महान् दर्शन का सारतत्त्व लिये हैं, फिर भी हर एक अनंत आत्म-ज्ञान के एक पार्श्व, एक पक्ष, एक भाग के रूप में प्रकट किया गया है। यहां सब कुछ खचाखच भरा हुआ और अर्थ-गर्भित होते हुए भी पूरी तरह सुबोध, प्रकाशमय संक्षेप, और अपरिमेय पूर्णता है। इस प्रकार का विचार तार्किक बुद्धि के धीमे, सावधान और विकीर्ण विकास का अनुसरण नहीं कर सकता। परिच्छेद, वाक्य, श्लोक, चरण, अर्द्ध-चरणतक अपने से पहले के वाक्य, चरण आदि से अव्यक्त विचार से भरे अमुक अंतराल के बाद आता है। दोनों के बीच प्रतिध्वनि करनेवाली नीरवता, एक विचार भरा होता है जो पूर्ण संकेत में चलता है और स्वयं चरण में अंतर्निहित है। मन को मुक्त छोड़ दिया गया है कि वह स्वयं अपने लाभ के लिये इसे कार्यान्वित करे और अर्थगर्भित नीरवता के ये अंतराल विशाल हैं, इस विचार के कदम अनंत जलों के इस पार से उस पारतक की चट्टानोंतक पहुंचनेवाले दानव पगों जैसे हैं। प्रत्येक उपनिषद् की रचना में पूर्ण समग्रता और सामंजस्यपूर्ण भागों का व्यापक संबंध है। परंतु यह एक ऐसे मन के तरीके से किया गया है जो एक ही समय में सत्य की अनेक राशियां देखता है और केवल भरी हुई नीरवता में से आवश्यक शब्द लाने के लिये रुकता है। पद्य या लययुक्त (आरोह अवरोहयुक्त) गद्य का ताल विचार और शैली की मूर्तिकला के अनुरूप होता है। उपनिषदों की छंद रचना चार अर्द्ध-चरणों से बनी होती है जिनमें से हर एक सुस्पष्ट रूप से तराशा हुआ होता है। चरण बहुधा अपने-आपमें पूर्ण होते हैं, भाव में भी पूर्ण होते हैं। अर्द्ध-चरण दो विचार या एक विचार के ऐसे स्पष्ट भाग प्रस्तुत करते हैं जो एक-दूसरे के साथ बंधे होते हैं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक-दूसरे को पूरा करते हैं। ध्वनि की गति एक अनुरूप सिद्धांत का अनुकरण करती है। प्रत्येक चरण संक्षिप्त और यति की स्पष्टता से अलग होतां है। हर चरण में प्रतिध्वनि करनेवाला आरोह-अवरोह होता है जो आंतरिक श्रुति में बहुत देरतक गूंजता रहता है। उनमें से हर एक मानों अनंत की एक लहर है जो अपने अंदर सागर की समग्र ध्वनि और मर्मर लिये रहता है। यह एक प्रकार की कविता है—दृष्टि का शब्द, आत्मा का ताल—जैसी पहले या बाद में कभी नहीं लिखी गयी।

काफी बड़ी हदतक उपनिषदों के अलंकार वेदों के अलंकारों से विकसित हुए हैं और यद्यपि अधिक सामान्यतः वे प्रत्यक्ष बोधात्मक अलंकारों की अनावृत स्पष्टता को पसंद करते हैं परंतु यह भी विरल नहीं है कि वे उन्हीं प्रतीकों का इस तरह उपयोग करें कि वे प्राचीनतर प्रतीकवाद के तरीके के भाव और कम तकनीकी भाग के अधिक निकटस्थ और सदृश हों। एक बड़ी हदतक यह तत्त्व हमारी आधुनिक चिंतन-विधि की पकड़ में नहीं आता और इसने कुछ पाश्चात्य विद्वानों को चकरा दिया है और उन्हें यह कहने के लिये बाधित किया है कि ये ग्रंथ उच्चतम दार्शनिक चिंतन का मानवजाति के शिशु मानव की प्रथम तुतलाहट के साथ मिश्रण हैं। उपनिषद् वैदिक मन, स्वभाव और आधारभूत विचारों से क्रांतिकारी विचलन नहीं है बल्कि एक सातत्य और विकास और एक हदतक विस्तृत होता हुआ रूपांतर है, मतलब यह कि जो कुछ प्रतीकात्मक वैदिक भाषा में गुप्त और रहस्यात्मक था वे उसे खुली अभिव्यंजना में ले आये हैं। वह वेद और ब्राह्मणों के अलंकारों की ओर कर्म-कांड के प्रतीकों को लेकर शुरू करता है और उन्हें ऐसा मोड़ देता है कि उनका आंतरिक और रहस्यात्मक भाव प्रकट हो जाये जो उसके अपने उच्च रूप से विकसित और अधिक शुद्ध आध्यात्मिक दर्शन के एक प्रकार के चैत्य आरंभ-बिंदु का काम दे। विशेष रूप से गद्यात्मक उपनिषदों में ऐसे बहुत-से प्रसंग हैं जो पूरी तरह इस प्रकार के हैं जो दुरूह, अस्पष्ट, बल्कि आधुनिक समझ के लिये अबोधगम्य तरीके से उस काल के वैदिक धार्मिक मन के लिये प्रचलित विचारों के चैत्य भावों को प्रकट करते हैं। उन्होंने वैदिक त्रयी, त्रिलोक और इसी प्रकार के विषयों को लिया है। वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपनिषद् के विचार में गहरे-से-गहरे आध्यात्मिक सत्य की ओर ले जाते हैं, इसलिये हम इन प्रसंगों को बुद्धि की बालोचित निरर्थक तुतलाहट कहकर उड़ा नहीं सकते या यह नहीं कह सकते कि इनका उन उच्चतर विचारों के साथ कोई संबंध नहीं है जो इनका चरम-बिंदु है। इसके विपरीत हम यह देखते हैं कि एक बार हम उनके प्रतीकात्मक अर्थ को पकड़ सकें तो उनमें एक काफी गहरा अर्थ है। यह चैत्य-भौतिक से ऊपर की ओर गमन करता हुआ चैत्य-आध्यात्मिक ज्ञान में प्रकट होता है। आज हम उसके लिये अधिक बौद्धिक, कम ठोस और बिंबात्मक भाषा का उपयोग करेंगे लेकिन जो लोग योगाभ्यास करते और अपनी चैत्य-भौतिक और चैत्य-आध्यात्मिक सत्ता के रहस्यों का फिर से अन्वेषण करना चाहते हैं उनके लिये यह अर्थ अब भी प्रामाणिक है। चैत्य सत्यों की इस प्रकार की विशेष अभिव्यक्ति के विशिष्ट उदाहरण हैं—अजातशत्रु द्वारा स्वप्न और सुषुप्ति की व्याख्या या प्रश्नोपनिषद् में प्राण तत्त्व और उसकी गतियोंवाले प्रसंग या वे प्रसंग जिनमें वैदिक देवासुर संग्राम को लेकर उसे आध्यात्मिक अर्थ दिया गया है और वैदिक देवों का ऋक् और साम की अपेक्षा अधिक खुले रूप में अपने आंतरिक कार्य और आध्यात्मिक शक्ति के रूप में आह्वान किया गया है।

यहां मैं वैदिक विचार और बिंब के विकास के उदाहरण-स्वरूप तैत्तिरीय उपनिषद् का एक उद्धरण दे सकता हूं जिसमें स्पष्ट रूप से इंद्र दिव्य मन के देव और शक्ति के रूप में प्रकट होते हैं :

"जो विश्व रूप में वैदिक वृषभ है, जो अमर से पवित्र लयों में जन्मा था, ऐसा इंद्र मुझे बुद्धि द्वारा संतुष्ट करे। हे भगवन्, वर दे कि मैं अमर का एक पात्र बन जाऊं, वर दे कि मेरा शरीर दृष्टि से भरा हो, मेरी जिह्वा मधुरता से भरी हो। मैं बहु और बृहत् को अपने कानों से सुन सकूं क्योंकि तू ही ब्रह्म का कोष है जिसे बुद्धि ढके और छिपाये हुए है।"

इसीके सदृश एक और प्रसंग भी ईशोपनिषद् से उद्धृत किया जा सकता है जिसमें सूर्य देव का ज्ञान के देवता के रूप में आह्वान किया गया है जिसकी दीप्ति का चरम रूप है आत्मा का एकत्व और यहां मानसिक स्तर पर फैली हुई उसकी किरणें विचार-मन का चमकता हुआ विस्तार हैं तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके अपने अनंत अतिमानसिक सत्य को, इस सूर्य के शरीर और आत्मा को, आत्मा और शाश्वत के सत्य को छिपाये रहता है :

"सत्य का चेहरा सुनहरे ढक्कन से छिपा हुआ है : हे पोषण करनेवाले सूर्य, उसे सत्य्-धर्म के लिये, दृष्टि के लिये अनावृत कर, हे पूषन्, हे एकमात्र ऋषि, हे नियंत्रण करनेवाले यम, हे सूर्य, हे प्राणियों के पिता के पुत्र, अपनी किरणों को व्यवस्थित कर, उन्हें इकट्ठा कर, मैं तेरे कल्याणतम रूप को देखता हूं। जो यह पुरुष है, वह मैं हूं।"

इन उद्धरणों के भेद में वेद के अलंकार और शैली के साथ जो संबंध है वह स्पष्ट ही है। इनमें से अंतिम तो अत्रि के एक वैदिक मंत्र की व्याख्या या परवर्ती और अधिक खुली शैली में अनुवाद ही है :

"सत्य जो हमेशा के लिये स्थिर है, जहां सूर्य के अश्वों को खोला जाता है, वह तुम्हारे सत्य से छिपा हुआ है। वहां दस हजार इकट्ठे खड़े हैं। वही एकमेव है। सशरीर देवों के परम देव को मैंने देखा है।"

हमारे वर्तमान मानस के लिये ये वैदिक और वेदांती अलंकार विजातीय हैं क्योंकि वह प्रतीकों के जीवित सत्य पर विश्वास नहीं करता; क्योंकि बुद्धि द्वारा धमकायी हुई प्रकट करनेवाली कल्पना में अब वह साहस नहीं रहा कि चैत्य और आध्यात्मिक दृष्टि को स्वीकार करके, उसके साथ अभिन्न होकर, साहस के साथ उसे मूर्त रूप दे। परंतु निश्चय ही वह बचकाने, आदिकालीन, बर्बर रहस्यवाद से बहुत दूर है; बल्कि यह स्पष्ट, जीवित, दीप्तिमान रूप से काव्यमय अंतर्भासात्मक भाषा एक बहुत उच्च रूप से विकसित आध्यात्मिक संस्कृति की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है।

उपनिषद् का अंतर्भासात्मक विचार इस ठोस अलंकार और इन प्रतीकों से शुरू होता है। पहले वैदिक ऋषियों के लिये ये गुप्त द्रष्टा-शब्द, द्रष्टा के मन के लिये तो पूरी तरह अभिव्यंजक होते हैं परंतु उनके अत्यंत गहरे अर्थों को सामान्य बुद्धि से ओझल कर देते हैं, उन्हें कुछ कम आच्छादित रूप से अभिव्यंजक भाषा के साथ जोड़ देते हैं; और उनके पार जाकर एक भव्य रूप से प्रकट और श्रेष्ठ बिंब और शैली में जाते हैं जो आध्यात्मिक सत्य को अपने सारे गौरव में प्रकट करते हैं। गद्यात्मक उपनिषद् हमें पहले के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय मानस की यह प्रक्रिया दिखलाते हैं जिसमें प्रतीक का उपयोग करके और उसके परे जाकर आध्यात्मिक अर्थ को प्रकट रूप में अभिव्यंजित किया जाता है। रहस्यात्मक शब्द 'ॐ' की शक्ति और उसके अर्थ के बारे में, प्रश्नोपनिषद् का यह उद्धरण, इस प्रणाली की प्रारंभिक अवस्था का चित्रण करता है :

"हे सत्यकाम, यह अक्षर 'ॐ' ही परब्रह्म और निम्नतर ब्रह्म है। इसलिये ज्ञानवान् पुरुष ब्रह्म के इस मकान से उस मकान या किसी और में जाता है। और अगर तुम एक अक्षर का ध्यान करो तो उसके द्वारा तुम ज्ञान प्राप्त करते हो और शीघ्र ही उसे धरती पर प्राप्त करते हो। ऐसे को ऋचाएं मनुष्यों के जगत् में ले जाती हैं और वहां तप और ब्रह्मचर्य तथा श्रद्धा से पूर्ण होकर वह आत्मा की महानता का अनुभव करता है। अब अगर वह दो अक्षरों से मन में निष्णात हो तो यजु उसे मध्यलोक, सोम के चंद्रलोक में ले जाते हैं। सोम के लोक में वह आत्मा के वैभव का अनुभव करता है और फिर वापिस आता है। और जो तीन अक्षरवाले इस 'ओ३म्' के द्वारा उच्चतम पुरुष पर ध्यान करता है वह उस प्रकाश में पूर्णता पाता है जो सूर्य है। जैसे सांप अपनी केंचुली उतारता है उसी तरह वह अपने पाप और अशुभ से छुटकारा पाता है और उसे साम ब्रह्मलोक में ले जाते हैं। वह जीवित आत्माओं की इस घनता में से उच्चतम पुरुष को देखता है जो भुवन में लेटा हुआ है। तीन अक्षर मृत्यु से पीड़ित हैं परंतु अब उनका उपयोग अविभक्त और एक दूसरे के साथ युक्त रूप में होता है तब आत्मा की अंतर और बाह्य तथा मध्य क्रिया अपने समग्र उपयोग में पूर्ण हो जाती है। आत्मा जानती है और विचलित नहीं होती। द्रष्टा हमें इहलोक ऋक् द्वारा, मध्यलोक यजु और साम द्वारा दिखलाते हैं। ज्ञानवान् पुरुष ओ३म् द्वारा, जो उसका घर है, उसतक, परम आत्मातक जा पहुंचता है जो स्थिर, अचर, अभय और अमर है।"

यहांपर ये प्रतीक हमारी बुद्धि के लिये अभीतक अस्पष्ट हैं। लेकिन ऐसे संकेत दिये गये हैं जो निःसंदेह रूप से यह बतलाते हैं कि वे ऐसी चैत्य अनुभूति के प्रतिरूप हैं जो आध्यात्मिक उपलब्धि की विभिन्न अवस्थाओं की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओर ले जाती हैं, और हम देख सकते हैं कि ये तीन हैं : बाह्य, मानसिक और अतिमानसिक। और इनमें से अंतिम के परिणाम-स्वरूप है चरम पूर्णता, अमर आत्मा की शांत शाश्वतता में समस्त सत्ता की समग्र और पूर्ण क्रिया। और बाद में माण्डूक्य उपनिषद् में अन्य प्रतीकों को एक तरफ करके हम अनावृत अर्थ की उपस्थिति में पहुंचते हैं। तब एक ऐसा ज्ञान उभरता है जिसकी ओर आधुनिक ज्ञान अपने एकदम भिन्न बौद्धिक, तार्किक और वैज्ञानिक उपायों से लौट रहा है। वह यह ज्ञान है कि हमारी बाह्य भौतिक चेतना के कार्यों के पीछे एक और अंतस्तलीय चेतना कार्य कर रही है—जो भिन्न होते हुए भी वही है—और हमारा जाग्रत् मन उसकी ऊपरी तथा सतही क्रिया है। शायद हम कह सकते हैं कि ऊपर एक आध्यात्मिक अतिचेतन है जिसमें संभवतः उच्चतम स्थिति और हमारी सत्ता का पूर्ण रहस्य पाया जा सकता है। अगर हम प्रश्नोपनिषद् के उद्धरण को निकट से देखें तो पायेंगे कि यह ज्ञान तो पहले ही मौजूद है और मेरा ख्याल है कि पूरे न्यायसंगत रूप से हम इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि प्राचीन ऋषियों की यह और ऐसी ही अन्य वाणियां, तर्कसंगत मन को वे चाहे जितनी चकरानेवाली क्यों न लगें, बचकाना रहस्यवाद कहकर उड़ायी नहीं जा सकतीं। वे उस समय के मानस के लिये उस चीज की स्वाभाविक अलंकारिक अभिव्यक्तियां हैं जिसे अब हमें स्वयं तर्क-बुद्धि अपनी प्रणालियों से सच्चा, बहुत गहरा सत्य और ज्ञान की वास्तविक यथार्थता के रूप में दिखला रही है।

छन्दोबद्ध उपनिषद् इस उच्चस्तरीय आवेशित प्रतीकवाद को जारी रखते हैं और अपने अधिकतर मंत्रों में हल्के-फुल्के रूप में लेकर इस प्रकार के प्रतीकों के पार प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति की ओर बढ़ जाते हैं। मनुष्य, प्राणियों और प्रकृति में स्व, आत्मा और देवत्व और समस्त इहलोक, परलोकों और विश्वातीत में उपस्थित, अमर, एकमेव, अनंत के बारे में उसकी शाश्वत परात्परता और बहुविध आत्माभिव्यक्ति के गीत बिना किसी आवरण के गाये गये हैं। धर्म और मृत्यु के देव, यम ने नचिकेता को जो शिक्षा दी थी उसके कुछ उद्धरण उनकी विशिष्टिता को चित्रित करने के लिये काफी होंगे :

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यह अक्षर ओ३म् है। यह अक्षर ब्रह्म है, यह अक्षर परम पुरुष है। जो अमर ओ३म् को जानता है, वह जो कुछ चाहे वह उसका होता है। यह अवलंब सबसे अच्छा है, यह अवलंब सबसे ऊंचा है और जब मनुष्य इसे जानता है तो वह ब्रह्मलोक में महान् बन जाता है। सर्वज्ञ का जन्म नहीं होता, वह मरता भी नहीं, न वह कहींसे आया है न वह कोई है। वह अजन्मा, नित्य और शाश्वत है। वही पुराण पुरुष है, शरीर की हत्या होने से जिसकी हत्या नहीं होती . . .

वह एक स्थान पर बैठा हुआ दूर-दूर यात्रा करता है और शयन करता हुआ सब जगह जाता है। मेरे अतिरिक्त कौन है जो इस आह्लादकर भगवान् को जानने के योग्य है? बुद्धिमान् व्यक्ति महान् प्रभु को, आत्मप्रतिष्ठित आत्मा को, प्रयाण करते हुए शरीरों में स्थित अशरीरी को पहचान लेता है और फिर कभी दुःख नहीं करता। इस आत्मा को न तो उपदेश द्वारा, न मेधा द्वारा और न ही शास्त्रों के श्रवण से पाया जा सकता है। यह आत्मा जिसे चुनती है केवल उसीके द्वारा इसे प्राप्त किया जा सकता है और उसीके सामने यह आत्मा अपने स्वरूप को खोलती है। जिसने दुष्कर्म बंद नहीं किये, जो एकाग्र और स्थिर नहीं है, जिसका मन शांत नहीं है वह उसे मस्तिष्क की बुद्धि द्वारा न पा सकेगा। ब्राह्मण और क्षत्रिय जिसका भोजन है, मृत्यु जिसके भोज में मसाले हैं, कौन जानता है कि वह कहां है? . . .

स्वयंभू ने अपने द्वार बाहर की ओर खोले हैं अतः मनुष्य बाहर की ओर देखता है, अपने भीतर आत्मा को नहीं। कहीं कोई अमरता चाहनेवाला धीर पुरुष अपनी आंखें भीतर की ओर मोड़ता है और आत्मा को आमने-सामने देखता है। बचकाने मन ऊपरी कामनाओं के पीछे चलते हैं और हम सबके लिये फैले हुए मृत्यु के जाल में जा गिरते हैं। लेकिन बुद्धिमान् लोग अमरता के बारे में जानते हैं और अस्थायी चीजों से स्थायी की मांग नहीं करते। व्यक्ति इस आत्मा से रूप, रस, गंध स्पर्श और उसके सुखों को जानता है। तब बचा क्या रहता है? बुद्धिमान् महाप्रभु और आत्मा को जान लेता है जिसके द्वारा व्यक्ति उस सबको देखता है जो अंतरात्मा में है और जगता है, उस सबको भी जो अंतरात्मा में है और स्वप्न लेता है और जिसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई दुःख नहीं रहता। जो आत्मा को जानता है, जीवित सत्ता के निकटस्थ मधुरता के खानेवाले को जानता है, जो था और जो होगा उसके स्वामी को जानता है, वह किसी ऐसी चीज से नहीं सकुचाता जिसका अस्तित्व है। वह उसे जानता है जो वह है जो अतीत में तप से जन्मा था, जो अतीत में जलों से जन्मा था और इन सब प्राणियों के साथ वह सत्ता की गुप्त गुफा में प्रवेश कर गया और उसमें उपस्थित है। वह उसे जानता है जो प्राणशक्ति से जन्मी है, सभी देवों को अपने अंदर लिये हुए अनंत जननी को, उसे जो इन सब प्राणियों के साथ सत्ता की गुप्त गुफा में प्रविष्ट हो गयी और उपस्थित है। यह वह अग्नि है जिसके पास ज्ञान है, वह दो अरणियों में छिपी है जैसे भ्रूण गर्भवती स्त्री में रहता है। यह वह अग्नि है जिसकी आराधना की जानी चाहिये। मनुष्य सोये बिना उसकी रखवाली करते और उसके लिये भेंट-पूजा लाते हैं। यह वही है जिससे सूर्य का उदय होता है और वही जिसमें सूर्य अस्त होता है, जिसमें सभी देवों का आधार है, जिसके परे कोई नहीं जा सकता। जो कुछ यहां है, वह भी सभी अन्य लोकों में है और जो कुछ वहां है, उसके अनुसार, वह सब भी यहां है। जो यहां केवल भेद देखता है वह मृत्यु से मृत्यु की ओर जाता है। एक अंगुष्ठमात्र पुरुष मनुष्य की केंद्रीय आत्मा में स्थित है और जो कुछ था और जो कुछ होगा उसका स्वामी है। उसे जान लेने पर मनुष्य उससे नहीं सकुचाता जो है। अंगुष्ठमात्र पुरुष, धूम्रहीन अग्नि जैसा है। जो कुछ था और जो कुछ होगा उसका वही स्वामी है, वही आज है और वही भावी कल होगा।''

उपनिषद् ऐसे परिच्छेदों से भरे हैं जो एक ही साथ काव्य और आध्यात्मिक दर्शन हैं, जो पूर्ण स्पष्टता और सुंदरतावाले हैं लेकिन कोई भी अनुवाद जो संकेतों और मौलिक शब्दों के गंभीर और सूक्ष्म और प्रकाशमय अर्थ की प्रतिध्वनियों तथा ताल और लय से रिक्त हो, उनकी शक्ति और पूर्णता का ख्यालतक नहीं दे सकता। और ऐसे स्थल हैं जिनमें सूक्ष्मतम मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक सत्य, काव्य की अभिव्यक्ति की पूर्णता में कमी लाये बिना, पूरी पर्याप्ति के साथ अभिव्यक्त किये गये हैं, और हमेशा इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

074501

तरह वे केवल समझनेवाली बुद्धि के आगे प्रस्तुत नहीं किये जाते अपितु मन और अंतरात्मा के आगे जीवित होते हैं। कुछ गद्य उपनिषदों में स्पष्ट वर्णन और परंपरा का एक और तत्त्व है जो हमारे लिये, भले संक्षिप्त झांकी में सही, उस आध्यात्मिक अन्वेषण और उच्चतम ज्ञान के आवेग के लिये असाधारण हलचल और गतिविधि का चित्र प्रस्तुत करता है जिसने उपनिषदों को संभव बनाया। कुछ ही पृष्ठों में प्राचीन जगत् के दृश्य हमारे आगे भी उठते हैं। कुंजों में ऋषि मुनि आनेवाले की परीक्षा लेने और उसे पढ़ाने के लिये बैठे हैं, राजकुमार, विद्वान्, पंडित तथा रईस ज्ञान की खोज में घूम रहे हैं, राजा का पुत्र अपने रथ में और दासी का अवैध पुत्र किसी ऐसे आदमी की तलाश में है जो अपने अंदर प्रकाश का विचार और अंतःप्रकाश का शब्द लिये हो, प्रारूपिक आकार और व्यक्तित्व, जनक और सूक्ष्म मन अजातशत्रु, गाड़ीवाले रेक्व, सत्य के लिये युद्धप्रिय, स्थिर और व्यंग्यमय, बिना आसक्ति के दोनों हाथों से ऐहिक जगत् की धन-संपदा और आध्यात्मिक समृद्धि बटोरनेवाले और अंत में अपनी सारी संपदा पीछे छोड़कर अनिकेत यती की तरह घूमनेवाले याज्ञवल्क्य, देवकी-सुत कृष्ण जिन्होंने घोर ऋषि से एक शब्द सुनकर ही शाश्वत को जान लिया, आश्रम, ऐसे राजाओं की सभाएं जो आध्यात्मिक अन्वेषक और विचारक थे, यज्ञ-समारोह जहां ऋषि-मुनि मिलते और अपने ज्ञान की तुलना करते थे। और हम देखते हैं कि भारत की अंतरात्मा ने कैसे जन्म लिया और यह जन्म-गीत कैसे उठा जिसमें वह अपने धरातल से आत्मा के उच्चतम स्वर्गतक पहुंची। वेद और उपनिषद् केवल भारतीय दर्शन और धर्म के ही नहीं, अपितु समस्त भारतीय कला, काव्य और साहित्य के भी उद्गम हैं। उनमें रूपायित और अभिव्यक्त अंतरात्मा, स्वभाव, आदर्श मन ने पीछे चलकर महान् दर्शनों को रूप दिया, धर्म के ढांचे को बनाया, महाभारत और रामायण में अंतरात्मा के वीरतापूर्ण यौवन का आलेख किया, मानवता की प्रौढ़ता के शास्त्रीय काल में उसे अथक रूप से बौद्धिक बनाया, विज्ञान में इतने सारे मौलिक अंतर्भासों को प्रकट किया, सौंदर्यग्राही, प्राणिक और ऐंद्रिय अनुभूतियों की इतनी समृद्ध चमक-दमक की रचना की, अपनी आध्यात्मिक और चैत्य अनुभूति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को तंत्रों और पुराणों में फिर से नया रूप दिया, अपने-आपको रंग और रेखा के उत्कर्ष और सौंदर्य में प्रक्षिप्त किया, अपने चिंतन और अंतर्दर्शन को पत्थर और कांसे में ढाला, परवर्ती भाषाओं में अपने-आपको आत्माभिव्यक्ति की नयी-नयी धाराओं में बहाया और अब वह ग्रहण के बाद भिन्नता में भी वही रहते हुए नवीन जीवन और नवीन सृजन के लिये तैयार होकर फिर से उभर रही है।

—श्रीअरविंद

————

व्यक्ति की आध्यात्मिक उपलब्धि उसकी भावनाओं और धारणाओं पर निर्भर है। वह उसकी बाहर दीखनेवाली क्रियाओं से नहीं, बल्कि उसके हृदय से उत्पन्न होती है।

यूं ही टहलते हुए दो मित्र उस जगह आ पहुंचे जहां भगवान् का पाठ हो रहा था। एक ने कहा : "भाई चलो कुछ देर के लिये वहां जाकर उपदेश सुन आएं।" दूसरे ने उत्तर दिया : "भगवान् के बारे में सुनने से क्या लाभ ? चलो, हम उस पास की मधुशाला में जाकर मौज-मजे में समय काटें।" लेकिन पहला मित्र बिल्कुल सहमत नहीं हुआ। वह उस जगह घुस गया जहां उपदेश दिया जा रहा था और सुनने बैठ गया। दूसरा मधुशाला में गया। लेकिन उसे अपेक्षित मनबहलाव न मिला। वह सारे समय यही सोचता रहा : "हाय ! मैं यहां क्यों आया ? मेरा मित्र कितना सुखी है ! सारे समय हरि के पवित्र जीवन और उपकारों के बारे में सुन रहा है।" इस तरह मधुशाला में होते हुए भी वह हरि के बारे में ही ध्यान करता रहा। उस दूसरे मित्र को भी, जो उपदेश सुन रहा था, मजा नहीं आ रहा था। वह वहां बैठा-बैठा अपने को दोषी ठहरा रहा था : "हाय ! मैं अपने मित्र के साथ मधुशाला क्यों न चला गया ? इस वक्त उसको कितना मजा आ रहा होगा।" परिणाम यह हुआ कि जहां भागवत पाठ हो रहा था वहां बैठा व्यक्ति मधुशाला के बारे में सोच रहा था। उसे अपने बुरे विचारों के कारण पाप का फल मिला। जब कि मधुशाला में बैठे व्यक्ति को अपने अच्छे हृदय के कारण भागवत पाठ सुनने का लाभ मिला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईशावास्योपनिषद्

यह सब भगवान् से आवृत्त होना चाहिये, वह सब भी जो इस चलायमान विश्व में जगत् है; अतः कामना को त्याग दे और भोग कर। दूसरे की संपदा के लिये लोलुप न हो।

गुरु—उपनिषद् अपने अंतःप्रकाश के अनिवार्य आधार के रूप में भगवान् की वैश्व प्रकृति की घोषणा करते हैं। शाश्वत यानी ब्रह्म की यह वैश्व प्रकृति वेदांत का अथ और इति है और अगर इसे न स्वीकार किया जाये तो वेदांत जो कुछ कहता है उसका कुछ भी मूल्य नहीं रहता क्योंकि उसके सभी प्रस्ताव या तो यहीं से शुरू होते हैं या कम-से-कम इसे मानकर चलते हैं। इस केंद्रीय उच्चतम सत्य से वंचित होकर उपनिषद् बस वही रह जाते हैं जो म्लेच्छ विद्वान् और दार्शनिक उन्हें मानते हैं—असंगत यद्यपि कभी-कभी उदात्त अटकलों का एक ढेर। शास्त्रों के सबसे अधिक अंधेरे वचनों पर प्रकाश डालने के लिये तुम्हारे हाथ में इस सत्य का दीपक हो जो उपनिषद् के सभी अस्पष्ट वचनों पर प्रकाश डाले, तो तुम शीघ्र ही अनुभव करोगे कि उपनिषद् महान् सामंजस्यपूर्ण और पूर्णतया प्रकाशित संपूर्ण इकाई है जो अपने अंदर एकमेव वैश्व सत्य के विभिन्न पक्षों को व्यक्त करती है; क्योंकि प्रपंच के विभिन्न विरोधों के बावजूद सत्य एक और केवल एक ही है। सभी स्मृतियां, पुराण, दर्शन, धर्म-शास्त्र, शाक्तों, शैवों, वैष्णवों, सौर के ग्रंथ, शास्त्र, समस्त बौद्ध धर्म और उसके शास्त्र उसी एक और अनन्य सत्य के विभिन्न पक्षों की, विभिन्न दृष्टियों से की गयी केवल इतनी सारी व्याख्याएं, टिप्पणियां और टीकाएं हैं। यह सत्य ही वह एकमात्र नींव है जिसपर सभी धर्म ऐसे टिके रह सकते हैं जैसे एक निश्चित और अजेय चट्टान पर टिके हों—बल्कि चट्टान से भी बढ़कर, क्योंकि चट्टान तो नष्ट हो सकती है परंतु यह नष्ट नहीं हो सकता, हमेशा बना रहता है। इसीलिये आर्यों के धर्म को सनातन धर्म कहते हैं। यह हिंदुओं की भूल नहीं है जब वे यह घोषणा करते हैं कि श्रुति शाश्वत है, अनादि है और ऋषि, जिन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंत्र बनाये थे, वे केवल सत्य के द्रष्टा थे जिन्होंने सत्य का दर्शन किया और उसे मानव भाषा में रख दिया, क्योंकि यह देखना मानसिक नहीं आध्यात्मिक दृष्टि थी। इसलिये उचित ही है कि वेदों को श्रुति या अंतःप्रकाश कहा जाता है। इनमें ऋग्, यजु, साम और अथर्व उपजाऊ बनानेवाली वर्षा हैं जिसने सत्य के पौधे को पोषण दिया और बड़ा किया। ब्राह्मण वह वन है जिसमें यह पौधा पाया जाता है, अरण्यक वह भूमि हैं जिनमें यह पौधा उगता है। उपनिषद् स्वयं वह पौधा है, जड़, तना, पत्ते, पुटक, पंखुड़ियां और फूल है जो अपने-आपको एक बार अभिव्यक्त करता है और हमेशा के लिये रहता है—वह है उपनिषद् की महान् उक्ति 'सोऽहम्'; यह उपनिषद् की परिपूर्ति है। सोऽहम् को नमस्कार है, उस शाश्वत को नमस्कार है जो देश, काल, कारण और सीमा से रहित है, मेरी आत्मा को नमस्कार है जो शाश्वत है।

शिष्य—मैं शाश्वत को और अपनी आत्मा को नमन करता हूं जो शाश्वत है "स्वाहा !"

गुरु—अतः उपनिषद् यह कहकर आरंभ करता है कि यह सब ईश से वेष्टित या आच्छादित होना चाहिये। इसका मतलब यह है कि व्यष्टिगत जीवात्मा या मानव आत्मा को मुक्ति पाने के लिये इस समस्त विश्व को ईश से लपेट देना चाहिये जैसे कोई शरीर को कपड़ों से ढकता है। स्पष्ट है, यहां ईश का मतलब अज्ञेय परब्रह्म नहीं है क्योंकि अज्ञेय के बारे में हम देश, काल या भेद की भाषा में नहीं बोल सकते, बल्कि वह ब्रह्म है जिसे योग द्वारा जाना जा सकता है, जो एकमेव की प्रदीप्त छाया है, जिसे एक की शक्ति ने प्रस्तुत किया है, जिसने अपने-आपको पुरुष और प्रकृति में विभक्त करके असंख्य नाम-रूपों के इस जगत् का सृजन किया है। ब्रह्म को ईश कहा जाता है यानी हम उसे सर्वोत्तम रूप में जगत् का स्वामी और प्रभु मानते हैं। फिर भी वे आध्यात्मिक शक्ति के वह सागर हैं जो अपनी उपस्थिति मात्र से सर्जनात्मक, परिरक्षणात्मक और विनाशात्मक शक्ति या प्रकृति के रूप में शाश्वत परब्रह्म की इच्छा-शक्ति, ऊर्जा के हिलोरे लेते हुए सागर, कारण जल को गतिशील रखता है। आध्यात्मिक शक्ति के सागर और भौतिक रूप के सागर, इन दोनों में से पिछला पहले में समाया रहता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है और उसके बिना नहीं रह सकता। कहा जा सकता है कि वह पहले से घिरा हुआ या उसमें लिपटा हुआ है। स्वयं ईश सागर के ऊपर विभिन्न रूपों में उपस्थित रहते हैं, प्रज्ञा, हिरण्यगर्भा और विराट् या विष्णु, ब्रह्मा और महेश्वर। पुराणों का यही मतलब होता है जब वे कहते हैं कि विष्णु सागर में देश और काल के सर्प पर लेटे हुए हैं और ब्रह्मा उनके नाभि कमल से निकलते हैं आदि। यही ईश है, राजा और प्रभु। अतः हमें यह अनुभव करना चाहिये कि इस विश्व में सभी चीजें ब्रह्म के या आध्यात्मिक शक्ति के उस सागर से बनी हैं जो उन्हें उस तरह लपेटे रहता है जैसे चोंगा पहननेवाले को।

शिष्य—मैं समझ नहीं पाया, निश्चय ही सभी चीजें स्वयं ब्रह्म हैं, (*सर्वं खल्विदं ब्रह्म*) तब फिर यह क्यों कहा जाये कि वह सभी चीजों को इस तरह लपेटे हुए है मानों वह उनसे भिन्न हो?

गुरु—इस मुहावरे से मेरा मतलब यह था कि वैश्व और अभिव्यक्त चेतना, जिसे हम ब्रह्म कहते हैं, सभी सीमित व्यक्तिगत चेतनाओं को, जो अपने-आपको हमारे आगे वस्तुओं के रूप में प्रकट करती है उन्हें घेरे और अपने अंदर समाये रहते हैं।

शिष्य—फिर भी मैं नहीं समझ पाया। एक और अविभक्त चेतना विभक्त कैसे हो सकती है या अगर विभक्त हो जाये तो कैसे साथ-ही-साथ एक बनी रह सकती और अपने ही भागों से घिरी रह सकती है? कोई चीज एक ही साथ एक और अविभाज्य और बहु तथा विभाज्य नहीं हो सकती।

गुरु—इसके विपरीत, चेतना का ठीक यही स्वभाव है कि वह शाश्वत रूप से एक और अविभक्त है और फिर भी अपनी इच्छा के अनुसार सदा विभाज्य है क्योंकि मानव चेतना बहुत बार दो अवस्थाओं में बंटी रहती है जिसमें हर एक की अपनी स्मृति और अपना इतिहास होता है। जब मनुष्य एक अवस्था में होता है तो वह यह नहीं जानता कि वह अपनी दूसरी अवस्था में क्या सोच और कर रहा था। जो लोग सत्य से अनभिज्ञ हैं वे इस परिस्थिति से यह मानते हैं कि मनुष्य की चेतना एक और एकरूप नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बल्कि विभिन्न व्यक्तित्वों की पोटली होगी। सांख्य तथा कुछ और लोग यह कल्पना करते हैं कि एकमेव नहीं असंख्य आत्माएं और पुरुष हैं, वे कहते हैं कि अन्यथा सबको समान ज्ञान, समान सुख-दुःख प्राप्त होते। लेकिन यह केवल अविद्या है और जब प्रतीयमान रूप से व्यष्टिगत पुरुष अपने-आपको शाश्वत के साथ पूर्णयोग की स्थिति में रखता है तो उसे पता लगता है कि सारे समय एक ही पुरुष था जो औरों को जानता और उन्हें अपने अंदर समाये हुए था, इस अर्थ में कि वे केवल उससे प्रक्षिप्त उसकी सृष्टि थे। विभाजित चेतना की ये भिन्न-भिन्न अवस्थाएं एक ही व्यक्तित्व की अवस्थाएं हैं भिन्न-भिन्न व्यक्तित्व नहीं। यह एकदम स्पष्ट हो जायेगा यदि कोई कुशल और सावधान सम्मोहक मनुष्य को उचित स्थिति की निद्रा में पहुंचा दे क्योंकि तब प्रायः व्यक्तित्व की एक तीसरी अवस्था विकसित होगी जो सारे समय यह जानती रही है कि बाकी दो स्थितियां क्या कह और कर रही थीं। यह अपने-आपमें काफी प्रमाण है कि चेतना का ऐक्य सारे समय मौजूद था, वह डूबा हुआ भले रहा हो पर सतत और अंतस्तलीय स्थिति में सक्रिय था। इस एक चेतना का दो पृथक् अवस्थाओं में विभाजन अविद्या की एक विशिष्ट और असामान्य क्रिया से होता है। वही वैश्व निर्ज्ञान, जो अपनी व्यापक और सामान्य क्रिया में मनुष्यों से यह कल्पना करवाता है कि वे वैश्व चेतना से अलग आत्मा हैं, उस चेतना से सृष्ट अवस्थाएं या स्थितियां नहीं। तो हम यहां एक और अविभाज्य के विभक्त और अनेकगुना होने और साथ ही एक और अविभाज्य बने रहने के उदाहरण को प्रतिष्ठित होते देखते हैं। स्वयं एक और अविभाज्य चेतना, जाग्रत् मनुष्य का 'अहं', एक अधिक विस्तृत चेतना का एक भाग या यूं कहें कि एक अवस्था है। वह स्थूल जड़ता से अधिक स्वतंत्र है और स्वप्नावस्था में कुछ क्रीड़ा कर सकती है; स्वप्न-सम्मोहन उसकी एक विशिष्ट और मनमौजी अवस्था है जो अधिक स्थायी और सुसंगत रूप से अंततः मृत्यु के समय या उसके बाद स्थूल शरीर से मुक्त हो जाती है। यह विशालतर चेतना स्वप्नावस्था कहलाती है और वह शरीर या उपाधि, जिसमें वह काम करती है, सूक्ष्म शरीर कहलाता है। कहा जा सकता है कि जैसे चोगा पहननेवाले को लपेटे रहता है उसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरह स्वप्न-चेतना जाग्रत् चेतना और उसके शरीर को लपेटे रहती है क्योंकि वह अपने स्वभाव और क्षेत्र में अधिक विस्तृत और कम फंसी हुई है। यह एक चयन करनेवाला माध्यम है जिसमें से और जिसके द्वारा भौतिक जीवन में एक अधिक विस्तृत चेतना द्वारा जाग्रत् प्रयोजनों के लिये एक भाग चुना जाता है जिसे हम सुषुप्ति अवस्था या कारण शरीर कहते हैं और इसमें से और इसके द्वारा जीवन से पहले और मृत्यु के बाद के लिये चुनाव किया जाता है। यह सुषुप्ति अवस्था ब्रह्म से घिरी रहती है जिसमें से और जिसके द्वारा उसे कारण के प्रयोजनों के लिये चुना जाता है—उसी तरह जैसे चोगा पहननेवाले को लपेटे रहता है।

इस तरह तुम अनुभव करोगे कि ब्रह्म बृहत्, शाश्वत रूप से एक और अविभाज्य चेतना है जो इसके बावजूद अपनी इच्छा के अनुसार अपने-आपको सीमित करता है और फिर भी असीम रहता है और चोगे की तरह सभी भिन्न-भिन्न अवस्थाओं या काल्पनिक सीमाओं को घेरे रहता है।

शिष्य—जी हां, सच है, परंतु चोगा, पहननेवाले से अलग होता है।

गुरु—चलो हम गरी सहित काष्ठफल की बात सोचें। हम देखते हैं कि आकाश रूपी गरी को काष्ठफल रूपी आकाश घेरे रहता है, जैसे चोगा पहननेवाले को घेरे रहता है। लेकिन दोनों हैं एक ही, आकाश एक ही है, दो नहीं।

शिष्य—अब समझ में आया।

गुरु—अब उसकी बात सोचें जिसे उपनिषद् ज्यादा स्पष्ट रूप से वह चीज बतलाता है जिसे आच्छादित या आवेष्टित करना है—जो कुछ जगत् या जगती है या जो कुछ उसमें गति करनेवाली चीज है वह गति करती है। जगती, जो गति करती है, पृथ्वी का पुराना नाम है, जो बाद में सारे विश्व के लिये चल पड़ा, जिसका पृथ्वी एक प्रारूप है। वर्तमान काल में हम मनुष्यों का केवल इसीके साथ संबंध है। तब फिर इस विश्व को जगती यानी गति करनेवाला क्यों कहा जाता है ? क्योंकि वह प्रकृति का एक रूप है जिसकी अनिवार्य विशेषता है गति; क्योंकि वह गति द्वारा इस भौतिक जगत् को उत्पन्न करती है। वस्तुतः सभी विषय-वस्तुएं बस एक रूप हैं या यूं कहें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गति का दृश्य, श्रव्य या अनुभवगम्य परिणाम हैं। हर भौतिक पदार्थ जगत् है जो अनंत गति से भरा है—यहांतक कि पत्थर और ठीकरे भी। हमारी इन्द्रियां कहती हैं कि यह जड़ जगत् ही एकमात्र विद्यमान यथार्थता है लेकिन उपनिषद् हमें इन्द्रियों की मिथ्या साक्षी के बारे में सावधान करता है और हमें आदेश देता है कि हम अपने हृदय और मन में आध्यात्मिक शक्ति के सागर, ब्रह्म को अनुभव करें, उन्हें अपनी कल्पना में उस तरह खींचें जैसे हर संवेदनशील वस्तु के चारों ओर चोगा लपेटा जाता है।

शिष्य—लेकिन उपनिषद् ने यह तो नहीं कहा कि जड़ जगत् अपने-आपमें ब्रह्म है।

गुरु—वह अभी कहेगा। इसके बाद वह हमसे कहता है कि इस सब को त्यागकर (जो कुछ जगत् में है) भोग करो और अन्यों की संपदा की ओर लोलुप न होओ। हमें सारे जगत् को भोगना तो है पर औरों की संपदा पर लोभ-भरी दृष्टि नहीं डालनी है। यह कैसे संभव हो सकता है? मुझ देवदत्त से कहा जाता है कि संसार में जो कुछ है उसका भोग करो लेकिन मैं देखता हूं कि मेरे पास भोगने लायक बहुत ही कम है जब कि मेरे पड़ोसी हरिश्चन्द्र के पास बेतहाशा धन-दौलत है, तब मैं भला उसकी समृद्धि से ईर्ष्या करने से कैसे बच सकता हूं और अगर सुरक्षा के साथ हो सके तो उसे अपने भोगने के लिये पाने की कोशिश क्यों न करूं। मैं कोशिश न करूंगा क्योंकि मैं नहीं कर सकता, क्योंकि मैंने अनुभव कर लिया है कि इस जगत् में ब्रह्म के सिवा कुछ नहीं है और वह अपनी शक्ति से विश्व को प्रकट कर रहा है। न तो कोई देवदत्त है न हरिश्चंद्र, चेतना की विभिन्न स्थितियों में ब्रह्म ही है जिसे ये नाम दिये गये हैं; इसलिये अगर हरिश्चन्द्र अपनी धन-संपदा को भोग रहा है तो मैं ही उनका भोग कर रहा हूं क्योंकि हरिश्चन्द्र मैं ही तो हूं—मेरा शरीर नहीं जिसमें मैं बंदी हूं, मेरी कामनाएं भी नहीं जो मेरे शरीर को दुखी बनाती हैं बल्कि मेरी सच्ची आत्मा, मेरे अंदर का पुरुष है जो जगत् के सभी मधुर, कटु, कोमल, महान्, सुंदर, भयंकर, सुखकर, भयावह, पूर्णतया अद्भुत और भोग्य नाटक का साक्षी और भोक्ता है, जिसे प्रकृति उसके सुख के लिये अभिनीत कर रही है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे सांख्य या अन्य दर्शन और ईसाइयत तथा अन्य धर्म घोषित करते हैं, एक नहीं अनगिनत पुरुष हैं तो इस ईसाई आदेश के लिये कोई आधार न रहेगा कि औरों के साथ भी अपने जैसा प्रेम करो या श्रुति और स्मृति के पूर्ण साधु पुरुष की इस व्याख्या का कोई आधार न होगा कि वह सब प्राणियों के सुख में आनंद लेता है और उसीमें व्यस्त रहता है '*सर्वभूतहिते रतः*'; क्योंकि तब हरिश्चन्द्र का मेरे साथ किसी प्रकार का कोई संबंध न होगा और जड़ भौतिक को छोड़कर हमारे बीच कोई संपर्क-बिंदु न होगा और इसमें से तो प्रेम और सहानुभूति की जगह घृणा और ईर्ष्या उभरने के लिये ज्यादा तैयार होते हैं। तब फिर मैं उसे अपने से ज्यादा कैसे पसंद कर सकता हूं लेकिन वेदांत की दृष्टि से यह पसंद स्वाभाविक, उचित और अंत में अनिवार्य है। यह अनिवार्य है क्योंकि मैं पशु से मनुष्यतक उठा हूं इसलिये मुझे मनुष्य से देवतक उठना चाहिये। यह पसंद बारहमासी कुंआ या झरना है; विकास का अर्थ है ब्रह्म का, वैश्व आत्मा का अधिकाधिक विस्तृत अंतःप्रकाश, जड़तत्त्व के मिथ्यात्व से आत्मा के सत्य की ओर प्रगति और यह प्रगति चाहे जितनी धीमी क्यों न हो, है अनिवार्य। अपने अंदर औरों की वरीयता कैसे अनिवार्य, स्वाभाविक और उचित हो सकती है ? यह स्वाभाविक है क्योंकि मैं सचमुच दूसरे को अपनी अपेक्षा अधिक पसंद नहीं कर रहा बल्कि अपनी सच्ची आत्मा को मिथ्या पर वरीयता दे रहा हूं। अपने अकेले शरीर और मन में रहनेवाले भगवान् पर, सबमें रहनेवाले भगवान् को, केवल मेरे, देवदत्त के अंदर रहनेवाले भगवान् की अपेक्षा देवदत्त और हरिश्चन्द्र में रहनेवाले भगवान् को वरीयता देता हूं। यह उचित और अनिवार्य है क्योंकि मेरे लिये यह ज्यादा अच्छा है कि केवल अपना सुख भोगने की जगह हरिश्चन्द्र का सुख भोगूं, क्योंकि इस तरह मैं ब्रह्म के अपने ज्ञान को केवल बौद्धिक धारणा या स्वीकृति बनाये रखने की जगह एक अनुभव में बदल सकूंगा—और स्मृतियां कहती हैं कि अनुभव ज्ञान का सारतत्त्व है। इसी कारण पूर्ण प्रेम, इससे मेरा मतलब नारी के प्रति नर का केवल ऐंद्रिय आवेश नहीं है, एक महान् और उदात्त बनानेवाली चीज है क्योंकि इसके द्वारा वैश्व चेतना की दो पृथक् स्थितियां एक बन जाती हैं। और भी अधिक उदात्त और उदात्त बनानेवाला है उस देश-प्रेमी का प्रेम जो अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देश के लिये जीता और मरता है क्योंकि इस तरह वह करोड़ों दिव्य-इकाइयों के साथ एक हो जाता है। और भी अधिक महान्, उदात्त और उन्नत है मानव-प्रेमी परोपकारी की आत्मा जो परिवार या देश को भूले बिना मानवजाति या प्राणी मात्र के लिये जीता और मरता है। सबसे अधिक बुद्धिमान् मुनि, सबसे बड़ा योगी वह है जो ब्रह्मतक केवल ज्ञान द्वारा नहीं पहुंचता, भक्ति के पंखों पर उड़कर भगवान्‌तक नहीं जा पहुंचता बल्कि भगवान् को अर्पित कर्म द्वारा स्वयं वही (भगवान्) बन जाता है, जो अपने-आपको पूरी तरह से अपने परिवार और मित्रों के लिये, अपने देश और मानवजाति के लिये, समस्त जगत्, हां और जब वह कर सके तो सारे सौर-मंडल तथा मंडलों पर मंडल, सारे विश्व के लिये अपने-आपको दे सकता है।

इसीलिये उपनिषद् हमसे त्याग द्वारा भोग करने के लिये कहते हैं। यह कहने का एक विचित्र ढंग है '*तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः*'। किसी आदमी से यह कहना एक विलक्षण बात है कि वह त्याग दे और जिस चीज को उसने त्यागा है उसीका अपने उत्सर्ग द्वारा भोग करे। साधारण मनुष्य इसको एक संकटापन्न विरोधाभास मानकर इससे घबराता है; लेकिन उपनिषद् का द्रष्टा हमसे अधिक बुद्धिमान् है और उसका वक्तव्य शब्दशः सच्चा है। सोचो, इसका क्या मतलब है। इसका अर्थ यह है कि हम अपने छोटे-मोटे निजी आनंद और सुख को त्याग दें ताकि हम आंखोंतक औरों के आनंद में स्नान कर सकें और एक आदमी का सुख चाहे जितना अधिक क्यों न हो, सैंकड़ों का संयुक्त सुख निश्चय ही कहीं अधिक होना चाहिये। त्याग द्वारा तुम अपने सुख को सैंकड़ों गुना अधिक कर सकते हो। अगर तुम सच्चे देश-प्रेमी हो तो तुम एक आदमी के नहीं बल्कि तीस करोड़ों[1] के सुखों का अनुभव करोगे, अगर तुम सच्चे लोक-हितैषी हो तो पृथ्वी के अनगिनत करोड़ों लोगों के सुख अमृत-सागर की तरह तुम्हारी आत्मा में से बहेंगे, लेकिन तुम कहते हो, 'तो क्या दुःख भी प्रवाहित होगा ?' वह भी मधुरता की घोर पीड़ा है जो आत्मा को स्वर्गतक उठाती है जिसे तुम सुख, निर्भर रहने के अद्वितीय सुख में बदल सकते हो, जिस देश के लिये तुम अपनी बलि देते हो या

[1] उन दिनों भारत की आबादी इसीके आस-पास थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानवजाति के लिये, जिसमें तुम भगवान् को पाना चाहते हो, उसके दुःखों को आनंद में बदल देते हो; इसके लिये केवल लगातार दृढ़ता के साथ, धैर्यपूर्वक प्रयास करना अपने-आपमें अकथनीय हर्ष है। ऐसे उद्देश्य के लिये पराजय भी एक कठोर सुख है जो अंतरात्मा को नये और निरंतर प्रयास के लिये तैयार करती है आर बलिदान के लिये उपयुक्त आत्माएं, जय हो या पराजय दोनों से समान बल प्राप्त करती हैं। याद रखो, शाश्वत अपने-आपको पूरी तरह बलहीन आत्माओं को नहीं देते। बलवान्, शूरवीर आत्मा ही भगवान्‌तक पहुंचती हैं। दूसरे लोग दूर से ही उनकी छाया का स्पर्श कर पाते हैं। इस भांति जो व्यक्ति औरों के भले के लिये उस थोड़े-बहुत को त्याग सकता है, जिसे वह अपना कहता है, वह बदले में इस गतिशील विश्व में जो कुछ जगत् है उस सबको भोग सकता है।

अगर तुम इतने ऊंचे नहीं उठ सकते तब भी उपनिषद् के शब्द तुम्हारे लिये और तरीकों से सच्चे हैं। तुमसे यह नहीं कहा जाता है कि तुम जरूर ही भौतिक रूप से अपने भोग की वस्तुओं को त्याग दो। इतना काफी होगा कि तुम उन्हें अपने हृदय से छोड़ दो। तुम उनका इस भाव से भोग करो कि न तो उन्हें पाकर खुशी से फूल उठो न उन्हें खोकर दुःखी हो। वह सुख स्पष्ट, गहरा और शांत होगा, भाग्य उसे भंग नहीं कर सकता, डाकू उसे चुरा नहीं सकते, शत्रु उसे अभिभूत नहीं कर सकते। अन्यथा तुम्हारा सुख-भोग भय, दुःख, कष्ट और आवेश के उतार-चढ़ाववाला और टूटा हुआ होगा—उसकी वृद्धि के लिये आवेश, उसे बनाये रखने के लिये कष्ट, कम होने का दुःख, उसके खो जाने का भय होगा। त्याग द्वारा सुख भोगना कहीं अधिक अच्छा है। अगर तुम भौतिक रूप से त्यागना चाहो तो वह भी अच्छा है बशर्ते कि तुम यह सावधानी बरतो कि तुम मन में उस भोग के विचारों को पोसते न रहो। यह बहुधा सुख-भोग की ओर जाने का द्रुततम तरीका होगा। स्वभावतः धन-दौलत, ख्याति और सफलता उस आदमी से भागती हैं जो उनके पीछे दौड़ता है। वह उन्हें पाये बिना अपना हृदय तोड़ लेता है या मर जाता है। और अगर वह उन्हें पा भी ले तो कठिनाइयों के एक नरक, परिश्रम के एक पहाड़ के बाद पाता है। लेकिन जब कोई धन-दौलत और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महिमा की ओर पीठ कर देता है तो, यदि उसके पिछले कर्म इंकार न करें, ये चीजें भीड़ लगाकर उसके चरणों पर आ गिरती हैं और अगर वे आ जाएं तो वह उनका रस लेगा या उन्हें छोड़ देगा? वह उन्हें त्याग सकता है—वह एक महान् पथ है और अनगिनत संतों ने यही रास्ता अपनाया है। लेकिन यह जरूरी नहीं है कि तुम उन्हें त्याग ही दो। तुम उन्हें लेकर उनका उपभोग कर सकते हो। लेकिन तब तुम उनका उपभोग कैसे करोगे? अपने निजी सुख के लिये नहीं, अपने मिथ्या व्यक्तित्व के लिये नहीं क्योंकि तुम पहले ही उस प्रकार के भोग को अपने हृदय से निकाल चुके थे। हां, तुम उनके अंदर भगवान् का और भगवान् में उनका सुख भोग सकते हो। जैसे राजा नजराने को छू भर देता है और फिर वह सरकारी खजाने में चला जाता है उसी तरह तुम भी, जो संपदा तुम्हारे पास आये उसे छूकर अपने चारों ओर के लोगों को, अपने देश को, सारी मानवजाति को दे सकते हो और उन सभी में ब्रह्म को देख सकते हो। वह अपनी महिमा को नम्रता के साथ छिपा सकता है लेकिन उससे मिलनेवाले प्रभाव का उपयोग वह मनुष्य को ऊपर भगवान् की ओर चढ़ाने में कर सकता है। ऐसा मनुष्य तेजी से सुख-दुःख के, जय-पराजय के ऊपर चढ़ जायेगा क्योंकि वह दुःख में हो या सुख में, अपने-आपको भगवान् के नजदीक, भगवान् के साथ अनुभव करेगा, भगवान् के जैसा और फिर अंत में स्वयं भगवान् अनुभव करेगा। इसीलिये उपनिषद् कहता है :

"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः"।

इस जगत् में अपने कर्म करता जा और सौ वर्ष जीने की इच्छा कर।

वेदों के अनुसार मनुष्य के स्वाभाविक जीवन की अवधि है सौ वर्ष। अतः श्रुति हमसे कहती है कि हमें जीवन से मुंह न मोड़ना चाहिये, हमें असमय में उसे उठा न फेंकना चाहिये, या हमें अपने शरीर से जल्दी छुटकारा पाने की इच्छा भी न करनी चाहिये बल्कि खुशी से अपनी अवधि पूरी करनी चाहिये, मनुष्य को सामान्य जीवन के पूरे विस्तार को पूरा करने के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये पूरी तरह तैयार रहना चाहिये ताकि हम इस जगत् में अपने कर्म पूरे करते चलें। 'कुर्वन्' शब्द पर 'एक' जोड़कर जो खास जोर दिया गया है उसकी ओर ध्यान दो। वस्तुतः हमें इस जगत् में अपने कर्म करते जाना चाहिये, उन्हें करने से बचना न चाहिये। आत्मा को पाने के लिये पहाड़ों की ओर दौड़ लगाने की जरूरत नहीं है क्योंकि आत्मा यहीं है, तुम्हारे अंदर भी और तुम्हारे चारों ओर भी और अगर तुम यहां से भाग चलो, आत्मा को पाने के लिये नहीं बल्कि संसार के दुःख-दैन्य से बच निकलने के लिये, जिसका सामना करने के लिये तुम बहुत दुर्बल हो, तब तुम इस जन्म के लिये ही नहीं, शायद आनेवाले अनेक जन्मों के लिये आत्मा को खो बैठते हो। मैं तुम्हारे आगे दोहराता हूं कि दुर्बल और भीरु भगवान्‌तक आरोहण नहीं कर पाते, केवल प्रबल और वीर ही जा सकते हैं। ब्राह्मण बनने से पहले हर व्यष्टिगत जीवात्मा को पूर्ण क्षत्रिय बनना चाहिये।

शिष्य—यह सब उसके विपरीत है जो हमें हमारे उन मेधावी पुरुषों ने सिखाया है जिनका हम बड़ी प्रसन्नता के साथ आदर करते हैं। आज भी वे यही सिखाते और इसीके अनुसार व्यवहार करते हैं।

गुरु—क्या तुम्हें विश्वास है कि बात ऐसी है? वे क्या सिखाते हैं?

शिष्य—यह कि जगत् से जुगुप्सा या वैराग्य ही सबसे अच्छा मार्ग है और मानव आत्मा में उसका प्रवेश ही मुक्ति के लिये पहला आह्वान है और मुक्ति कर्म से नहीं ज्ञान से मिलती है।

गुरु—वैराग्य एक बड़ा शब्द है और इसके बहुत सारे अर्थ हो गये हैं। और चूंकि आर्यावर्त के लोगों ने अर्थों को आपस में गड्ड-मड्ड और अस्त-व्यस्त कर दिया है इसीलिये इस पवित्र और प्राचीन देश में तमस् और अनार्य भीरुता, दुर्बलता और स्वार्थ सब ओर फैल गये हैं और देश को अंधकार के एक मोटे आवरण से ढके हुए हैं। एक वैराग्य है बलवान् पुरुष का जो सबसे सच्चा और सबसे उदात्त होता है। वह इस संसार की समस्त मधुरता चखने के बाद यह जान पाता है कि उसमें स्थायी और टिकाऊ मधुरता नहीं है। वह सच्चा और अमर हर्ष नहीं है जिसकी मांग उसकी सच्ची और अमर आत्मा करती है और जिसके लिये वह अपने अंदर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक गहरी, अधिक पवित्र और अक्षय चीज की ओर मुड़ती है। फिर दुर्बल व्यक्ति का वैराग्य है जो जगत् की मधुरता के लिये लालायित, हांपता-कांपता और प्यासा रहा है लेकिन जिसे भाग्य ने या उससे अधिक मजबूत लोगों ने धकिया दिया और चलता कर दिया है। वह योग और वेदांत का उपयोग उस तरह करेगा जैसे पियक्कड़ शराब की बोतल का और अफीमची अपनी गोली या अफीम की प्याली का करता है। जिन ऋषियों ने इन बातों को जगत् के आगे प्रकट किया था उन्होंने इन महान् वस्तुओं को इन हेय उपयोगों के लिये नहीं दिया था। अगर ऐसा आदमी मेरे पास दीक्षा के लिये आये तो मैं उसे श्रीकृष्ण द्वारा पार्थ को दी गयी इस लताड़ के साथ वापिस भेज दूंगा—

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥
क्लैब्यं मास्म गमः पार्थ नैतत् त्वय्युपपद्यते।

सचमुच यह दुर्बलता उस व्यक्ति के अयोग्य है जो शाश्वत ब्रह्म, जगतों के स्रष्टा और संहार-कर्ता से भिन्न नहीं है। लेकिन इससे यह न समझा जाये कि मैं दुःख और निराशा से आनेवाले सच्चे वैराग्य की निंदा करता हूं क्योंकि कभी-कभी मनुष्य अपने अज्ञान में हेय वस्तुओं के लिये प्रयास करके हार जाते हैं तो यह दुर्बलता के कारण नहीं बल्कि इसलिये होता है कि वे चीजें उनकी सच्ची महानता और उच्च नियति के नीचे होती हैं। तब उनकी आंखें खुल जाती हैं और वे ध्यान, एकांत और समाधि की खोज करते हैं, अपने दुःखों और अतृप्त लालसाओं को डुबाने के लिये एक प्याले की तरह नहीं बल्कि अपनी दिव्य शक्ति को चरितार्थ करने और दिव्य प्रयोजन के लिये उसका उपयोग करने के लिये। कभी-कभी महान् आत्माएं संन्यास मार्ग खोजती हैं क्योंकि वे भगवान् और गुरु के साथ एकांत में ही सबसे अच्छी तरह ब्रह्मतेज विकसित कर सकती हैं और एक बार वे उसे पा लें तो वे उसे जगत् पर धाराप्रवाह के रूप में उंडेलती हैं। शंकराचार्य ऐसे ही थे और कभी औरों का दुःख या सारे जगत् का दैन्य उन्हें सुख और आनंद में पाता है और उन्हें वहां से हटा देता है जैसे बुद्ध को निकाल दिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया—ताकि वे कष्ट पानेवालों के लिये स्वयं अपनी सत्ता की गहराई में सहायता खोज सकें। मनुष्यों में संन्यासी सबसे महान् होते हैं क्योंकि कर्म के लिये सबसे अधिक बलवान् होते हैं, भगवान् के अंदर, भगवान् का कार्य करने के लिये सबसे अधिक महान्।

शिष्य—मैं फिर से कहता हूं कि यह महान् अद्वैतवादी शंकराचार्य तथा अन्यों की शिक्षा के विपरीत है।

गुरु—यह श्रीकृष्ण की शिक्षा के विपरीत नहीं है जो सब गुरुओं से महान् और सर्वोत्तम जगत् गुरु हैं। वे महाभारत में संजय से कहते हैं कि कर्म द्वारा मुक्ति के मत और अकर्म द्वारा मुक्ति के मत के बीच कर्म द्वारा मुक्ति का मत ही सच्चा मत है और वे दूसरे की ऐसा कहकर निंदा करते हैं और कहते हैं कि वह दुर्बलों की बकवास है। वे भगवद्गीता में बार-बार कर्म की श्रेष्ठता पर जोर देते हैं।

शिष्य—यह सच है परंतु वे यह भी कहते हैं कि ज्ञान अन्य सभी चीजों से श्रेष्ठ है और उसके समान और कुछ भी नहीं है।

गुरु—और सचमुच है भी नहीं क्योंकि ज्ञान अनिवार्य है, ज्ञान प्रथम और सबसे महान् है। ज्ञान के बिना कर्म मनुष्य का उद्धार न करेगा बल्कि उसे अधिकाधिक गहरी दासता में डुबाता जायेगा। उपनिषद् जिन कर्मों की बात कहते हैं वे तो तब किये जाते हैं जब तुम सारे विश्व को भगवान् में प्रतिष्ठित कर दो यानी जब तुम यह अनुभव कर लो कि सब कुछ एक ब्रह्म ही है और तुम्हारे कर्म पुरुष के आनंद के लिये प्रकृति द्वारा फैलाये गये नाटकीय भ्रम हैं। तब तुम अपने कर्म '*तेन त्यक्तेन*' या जैसे करने के लिये श्रीकृष्ण तुमसे कहते हैं, अपने कर्मों के फल की स्पृहा को त्यागकर और अपने सारे कर्म उन्हीं को अर्पित करके करोगे—अपनी उस निम्नतर अनात्मा को नहीं जो सुख-दुःख का अनुभव करती है बल्कि अपने अंदर स्थित उस ब्रह्म को अर्पण करके, जो केवल लोक-संग्रह के लिये, '*लोकसंग्रहार्थम्*', कर्म करते हैं, ताकि अप्रशिक्षित जन-साधारण को तुम्हारी अकर्मण्यता द्वारा चकराने और भटक जाने की अपेक्षा जगत् को तुम्हारे कर्मों के दैवी स्वभाव से सहायता, बल और सामर्थ्य मिले।

(क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीअरविंद के साथ बातचीत

(भारत और यूरोप, देवी-देवता, अंधविश्वास इत्यादि के बारे में)

२४-८-१९२६

शिष्य—भारत की एकता और यूरोप की एकता में क्या फर्क है?

श्रीअरविंद—दोनों बिल्कुल अलग-अलग हैं। यूरोप में भारत की तरह कोई निश्चित सामुदायिक व्यक्तित्व नहीं है। यूरोप के विभिन्न देशों की विभिन्न प्रकृति है। इंग्लैंड और फ्रांस की अलग-अलग विशिष्टताएं हैं।

शिष्य—क्या भारत के विभिन्न प्रांतों में वैसे ही भेद हैं जैसे यूरोप के देशों में?

श्रीअरविंद—नहीं, भारत के अलग-अलग भाग आपस में उसी तरह संबद्ध हैं जैसे इंग्लैंड, स्कॉटलैंड, वेल्स इत्यादि। यूरोप की एकता अभी बन रही है लेकिन भारत की सामुदायिक एकता एक तथ्य है। भारत में एक अति-व्यक्तित्व है जो विभिन्न प्रांतों में भेदों को विकसित कर रहा है जब कि यूरोप के अलग-अलग देश मिलकर सामुदायिक व्यक्तित्व विकसित करने की कोशिश कर रहे हैं।

शिष्य—क्या भारत का यह अति-व्यक्तित्व हमेशा से है?

श्रीअरविंद—हां, जहांतक इतिहास से पता चल सकता है।

*

श्रीअरविंद—('क' से) तुमने देवताओं के रूप के बारे में पूछा था। उनके निश्चित रूप वे हैं जो उनके स्वभाव को प्रकट करते हैं लेकिन मानव चेतना की सीमाओं को पार किये बिना तुम इन रूपों को नहीं देख सकते। मनुष्यों के आगे देवता जिन रूपों में प्रकट होते हैं उनमें दो तत्त्व होते हैं, पहला है उनके निश्चित रूप का प्रतिबिंब, हो सकता है कि प्रतिबिंब पूर्ण न हो और मानसिक या प्राणिक लोक के अनुसार बदले। दूसरा है मन; भक्त की चेतना भी इसमें कुछ योगदान दे सकती है।

जो निर्वैयक्तिक वृत्ति से भगवान् की ओर जाते हैं वे उन्हें मनुष्य के रूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में देखते हैं, शायद इसीलिये भगवान् को पुरुष कहा जाता है।

(यहां यह बात चली कि युग या कल्प अपने-आपको ठीक एक ही रूप में दोहराते रहते हैं। श्रीअरविंद ने कहा कि यह ठीक नहीं है। अलीपुर जेल में उन्हें मन्वंतरों के अंतर्दर्शन हुए थे जिन्हें उस समय वे बहुत महत्त्वपूर्ण समझते थे। वहां उन्होंने देखा था कि ये अपने-आपको ठीक उन्हीं रूपों में नहीं दोहराते, वे ऊंचे और ज्यादा ऊंचे लोकों में अपने-आपको दोहराते हैं।)

शिष्य—क्या ऐसे जगत् हैं जहां कोई विकास नहीं होता ?

श्रीअरविंद—हां।

शिष्य—वहां कैसी गति होती है ?

श्रीअरविंद—कोई गति हो ही क्यों ?

शिष्य—वहां का जीवन कैसा होता है ?

श्रीअरविंद—बहुत सुखी जीवन। केवल मनुष्य ही यह मानता है कि संघर्ष, प्रगति, मुस्कान और आंसुओं के बिना सुख नहीं हो सकता।

(इसके बाद कुछ अंधविश्वासों के बारे में बात चली। 'क' ने किसीकी शादी की बात की जिसमें ज्योतिष के अनुसार एक राक्षस-गण की स्त्री का विवाह नरगण के पुरुष के साथ हुआ और पति की मृत्यु बहुत छोटी अवस्था में हो गयी।)

श्रीअरविंद—इसमें कुछ सत्य है। काम-क्रिया में प्राणिक शक्तियों का प्रबल या यूं कहें बहुत ही उग्र आदान-प्रदान होता है। कुछ लोग औरों की प्राण शक्ति को पूरी तरह खींच लेते हैं। राक्षसगण आदि प्राणिक सत्ताओं के प्रतिनिधि हैं।

*

शिष्य—क्या कुछ व्यक्ति इकट्ठे होकर सामुदायिक व्यक्तित्व बना सकते हैं ?

श्रीअरविंद—यह तो ऐसा प्रंश्न है जैसे अंडा पहले या मुरगी पहले ?

शिष्य—क्या भारत का अति-व्यक्तित्व वही है जिसे हम भारत-शक्ति कहते हैं ?

श्रीअरविंद—हां। अति-व्यक्तित्व भगवान् की एक ऐसी शक्ति हो सकता है जो देश की प्रकृति में अभिव्यक्त होती है। वह एक तरह का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंडल बना देती है और जो लोग इस मंडल के नीचे आते हैं उनके स्वभाव और गुण एक जैसे होते हैं।

शिष्य—क्या इस अतिवैयक्तित्व को देवता कहा जा सकता है ?

श्रीअरविंद—हां, चाहे वह अतिमानसिक क्षेत्र का न हो फिर भी वह अतिमानसिक देवों से निर्गत हो सकता है।

शिष्य—क्या अतिमानसिक से परे भी कोई देवता है ?

श्रीअरविंद—हमें उनके बारे में परेशान होने की जरूरत नहीं। अतिमानसिक देवों को जानना ही अपने-आपमें बड़ी परेशानी है।

शिष्य—क्या देवों का व्यक्तित्व होता है ?

श्रीअरविंद—निश्चय ही।

शिष्य—देवों और मानवों के व्यक्तित्व में क्या फर्क होता है ?

श्रीअरविंद—वही जो तुम्हारे और छिपकली के व्यक्तित्व में है।

(श्रीअरविंद सर्कल १९८४ से)

सोसायटी समाचार

हम अपने सब पाठकों को नये वर्ष की शुभ कामनाएं भेजते हैं।

३ जनवरी को श्री नवजात जी का जन्मदिन है, ३ और ४ को पांडिचेरी विश्व-विद्यालय में डा॰ शिशिर घोष नवजात-स्मारक भाषण देंगे।

सोसायटी के बीच आफिस में पहली नवंबर से डा॰ नाडकर्णी ने १० दिन का सावित्री शिविर किया।

४ अक्तूबर को हमारी राजपुरा शाखा ने अंबाला और पटियाला शाखाओं की सहायता से रोटरी क्लब में श्रीअरविंद की दृष्टि और उनके कार्य के बारे में भाषणों की व्यवस्था की।

कपड़वणज (गुजरात) के श्रीअरविंदायन ने वहां पवित्र स्मृति की स्थापना की पांचवीं जयंती मनायी।

श्री नीरदवरण की पुस्तक "द मदर, स्वीटनेस एंड लाइट" का गुजराती अनुवाद "ज्योतिर्मयी मधुर मां" के नाम से बड़ौदा सोसायटी ने प्रकाशित किया है। मूल्य १५ रु।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामकृष्ण-वचनामृत

(माताजी द्वारा चुने हुए कुछ वचन)

विचार ही है जो व्यक्ति को ज्ञानी या अज्ञानी, पराधीन या स्वाधीन बनाता है। मन के कारण व्यक्ति पवित्र होता है, मन के कारण वह दुष्ट होता है, मन के कारण वह पापी होता है और मन ही व्यक्ति को धार्मिक बनाता है। इसलिये जिसका मन हमेशा भगवान् के ऊपर एकाग्र है उसे दूसरे किसी प्रकार के अभ्यास, भक्ति या आध्यात्मिक साधनाओं की आवश्यकता नहीं होती।

*

काम-वासना और धन से आसक्त मन वैसा ही है जैसे अपने छिलके से चिपकी हुई कच्ची सुपारी। जबतक सुपारी पक नहीं जाती तबतक वह अपने रस के सहारे छिलके से चिपकी रहती है। लेकिन समय के साथ जब रस सूख जाता है तो सुपारी अपने छिलके से अलग हो जाती है और हिलाने पर खड़खड़ाती है। इसी तरह जब काम-वासना और सोने की आसक्ति का रस सूख जाता है तब आदमी मुक्त हो जाता है।

*

कभी-कभी हलवाई की दुकान में बिक्री के लिये रखी हुई मिठाइयों पर मक्खियां बैठती हैं। लेकिन ज्यों ही कोई गंदगी से भरी टोकरी लेकर गुजरता है तो वे झट मिठाई छोड़कर गंदगी पर जा बैठती हैं। लेकिन मधुमक्खी कभी गंदी या मैली चीजों पर नहीं बैठती। वह हमेशा फूलों से मधु पीती है। सांसारिक लोग मक्खियों जैसे हैं। कभी-कभी वे दिव्य मधुरता का क्षणिक स्वाद पा लेते हैं, लेकिन गंदगी के प्रति स्वाभाविक झुकाव के कारण वे जगत् के कूड़े-करकट की ओर लौट आते हैं। इसके विपरीत, सत्पुरुष हमेशा दिव्य सौंदर्य के आनंददायक ध्यान में निमग्न रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान् का आनन्द गूढ़ और अद्‌भुत है; यह एक रहस्य की वस्तु है और एक ऐसा परमोल्लास है जिस पर समझदारी उपहास करने के लिये मुंह बनाया करती है, परन्तु जिस आत्मा ने उसे एक बार चख लिया है वह कभी उसका त्याग नहीं कर सकती, भले ही उसके कारण संसार में चाहे जितनी बदनामी, पीड़ा और परेशानी उठानी पड़े।

—श्रीअरविन्द

सहारनपुर सर्विस स्टेशन

पैट्रोल पम्प, देहरादून रोड

सहारनपुर—२४७००१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

A happy beginning
a good continuation
and no end —
an endless progression

14-5-57

New Horizon Sugar Mills (Pvt.) Ltd.

PONDICHERRY

Telegram : SAKAR
Phone : Town Office : 4280
Factory : 4423 4424

P.O. Box 29
Pondicherry
S. India

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
Registered with the Registrar of Newspapers for India
No. R. N. 18135/70
REGD. No. M. 8731

"The constant remembrance of the Divine is indispensable for transformation."

— THE MOTHER

With Best Wishes from:

MRS. KOYAL DEORAH CHARITABLE TRUST

28, VARSHA, 69/B, NEPEANSEA ROAD

BOMBAY - 4000 006

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्निशिखा

अखिल भारतीय पत्रिका

फरवरी १९९०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फरवरी १९९०　　　　वर्ष २०, अंक ७, पूर्णांक २३५

विषय-सूची

सन्देश		१
'संपादकीय' : संकल्प		२
दैनन्दिनी		३
ईशावास्योपनिषद्	श्रीअरविंद	७
सोसायटी समाचार		३९

आपका अग्निशिखा/पुरोधा का चंदा ... में समाप्त हो रहा है। कृपया अग्निशिखा के १० और पुरोधा के १४ शीघ्र भेजें अन्यथा अगला अंक वी. पी. पी. से जायगा। वी. पी. पी. लौट आने से हमें बहुत हानि होती है। अलग अनुस्मारक नहीं भेजा जायगा। कृपया चेक न भेजें। चाहें तो २२५ और २७५ एक साथ या किस्तों में देकर अग्निशिखा और पुरोधा के या ५०० देकर दोनों के आजीवन सदस्य बन सकते हैं।

अग्निशिखा वार्षिक १०.००　　　　आजीवन २२५.००

श्रीअरविंद सोसायटी की मासिक पत्रिका

संपादक : रवींद्र, अनुबेन
प्रकाशक : श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी–६०५००२
मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी–६०५००२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

भारत का
की प्रगति
नया रूप
के उद्देश्य
लिये, जो
सकता जो
की है जो
में यह भा
आदर्श व
वह है अ
की अभिव
प्राप्ति हुई
रूपांतरित
परदा हट
होगा और
से गढ़ा उ
के प्रति न
समस्त जं

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि

संदेश

भारत का विशिष्ट भाव और अभीप्सा है आध्यात्मिक आदर्श। लेकिन काल की प्रगति और मानवजाति की आवश्यकता की मांग है उस आदर्श को एक नया रूप और नया दिग्विन्यास देना। पुराने रूप और तौर-तरीके काल-पुरुष के उद्देश्य के लिये पर्याप्त नहीं हैं। भारत अपने-आपको उन कदमों के लिये, जो उसे आगे चलकर उठाने हैं, उन रेखाओं पर परिपूर्ण नहीं कर सकता जो बहुत संकीर्ण हैं। न ही हमारी आध्यात्मिकता किसी ऐसे जगत् की है जो बूढ़ा, घिसा-पिटा है और भगवान् की समस्त महान् सृष्टि के बारे में यह भाव लिये है कि वह भ्रम, दैन्यपूर्ण अनुपयोगिता से भरी है। हमारा आदर्श वह आध्यात्मिकता नहीं है जो जीवन से हाथ खींच लेती है बल्कि वह है आत्मा की शक्ति से जीवन पर विजय पाना। वह संसार को भगवान् की अभिव्यक्ति द्वारा स्वीकार करने का प्रयास है, साथ ही अभीतक जो कुछ प्राप्ति हुई है उससे अभिव्यक्ति के अधिक प्रयास द्वारा मानवजाति को रूपांतरित करने की कोशिश भी है, उसमें भगवान् और मनुष्य के बीच का परदा हट जायेगा और हम जिस दिव्य मानवता के योग्य हैं उसका जन्म होगा और हमारा जीवन आत्मा के सत्य, प्रकाश और उसकी शक्ति में फिर से गढ़ा जायेगा। उसका उद्देश्य है हमारे सारे कर्म को हमारे कर्मों के स्वामी के प्रति न्यौछावर करना, मनुष्य के अंदर महत्तर आत्मा की अभिव्यक्ति और समस्त जीवन को योग के रूप में अभिव्यक्त करना।

—श्रीअरविंद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संपादकीय :

संकल्प

गुरु नानक कह गये हैं :

"हे प्रभु ! सूर्य और चंद्रमा
तेरी आरती के दीप हैं।
गगनमंडल इन दीपों की थाली है,
उनमें नक्षत्रों के रत्न हैं
और उनका तेल
इन दियों को जगमगा रहा है,
चंदन की सुगंध ही तेरी धूप है,
वायु ही तेरा पंखा है,
सारे वन तेरे पुष्प हैं,
ओ मेरे महान् देवता !"

और श्रीअरविंद ने कहा, *"हमेशा इस तरह रहो मानों तुम परम प्रभु अ दिव्य जननी की आंखों तले रह रहे हो।*

"ऐसी कोई चीज न करो, ऐसी कोई बात न सोचो और न अनुभव क जो भागवत उपस्थिति के अयोग्य हो।"

श्रीअरविंद ने आश्रमवासियों को यह संदेश दिया था—

"हमेशा इस तरह व्यवहार करो मानों माताजी तुम्हें देख रही हैं क्योंकि सचमुच वे हमेशा उपस्थित रहती हैं।"

बात बिल्कुल सच्ची है पर इसे अनुभव करना इतना आसान नहीं है लेकिन चिंता की बात नहीं, हमारे पुरखे कह गये हैं—

दुरापमपि लोकेऽस्मिन् यद्यद्वस्त्वभिवाञ्छति।
तत्तदाप्नोति मेधावी तस्मात्कार्यः समुद्यमः।

इस लोक में कठिनाई से मिलनेवाली जिस-जिस वस्तु की मनुष्य इच्छा करता है पुरुषार्थ से उसे वह सब प्राप्त हो जाता है। अतः निरंतर उद्यम करना चाहिये।

आइये माताजी के जन्मदिन पर हम इसीके लिये संकल्प करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दैनन्दिनी

फरवरी

१. **प्रश्न**—पिछले दिनों इतनी अधिक समस्याएं मेरे सामने रही हैं। पता नहीं, उन्हें हंसी-खुशी कैसे हल किया जाये।
उत्तर—स्थायी और सच्चा सुख पाने का एकमात्र उपाय है, भागवत कृपा पर पूर्ण और ऐकांतिक निर्भरता।

२. अपनी कठिनाइयों को भूल जाओ। केवल भागवत कार्य करने के लिये उनके अधिकाधिक घूर्ण यंत्र बनने के बारे में सोचो और भगवान् तुम्हारी सारी कठिनाइयों को जीतकर तुम्हें रूपांतरित कर देंगे।

३. बोलना चांदी है लेकिन मौन सोना है।

४. शेखी, शेखी, प्रगति के लिये सबसे बड़ी बाधाओं में से एक। अगर तुम सच्ची प्रगति की अभीप्सा करते हो तो तुम्हें बड़ी सावधानी के साथ इस मूर्खता से बचना चाहिये।

५. शूरता है सभी परिस्थितियों में परम सत्य के लिये डटे रह सकना, विरोध में भी उसकी घोषणा करना और जब कभी आवश्यकता हो तो उसके लिये युद्ध करना।
और हमेशा अपनी ऊंची-से-ऊंची चेतना के द्वारा काम करना।

६. अचंचल रहो, अपने-आपको अनासक्त करके साक्षी की तरह अवलोकन करने की कोशिश करो, आवेश में आकर क्रिया करने की समस्त संभावना को रोकने की कोशिश करो।

७. जब कठिनाइयां तुम्हें घेर लें तो यह जानो कि भागवत कृपा तुम्हारे साथ है।

८. अपने-आप सच्चा बनने के लिये यह जरूरी नहीं है कि तुम औरों के सच्चा बनने का इंतजार करो।

९. और लोग क्या करते हैं इससे अपने-आपको व्यथित न करो, यह बात जितनी बार कही जाये कम है। मूल्यांकन न करो, आलोचना न करो, तुलना न करो, यह तुम्हारा काम नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१०. कामनाओं के आगे झुकना उनसे पिंड छुड़ाने का तरीका नहीं है। कामनाओं का कहीं अंत नहीं है। प्रत्येक संतुष्ट कामना के स्थान पर एक और आ जाती है और वे अधिकाधिक शोर मचाती जाती हैं। इस निम्नतर चेतना में से बाहर निकलकर उच्चतर चेतना में उठकर कामनाओं पर विजय पाकर ही तुम उनसे पिंड छुड़ा सकते हो।

११. जो कुछ तुम्हें भगवान् से दूर ले जाता है उसके साथ किसी प्रकार का कोई संबंध न रखो।

१२. आवेगशील पुरुष, जो अपने ऊपर नियंत्रण नहीं कर सकता, उसका जीवन अव्यवस्थित होता है।

१३. **प्रश्न**—मुझे अपना स्वभाव बचकाना लगता है।
उत्तर—तुम्हें इन छोटी-मोटी चीजों को बहुत महत्त्व न देना चाहिये। महत्त्वपूर्ण चीज है उस आदर्श को अपने आगे रखना जिसे तुम चरितार्थ करना चाहते हो और उसे पाने के लिये अपना अच्छे-से-अच्छा प्रयास करो।

१४. प्रगति का कोई अंत नहीं है और हर रोज, तुम जो कुछ करते हो उसे ज्यादा अच्छी तरह करना सीख सकते हो।

१५. यह न सोचो कि तुम क्या थे, केवल उसीके बारे में सोचो जो तुम होना चाहते हो और तुम निश्चय ही प्रगति करोगे।

१६. तेरी जय हो प्रभु! सब विघ्नों पर विजय पानेवाले नाथ! तेरी जय हो! ऐसी कृपा कर कि हमारे अंदर कोई भी चीज तेरे कार्य में बाधक न हो।

१७. अगर तुम चाहते हो कि तुम्हारा आदर किया जाये तो हमेशा आदरणीय रहो।
अच्छा करने की कोशिश करो और यह कभी न भूलो कि भगवान् तुम्हें हर जगह देखते हैं।

१८. दिव्य ज्योति निरंतर बढ़ती ही जा रही है।
और छाया? वह तो बस छाया है,
ज्योति के बढ़ने से विलीन हो जायेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९. सिर दर्द और सिर के चक्करों से पिंड छुड़ाना बहुत कठिन नहीं है। तुम्हारी अवस्था कितनी भी खराब क्यों न हो, ऊपर स प्रकाश को पुकारो। यह अनुभव करने की कोशिश करो कि तुम्हारे सिर के ऊपर से प्रकाश तुम्हारे अंदर प्रवेश कर रहा है और अपने साथ स्थिरता और शांति ला रहा है। अगर तुम गंभीरता के साथ ऐसा करो तो तुम्हारा सिर दर्द और चक्कर छू-मंतर हो जायेंगे।

२०. शांति और स्थिरता बीमारी के महान् उपचार हैं।
जब तुम अपने कोषाणुओं में शांति ला सको तो तुम नीरोग हो जाते हो।

२१. अचंचल रहना और एकाग्र होना, ऊपर से शक्ति को अपना काम करने देना, यह किसी भी बीमारी और हर एक बीमारी को ठीक करने का सबसे निश्चित तरीका है। अविचल श्रद्धा और मजबूत संकल्प के साथ अगर इसे समय पर और पर्याप्त समय के लिये किया जाये तो ऐसी कोई भी बीमारी नहीं जो इसका प्रतिरोध कर सके।

२२. सभी चीजों में सबसे अधिक कठिन है भागवत चेतना को भौतिक जगत् में उतारना : क्या इसीलिये इस प्रयास को छोड़ देना चाहिये ? हर्गिज नहीं।

२३. भागवत विजय सभी विघ्न-बाधाओं को पार कर लेगी।

२४. जिस क्षण तुम संतुष्ट हो जाते हो और किसी चीज के लिये अभीप्सा नहीं करते, तुम मरना शुरू कर देते हो। जीवन गति है, जीवन प्रयास है, वह आगे कूच कर रहा है, भावी अंत:प्रकाशों और उपलब्धियों की ओर चढ़ रहा है। आराम करना चाहने से बढ़कर खतरनाक कुछ नहीं है।

२५. हम एक-एक कदम करके, सत्य से सत्य की ओर बिना रुके बढ़ते चलेंगे जबतक कि हम आगामी कलकी पूर्ण उपलब्धितक न जा पहुंचें।

२६. समस्त संकीर्णता, स्वार्थपरता, सीमाबंधन को झाड़ फेंको और मानव एकता की चेतना के प्रति जागो। शांति और सामंजस्य पाने का यही एक रास्ता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२७. विरोधी शक्तियों को संसार में इसीलिये सहा जाता है क्योंकि वे मनुष्य की सच्चाई की परख करती हैं। जिस दिन मनुष्य पूरी तरह सच्चा हो जायेगा वे चली जायेंगी, तब उनके अस्तित्व का कोई कारण न रह जायेगा।

२८. विश्व के आश्चर्यों का कहीं अंत नहीं है।

हम अपने छोटे-से अहंकार की सीमाओं से जितना अधिक मुक्त हों चलें, उतना ही अधिक ये आश्चर्य अपने-आपको हमारे आगे प्रक करेंगे।

एक क्षण के लिये भी यह न भूलो कि यह सब स्वयं भगवान् अपने अंदर से बनाया है। वे केवल हर चीज में उपस्थित ही नहीं अपितु स्वयं हर चीज हैं। भेद केवल अभिव्यंजना और अभिव्यक्ति है।

अगर तुम यह भूल जाओ तो सब कुछ खो बैठोगे।

————

विवेकी और विरक्त मन के बिना धर्म-ग्रंथों और पवित्र शास्त्रों को ध्यान से पढ़ना निरर्थक है। विवेक और वैराग्य के बिना कोई आध्यात्मिक प्रगति संभव नहीं है।

*

"ग्रंथ" का अर्थ हमेशा पवित्र पुस्तक नहीं होता, बहुधा "ग्रंथि" या गांठ होता है। अगर व्यक्ति हर प्रकार के अहम् को और जरूरत पड़े तो अपने सुखों को भी त्यागकर सत्य को पाने की तीव्र अभीप्सा के साथ न पढ़े तो केवल पढ़ना उसके अंदर पांडित्य-प्रदर्शन, धृष्टता और अहंभाव ही पैदा करेगा जो उसके मन में बहुत सारी ग्रंथियों की न्याई हैं।

— रामकृष्ण परमहंस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(*गुरु—गतांक से आगे*)

उपनिषद् आगे कहता है, 'इस तरह, इसके सिवा तुम्हारे लिये कोई और मार्ग नहीं है, कर्म मनुष्य से चिपकता नहीं है।' इसका अर्थ यह है कि निष्काम कर्म, त्याग के बाद और भगवान् को अर्पित कर्म—ये और और केवल यही—मनुष्य से चिपकते नहीं हैं, अपनी अदृश्य शृंखला में बांधते नहीं हैं बल्कि उससे इस तरह झड़ जाते हैं जैसे हंस के पंखों से जल की बूंदें। वे उसे इसलिये नहीं बांधते क्योंकि वह कार्य-कारण-भाव के फंदे से मुक्त होता है। कार्य-कारण-भाव द्वैत के भाव से, सुख-दुःख, प्रेम और घृणा, शीत और उष्ण के भाव से उठते हैं जो अविद्या से उठते हैं और वह जिसने कामना को त्याग दिया, ऐक्य को पा लिया वह अविद्या और द्वैत के ऊपर हो गया। उसके लिये बंधन का कोई अर्थ नहीं रहता। (वस्तुतः वह कर्म नहीं करता बल्कि प्रकृति उसके अंदर पुरुष के सान्निध्य से प्रेरित होकर कर्म करती है)

शिष्य—तब फिर शंकर यह क्यों कहते हैं कि पूर्ण ऐक्य प्राप्त करने के लिये कर्म का त्याग जरूरी है? उनके मतानुसार जो कर्म करते हैं वे पूर्ण ऐक्य नहीं केवल सालोक्य अथवा ब्रह्म के साथ सापेक्ष ऐक्य पाते हैं।

गुरु—शंकर ने जो कहा उसका कारण था और उनके युग में जरूरी था कि कर्म की अपेक्षा ज्ञान को ज्यादा ऊंचा उठाया जाये क्योंकि उन्हें जिस महान् जीवन-शक्ति से संघर्ष करना था वह पीछे के काल का बौद्ध अपधर्म न था जिसमें बौद्ध धर्म जीर्यमाण और क्षयग्रस्त हो गया था बल्कि वह कर्मकांड के उन विजयी सिद्धांतों के साथ संघर्ष था जिन्होंने वैदिक अनुष्ठानों और समारोहों को एकमात्र पथ और स्वर्ग को एकमात्र लक्ष्य माना। यह बतलाने की सतत चिंता में कि कर्म—समारोह और अनुष्ठान जिसके भाग थे—ही स्वर्ग के लिये एकमात्र मार्ग नहीं हैं, उन्होंने धनुष को उतनी अधिक दूरीतक खींचा जितना वे खींच सकते थे और यह तर्क किया कि कर्म ही अंतिम और परम मुक्ति के मार्ग कदापि न थे। यहां हम यह देखते चलें कि शंकर और अन्य ज्ञान-मार्गियों के मुख से कर्म-मार्ग की निंदा का अर्थ क्या है। इसका यह अर्थ हो सकता है कि वैदिक अनुष्ठानों और रीति-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रिवाजों के अर्थ में कर्म मुक्ति का मार्ग नहीं है। यदि उसका यही अर्थ है तो शंकर ने अपना कार्य पूरे प्रभावकारी रूप से कर लिया है क्योंकि अब कोई भी प्रामाणिक व्यक्ति इससे उल्टे सिद्धांत को सिद्ध करने की कोशिश न करेगा। हम सब इस बात पर सहमत हैं कि कर्मकांड का एकमात्र चरम परिणाम मुक्ति नहीं है, मुक्ति से बहुत नीचे है और अपने कारण के समाप्त होने के साथ-ही-साथ वह भी समाप्त हो जाता है। हम सब इस बात पर भी सहमत हैं कि वैदिक कर्मकांड की एकमात्र आध्यात्मिक उपयोगिता है मन को शुद्ध करना और उसे मुक्ति के सच्चे रास्ते पर चलने के लिये उपयुक्त बनाना और वह मार्ग ज्ञान द्वारा पाया जाता है। लेकिन अगर तुम कहो कि "कर्तव्य-कर्म" के अर्थ में कार्य मुक्ति का मार्ग नहीं है तो मैं आपत्ति करूंगा क्योंकि मैं कहूंगा कि कर्म ज्ञान से भिन्न नहीं है बल्कि ज्ञान ही है, ज्ञान की आवश्यक परिपूर्ति और निष्पत्ति है; कि भक्ति, कर्म और ज्ञान तीन नहीं, एक ही हैं और अविच्छेद्य रूप से एक साथ जाते हैं। इसलिये श्रीकृष्ण कहते हैं कि सांख्य (ज्ञान योग) और योग (भक्ति और कर्म योग) दो नहीं एक ही हैं और केवल अविकसित बाल मन ही इनमें फर्क करते हैं।

शिष्य—लेकिन शंकराचार्य को अविकसित मन कैसे कहा जा सकता है ?

गुरु—वे स्वयं अविकसित मन नहीं थे, उन्हें अविकसित मनों से व्यवहार करना पड़ता था और इसी कारण उन्हें उनके जैसी भाषा बोलनी पड़ती थी। अगर वे कर्म को अपनी स्वीकृति दे देते, फिर चाहे वह कितनी ही शर्तों के साथ क्यों न होती, तो जन-साधारण उसे न समझ पाता और वह अपने पुराने रीति-रिवाजों से ही चिपका रहता। भाषा की इस कठिनाई के कारण, उसकी स्वाभाविक अपूर्णता और जो मन भाषा का उपयोग करते हैं उनकी अपूर्णता के कारण ही धर्म और दर्शन की सारी गड़बड़ और अलगाव की भावना पैदा होती है, क्योंकि धर्म और दर्शन एक हैं और भेदभाव से ऊपर हैं। शंकर कर्म के इतने विरोधी भी न थे जैसे कहीं-कहीं पर अपने तर्क की उग्रता के कारण जान पड़ते हैं। जब तुम कहते हो कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्म मुक्ति का मार्ग नहीं है तो तुम्हारा क्या मतलब होता है ? क्या यह कि कामना से प्रेरित कर्म मुक्ति के साथ मेल नहीं खाता, क्योंकि वह अनिवार्य रूप से बंधन की ओर ले जाता है और इस कारण त्याज्य है ? इस अर्थ में कोई विवाद नहीं। हम सब इस बात पर सहमत हैं कि कामना द्वारा प्रेरित कर्म कामना की पूर्ति के सिवाय और कुछ नहीं करते और उसके बाद आते हैं अगले जन्म में कुछ और नये कर्म। क्या तुम्हारा मतलब यह है कि निष्काम कर्म मुक्ति के साथ असंगत है और नये बंधन लाकर मुक्ति को रोकता है और इस कारण उसका त्याग करना चाहिये ? लेकिन यह बात बुद्धिसंगत नहीं है, क्योंकि बंधन कामना और अज्ञान का परिणाम है और कामना और अज्ञान के गायब होने पर उनके साथ-ही-साथ गायब हो जाता है। अतः 'निष्काम कर्म' में बंधन नहीं हो सकता। यह श्रुति के साथ असंगत है—*त्रिणाचिकेतस्त्रिभिरेत्य सन्धिं त्रिकर्मकृत्तरति जन्ममृत्यू* इत्यादि। यह तथ्यों के साथ असंगत है क्योंकि श्रीकृष्ण ने कर्म किये, जनक तथा अन्यों ने भी कर्म किये लेकिन यह बात कोई न कहेगा कि वे अपने कर्मों के कारण बंधन में जा गिरे, क्योंकि वे 'जीवन-मुक्त' थे। क्या यह कहा जा सकता है कि 'निष्काम कर्म' ज्ञान द्वारा 'ब्रह्म-प्राप्ति' की ओर एक चरण के रूप में किया जा सकता है परंतु जैसे ही ज्ञान प्राप्त हो जाये उसे छोड़ देना चाहिये ? लेकिन यह बात भी ठीक नहीं बैठती क्योंकि जनक आदि ने ज्ञान-प्राप्ति से पहले भी और उसके बाद भी कर्म किये। इसलिये शंकराचार्य का यह तर्क नहीं ठहर सकता कि ब्रह्म-प्राप्ति के साथ-ही-साथ विशुद्ध आवश्यकता के रूप में कर्म एकदम रुक जाने चाहियें, क्योंकि ब्रह्म अकर्ता है; क्योंकि जनक ने ब्रह्म-प्राप्ति की थी और श्रीकृष्ण स्वयं ब्रह्म थे और फिर भी दोनों ने कर्म किये। एक स्थान पर श्रीकृष्ण ने अपने कार्य करने के बारे में कहा है क्योंकि वस्तुतः ब्रह्म पुरुष के रूप में अकर्ता और प्रकृति के रूप में कर्ता दोनों ही है और अगर यह कहा जाये कि परब्रह्म या तुरीय आत्मा, जिसमें सब भेद लुप्त हो जाते हैं, अकर्ता है, तो मेरा उत्तर होगा कि वह न तो कर्ता है न अकर्ता, वह नेति नेति है, अज्ञेय और जीवात्मा शरीर में रहती हुई अंततः 'उसके' अंदर लीन नहीं होती यद्यपि योग द्वारा वह किसी भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय ऐसा कर सकती है। *लय आदेहनिपातात्* यानी शरीर छोड़ने के बा
लय ऐसी मुक्तात्मा द्वारा हो सकता है जो एक और शरीर में आने के लि
इच्छुक न हो। जीवन-मुक्त परब्रह्म की आलोकमय छाया के साथ—जि
हम सच्चिदानंद कहते हैं—एक हो जाता है। अगर यह कहा जाये कि य
मुक्ति नहीं है तो मैं कहूंगा कि सच्चिदानंद बनने से बढ़कर कोई और मुक्ति
नहीं हो सकती और जब जीवात्मा जीवात्मा न रहकर सच्चिदानंद बन जाते
तो उसके लिये परब्रह्म में लय स्वेच्छाधीन हो जाता है, क्योंकि परब्रह्म ज
चाहे अपनी इच्छा से सच्चिदानंद को अपने अंदर खींच सकता है औ
सच्चिदानंद जब चाहे हमेशा अपनी इच्छा से परब्रह्म में खिंच सकता है
क्योंकि ये दोनों किसी अर्थ में दो नहीं होते, एक ही हैं और वे किसी अर्थ
अविद्या के आधीन नहीं होते बल्कि अविद्या के परे रहते हैं। तो अगर य
कहा जाये कि निष्काम कर्म मुक्तितक नहीं केवल ब्रह्मलोकतक ही ले जात
है तब भी मेरा उत्तर होगा कि उस अवस्था में हमें मानना होगा कि अप
शरीर छोड़ने के बाद श्रीकृष्ण परम पुरुष से अलग रहे इसलिये वे भगवा
बिल्कुल न थे, वे केवल एक महान् दार्शनिक और भक्त रहे होंगे, इत
बुद्धिमान या ज्ञानी न होंगे जो मुक्ति पा लेते और जनक तथा अन्य जीवन
मुक्तों को यूं ही झूठ-मूठ मुक्त कहा जाता है और उनकी केवल सापे
मुक्ति थी। लेकिन यह शास्त्रों के प्रतिकूल होगा और श्रुति, स्मृति की शिक्ष
के विरुद्ध होगा अतः उसे कोई हिंदू स्वीकार न करेगा और वेदांती तो औ
भी नहीं क्योंकि अगर श्रुति प्रामाणिक नहीं है तो वेदांत में भी कोई सत्य
होगा और चार्वाक के सिद्धांत में भी उतना ही बल है जितना किसी औ
में। और फिर यह तो तर्क-विरुद्ध होगा क्योंकि यह मुक्ति को,
आध्यात्मिक परिवर्तन है, मृत्यु जैसे जड़ और यांत्रिक परिवर्तन पर आश्रि
कर देगा—और यह तो बेतुकी बात है। शंकर अपने-आप स्वीकार करते
कि इन उदाहरणों में निष्काम कर्म मुक्ति या ब्रह्म होने के साथ असंगत न
है और अगर पूर्वमीमांसा के साथ उनका बौद्धिक विरोध का संबंध उन्हें तं
न करता तो वे इसे और भी ज्यादा बिना शर्त के स्वीकार कर लेते। अ
इससे प्रमाणित होता है कि कर्म मुक्ति के साथ असंगत नहीं है बलि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके विपरीत बड़े-से-बड़े जीवन-मुक्तों और स्वयं भगवान् की शिक्षा और उनके व्यवहार दोनों ने ज्ञान और निष्काम कर्म को संयुक्त कर भक्ति के लिये एक और अद्वितीय पथ बना दिया है।

फिर भी एक युक्ति रह जाती है, यह कहा जा सकता है कि कर्म भले मुक्ति के साथ असंगत न हो, हो सकता है कि मुक्ति का एक मार्ग हो परंतु अंतिम अवस्था में वह मुक्ति के लिये जरूरी नहीं है। मैं यह मानता हूं कि अमुक कार्य मुक्ति के लिये आवश्यक नहीं हैं। मुक्ति पाने के लिये जरूरी नहीं है कि गृहस्थ जीवन को जारी रखा जाये लेकिन श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता में स्पष्ट, अकाट्य रूप से कह दिया है कि जो कोई भी शरीरस्थ है वह कर्म से मुक्त नहीं हो सकता। और गीता का यह वक्तव्य तर्क के साथ पूरी तरह मेल खाता है। क्योंकि जो मनुष्य संसार को पीछे छोड़कर किसी पर्वत-शिखर पर या आश्रम में जा बैठता है वह स्पष्टतः इतने से ही कर्म से छुटकारा नहीं पा लेता। और कुछ नहीं तो उसे अपना शरीर धारण करना पड़ता है, खाना, चलना अपने अंगों को गति देना या फिर आसन जमाकर ध्यान में बैठना पड़ता है और ये सब कर्म हैं। अगर वह अभीतक मुक्त नहीं है तो ये कर्म उसके लिये बंधन होंगे और अपने तथा औरों के साथ संबंध रखनेवाले फल लायेंगे। अगर वह मुक्त भी है तो जबतक उसका देहपात न हो जाये उसका शरीर और मन कर्म से मुक्त नहीं होते बल्कि प्रारब्ध के आवेश चलते रहते हैं जबतक प्रारब्ध और उसके फल पूरे नहीं हो जाते। नहीं, बड़े-से-बड़ा योगी भी इस प्रपंचात्मक जगत् में केवल शारीरिक उपस्थिति द्वारा ही सभी दिशाओं में आध्यात्मिक शक्ति की धारा बहाये जाता है और यद्यपि उसका यह कर्म उसके लिये बंधन नहीं होता फिर भी औरों पर बहुत बड़ा प्रभाव डालता है। वह इच्छा किये बिना ही "*सर्वभूतहिते रतः*" होता है। अपने शरीर के बारे में वह भी अवश है और उसे प्रकृति के गुणों को कार्य करने देना पड़ता है। इसलिये हर उस आदमी को, जो अपने "कर्तव्य कर्म" को अपने पीछे छोड़ देना चाहता है, यह देखना चाहिये कि इस तरह वह अपने प्रारब्ध की पूर्ति को किसी आगामी जीवनतक स्थगित तो नहीं करता जाता और इस तरह अपने-आपको उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनर्जन्म के लिये बाधित करता है जिससे वह बचना चाहता है।

शिष्य—लेकिन यह कैसे हो सकता है कि जीवन-मुक्त अपने पिछले कर्मों से बंधा रहे? क्या मुक्ति हमारे पिछले कर्मों को अग्नि में भस्मसात् नहीं कर देती? मनुष्य एक साथ मुक्त और बद्ध कैसे रह सकता है?

गुरु—मुक्ति तुम्हारे भावी कर्मों को बंधन पैदा करने से रोकती है लेकिन पिछले कर्मों के बारे में क्या होगा जो पहले ही बंधन पैदा कर चुके हैं? वस्तुतः जीवनमुक्त बद्ध नहीं होता क्योंकि वह भगवान् के साथ एक होता है और भगवान् अपनी प्रकृति के स्वामी हैं, दास नहीं। परंतु इस जीवात्मा के साथ लगी प्रकृति ने बंधन के भ्रम में रहते हुए कारण उत्पन्न किये थे और उसे अपने कार्य पूरे कर लेने देना होगा अन्यथा कार्य-कारण शृंखला टूट जायेगी और प्रकृति की सारी व्यवस्था गड़बड़ा कर अस्त-व्यस्त हो जायेगी, "*उत्सीदेयुरिमे लोकाः*" आदि। लोकों को बनाये रखने के लिये जीवनमुक्त पैरोल पर छूटे हुए बंदी की तरह काम करता रहता है जो औरों के द्वारा बद्ध नहीं होता परंतु अपने लिये पहले से निश्चित कारावास की अवधि समाप्त होनेतक अपने-आपको बंद रखता है।

शिष्य—वस्तुतः, इस विषय पर यह नया प्रकाश है।

गुरु—यह कोई नया प्रकाश नहीं है, यह उतना ही पुराना है जितना कि सूर्य क्योंकि यह स्पष्ट रूप से गीता में कहा गया है और गीता की शिक्षा में श्रीकृष्ण कहते हैं कि यह उन्होंने विवस्वान्—सौर मंडल के विष्णु—को दी थी और उन्होंने मनु को दी जो आदि मानव थे और मनु ने महान् राजर्षियों, उनके वंशजों को दी। नहीं, यह वस्तुओं की प्रकृति से उठता है। इस मामले में सारी गड़बड़ मुक्ति के बारे में अधकचरी समझ से पैदा होती है। लोग कर्म से क्यों भागते हैं और मुक्ति की तलाश में कर्तव्य-कर्म को क्यों छोड़ देते हैं? क्योंकि उन्हें फिर से बंधन में पड़ने से डर लगता है, वे मुक्ति के अवसर को खोने से डरते हैं। लेकिन मुक्ति है क्या? मुक्ति छुटकारा है—लेकिन किससे? अविद्या से, महान् निर्ज्ञान से, इस विश्वास से कि तुम सीमित और बद्ध हो जब कि तुम हो असीम ब्रह्म जो कभी बद्ध नहीं हो सकता। जिस क्षण तुम यह अनुभव कर लो कि अविद्या भ्रम है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि ब्रह्म के सिवाय कुछ है ही नहीं, ब्रह्म के सिवाय न कभी कुछ था और न कभी कुछ होगा, इसका अनुभव कर लो, मैं कहता हूं, केवल बौद्धिक दृष्टि से इस विचार को पकड़ न लो बल्कि अनुभव कर लो, उस क्षण से तुम मुक्त हो और हमेशा रहे हो। अविद्या ठीक इसी बात में है कि जीवात्मा सोचती है कि उसके सिवाय कुछ और भी है, वह स्वयं ब्रह्म से भिन्न है, कोई ऐसी चीज है जो उसे बांधती है, जब कि वास्तव में ब्रह्म होने के नाते वह बद्ध नहीं है, कभी बद्ध नहीं थी, बद्ध हो ही नहीं सकती और होगी भी नहीं। एक बार यह अनुभव हो जाये तो जीवात्मा को कर्म का कोई भय नहीं रह सकता क्योंकि उसे पता होता है कि बंधन के जैसी कोई चीज है ही नहीं। वह इस जगत् में अपने कार्य करने के लिये पूरी तरह तैयार होगी बल्कि पुनर्जन्म लेने के लिये भी तैयार होगी, जैसे कि स्वयं श्रीकृष्ण ने बार-बार जन्म लेने का वचन दिया है, क्योंकि तब उसे पुनर्जन्म का भी भय नहीं रहता क्योंकि उसे मालूम होता है कि वह फिर से अविद्या के राज्य में नहीं गिर सकती, जबतक कि वह जान-बूझकर उसकी इच्छा न करे क्योंकि एक बार मुक्त, सदा के लिये मुक्त। अगर वह फिर से जन्म ले तो वह इस पूर्ण ज्ञान के साथ जन्म लेगी कि वास्तव में वह क्या है, उसे पिछले जन्मों और समस्त भविष्य का पता होगा, वह जीवन-मुक्त की तरह कर्म करेगी।

शिष्य—अगर यह बात सच है कि एक बार मुक्त सदा के लिये मुक्त तो उन बातों के बारे में क्या समझा जाये कि बड़े-बड़े ऋषि और योगी अविद्या के राज्य में जा गिरे थे?

गुरु—मनुष्य जीवन-मुक्त हुए बिना भी बड़ा ऋषि या योगी हो सकता है। योग और आध्यात्मिक शिक्षा मुक्ति के मार्ग हैं स्वयं मुक्ति नहीं, श्रुति ने कहा है, "*नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन*।"

शिष्य—तो क्या जैसा श्रुति ने कहा है, जीवन-मुक्त सचमुच सौ वर्ष जीना चाहेगा? क्या जो मुक्त हो चुका है उसमें कामना हो सकती है?

गुरु—जीवन-मुक्त सौ वर्ष और अगर जरूरत हो तो उससे भी अधिक जीने के लिये तैयार होगा परंतु यह सलाह जीवन-मुक्त को या मनुष्यों की किसी श्रेणी विशेष को नहीं बल्कि साधारण रूप से दी गयी है। तुम्हें सौ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष की उस अवधितक जीने की इच्छा करनी चाहिये जो तुम्हें दी गयी है क्योंकि शरीरस्थ तुम ब्रह्म हो जो स्वयं अपनी शक्ति के बल पर अपने-आप अपने लिये सृजन, संरक्षण और विनाश की लीला कर रहा है। इस दृष्टि में ब्रह्म ईश, स्रष्टा और विनाशक है और तुम भी ईश, स्रष्टा और विनाशक हो। एक उग्र रूपक का प्रयोग करें तो तुमने अपने मनोरंजन के लिये यह कल्पना कर ली है कि तुम किसी विशेष नाटक के लिये एक शरीर विशेषतक सीमित हो, जैसे कोई अभिनेता अपने-आपको दुष्यंत, राम या रावण मान लेता है और बहुधा अभिनेता अपने-आपको उस पात्र में भूल जाता है और अपने-आपको वही समझने लगता है जिसका वह अभिनय कर रहा है। वह भूल जाता है कि वह सचमुच दुष्यंत या राम न होकर वह देवदत्त है जो इनके अतिरिक्त सैंकड़ों पात्रों का अभिनय करता है। फिर भी, जब वह इस भ्रम को झाड़ देता है और याद करता है कि वह तो देवदत्त है तो वह मंच से भाग नहीं निकलता और अभिनय करने से इंकार करके नाटक को तहस-नहस नहीं कर डालता बल्कि अपना अच्छे-से-अच्छा अभिनय करता चला जाता है जबतक कि पर्दा गिरने का ठीक समय न हो जाये। हम सबको ऐसा ही करना चाहिये, चाहे गृहस्थ हो या संन्यासी, जीवन-मुक्त हो या मुमुक्षु, सदा यह याद रखना चाहिये कि इस संसार का उद्देश्य है सृजन और हमारा काम यह है कि जबतक इस शरीर में हैं, सृजन करते चलें। एकमात्र भेद यह है कि जबतक हम अपनी आत्मा को भूले रहें तबतक हम प्रकृति की बाध्यता के आधीन होकर नौकरों की तरह सृजन करते हैं मानों हम दास हों और उसके कर्मों से बंधे हों जिन्हें हम अपना कर्म सोच लेते हैं; लेकिन जब हम आत्मा को जान लें और सच्ची आत्मा का अनुभव कर लें तो हम अपनी प्रकृति के स्वामी होते हैं और उसके सृजनों के दास नहीं होते। हमारी आत्मा हमारी प्रकृति के कर्मों की साक्षी, मौन द्रष्टा बन जाती है। इस तरह हम दर्शक और अभिनेता दोनों होते हैं और चूंकि हम सारी चीज को स्वयं कर्म नहीं केवल कर्म का भ्रम जानते हैं, चूंकि हम जानते हैं कि राम सचमुच रावण को मार नहीं रहे और न रावण ही मारा जा रहा है, क्योंकि वस्तुतः रावण जितना मृत्यु से पहले जीवित था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उतना ही मृत्यु के बाद भी जीवित है, उसी तरह हम न अभिनेता हैं न द्रष्टा बल्कि केवल आत्मा हैं और जो कुछ हम देखते हैं वह केवल आत्मा के दृश्य हैं—श्रुति बहुधा किसी और शब्द का उपयोग करने की जगह ऐक्षद् (देखा) शब्द का उपयोग उन धारणाओं के लिये करती है जिनसे ब्रह्म अपने-आपको, अपने विश्व को आबाद करता है। अतः मुमुक्षु अपने समय से पहले जीवन को छोड़ने की इच्छा या कोशिश न करेगा; उसी भांति वह इस जीवन में कर्म त्यागने की कोशिश या इच्छा भी न करेगा। वह केवल कर्मफल की कामना को छोड़ना चाहेगा। क्योंकि अगर वह अधीरता के साथ अपने जीवन के धागे को उसके समुचित रूप से काते जाने से पहले तोड़ने की कोशिश करेगा तो वह जीवन-मुक्त न होकर आत्मघाती होगा और वह जो चाहता है उससे ठीक उल्टा परिणाम पायेगा। उपनिषद् ने कहा है :

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥

शंकर इस मंत्र को अजीब तरह से लेते हैं। आत्महनो का अर्थ आत्मा का हनन करनेवाला करते हैं और चूंकि यह स्पष्ट रूप से बेतुकी बात है क्योंकि आत्मा शाश्वत है और उसका हनन नहीं किया जा सकता इसलिये वे कहते हैं कि यह एक रूपक है जिसका अर्थ है आत्मा को अविद्या के भ्रम में डालना जो जन्म की ओर ले जाता है। यह बड़ा ही चौंकानेवाला, उग्र और अप्रासंगिक रूपक है क्योंकि इस विचार को किसी भी सामान्य स्वाभाविक ढंग से व्यक्त किया जा सकता था। फिर भी श्रुति रूपकों से भरी है और केवल इसी कारण से हमारा शंकर के भाष्य को अस्वीकार करना न्यायसंगत न होगा। हमें देखना होगा कि मंत्र का बाकी भाग इस अर्थ के साथ मेल खाता है या नहीं। हम देखते हैं कि अपनी दृष्टि का समर्थन करने के लिये शंकर इस वाक्य के सीधे-सादे शब्दों की आश्चर्यजनक ढंग से तोड़-मरोड़ करने के लिये बाधित होते हैं क्योंकि वे कहते हैं कि परात्मा जन्म और देवत्व के ऊपर है। असुर्या का अर्थ दैविक से उल्टा आसुरिक ही हो सकता है। देव आसुरी-जन्म नहीं हो सकते जो परात्मा के विपरीत और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परात्मा के दैवी जन्म के विपरीत हों। लेकिन यह शब्दों का दुरुपयोग है . . . का अर्थ भिन्न प्रकार के जन्म से है जिसमें देवों को भी आसुरी जन्म में गिन लिया जाता है और तब वे 'लोक' शब्द को विभिन्न प्रकार के जन्मों के अर्थ में ले लेते हैं। तो *असुर्या लोकाः* का अर्थ होगा मनुष्य, पशु आदि विभिन्न प्रकार के जन्म। इन्हें आसुर इसलिये कहा गया क्योंकि इनमें रजस् प्रधान होता है और इनमें आसुरी प्रवृत्ति होती है। आसुरिक लोकों के लिये यह विचित्र और अद्वितीय अर्थ है। जीवात्मा जो अनेकानेक रूप धारण करती है उसके लिये 'लोकाः' शब्द का उपयोग कभी नहीं होता, यह उन विभिन्न स्थितियों के अलग-अलग वातावरण के लिये उपयुक्त होता है जिनमें से वह गुजरती है और उनमें एक है इस जगत् का जीवन। हम इहलोक या मर्त्यलोक, परलोक या स्वर्गलोक, ब्रह्मलोक, गोलोक आदि तो कहते हैं लेकिन कभी पशुलोक, पक्षिलोक, कीटलोक नहीं कहते। अगर हम आसुर-लोक कहें तो हमारा अर्थ अंधकार, विषाद के क्षेत्रों के सिवा कुछ नहीं हो सकता जो ब्रह्मलोक, गोलोक, स्वर्गलोक आदि दिव्य लोकों से विपरीत हैं। यह साधारण अर्थ है जिसका उपयोग तब होता है जब हम मृत्यु के बाद कहीं और जाने की बात करते हैं और हमें अपने तर्क के अनुकूल बनाने के लिये इसे किसी और अर्थ में न लेना चाहिये। और फिर ''ये के'' शब्द अपने विशिष्ट अर्थ को खो बैठते हैं, यदि हम उनका उपयोग—जो आंशिक या पूर्ण मुक्ति पा लेते हैं उनके सिवा—सभी जीवित प्राणियों के लिये कर लें। स्पष्ट है कि इसका अर्थ होगा बहुतों में से कुछ। जब शंकर की व्याख्या श्रुति की भाषा में इतनी विकृतियां ले आये और शब्दों के माने हुए अर्थों से इतनी दूर खींच ले जाये तो हमें शंकर का अनुसरण करने से भी इंकार कर देना चाहिये।

शब्दों का सामान्य अर्थ स्पष्ट और सुसंगत भाव देता है। श्रुति हमें बतलाती है कि अपने जीवन को छोटा करने या आत्मघात की शरण लेने से कोई लाभ नहीं क्योंकि जो आत्मघात करते हैं वे मोक्ष पाने की जगह मरकर अंधकार की और भी अधिक गहरी कारा में—अंधकारमय निराशा से लिपटे आसुरिक जगतों में—डुबकी लगाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिष्य—तो क्या धरती के नीचे पाताल देश वास्तविक हैं और मरने के बाद आत्मा उनमें जाती है? लेकिन अब तो हम जानते हैं कि धरती के नीचे कुछ भी नहीं है, धरती तो गोल है और वायु से ज्यादा बुरी और किसी चीज से नहीं घिरी है।

गुरु—शब्दों से पथभ्रष्ट न होओ। आसुरिक लोक यथार्थता हैं, वे निराशा और अंधकार के लोक हैं जो तुम्हारी अपनी सत्ता की अधोलोक की गहराइयों में स्थित हैं। लोक एक ऐसी जगह नहीं है जहां पहाड़, पेड़-पौधे और पत्थर होते हैं बल्कि वे जीवात्मा की एक स्थिति होते हैं और बाकी सब केवल स्वप्न की परिस्थितियां और ब्यौरे होते हैं। यह बात श्रुति की भाषा से स्पष्ट हो जाती है जब वह लोकों या अगले जगत् *'लोके'* या *'अमुष्मिन् लोके'* के अच्छे या उसके विपरीत होने की बात करती है। स्पष्ट है कि लोक का अर्थ है स्थिति या अवस्था। मर्त्यलोक आवश्यक रूप से यह पृथ्वी नहीं है जिसे हम देखते हैं क्योंकि मर्त्य सत्ताओं के अन्य निवासस्थान भी हो सकते और होने चाहियें। स्थूल शरीर में मर्त्यता की स्थिति है मर्त्यलोक, स्वर्गलोक है सूक्ष्म शरीर में आनंद की स्थिति, नरक है सूक्ष्म शरीर में दुःख-दैन्य की अवस्था, ब्रह्मलोक है कारण शरीर में हिरण्यगर्भ के निकट होने की स्थिति। जैसे जीवात्मा मर्त्य अवस्था में रहते हुए स्वप्न-द्रष्टा की तरह धरती और उसके आकार-प्रकार को और अपने-आपको किसी विशेष स्थान पर मानती है उसी तरह जब वह अपने सूक्ष्म शरीर में पूरी तरह तमस् की अवस्था में होती है तो वह मानती है कि वह ऐसे स्थान में है जो चारों ओर से घने अंधेरे से घिरा हुआ, वीभत्स अकथनीय दुःख-दैन्य का स्थान है। इस अंधकारमय जगत् को पृथ्वी के नीचे, मर्त्य अवस्था की परिस्थितियों के नीचे माना जाता है, क्योंकि पृथ्वी का वह पार्श्व जो सूर्य से मुंह मोड़े हुए है, उसे निम्न भाग माना जाता है जब कि स्वर्ग पृथ्वी के ऊपर है क्योंकि पृथ्वी का वह पार्श्व जो सूर्य की ओर अभिमुख है उसे उच्चतर दिशा, प्रकाश और सुख का स्थान माना जाता है। अतः पूर्ण आनंद के जगत् सूर्य से शुरू होकर सूर्य से ऊपर ब्रह्मलोकतक जाते हैं। लेकिन ये सब शब्द हैं, स्वप्न हैं क्योंकि नरक, पाताल, स्वर्ग और धरती सभी स्वयं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवात्मा में हैं, उसके बाहर नहीं। फिर भी हम सब अभीतक स्वप्नद्रष्टा हैं हैं इसलिये हमें स्वप्न की भाषा और परिभाषा में ही बोलना चाहिये।

शिष्य—तो फिर अधोलोक की उदासी के ये जगत् क्या हैं ?

गुरु—जब कोई आदमी बड़े कष्ट में और बहुत दुःख में या बहुत उत्तेजना में मरता है और उसके अंतिम विचार भय, क्रोध, दुःख या संत्रास से भरे होते हैं तो सूक्ष्म शरीर में से जीवात्मा उनके संस्कारों को अपने मन से वर्षों और कभी-कभी सदियोंतक नहीं झाड़ सकती। इसका कारण है मृत्यु का विधान। मृत्यु है अत्यधिक एकाग्रता का क्षण जब जानेवाली आत्मा अपने मर्त्य जीवन के संस्कारों को इकट्ठा करती है जैसे यात्रीदल रास्ते के लिये पाथेय इकट्ठा करता है और उस समय जो भी संस्कार प्रमुख हों वे ही बाद की उसकी स्थिति पर शासन करते हैं। इसीलिये, मुक्ति के अतिरिक्त, उदात्त और शुद्ध जीवन जीने और निश्चल और प्रबल मृत्यु मरने का महत्त्व है। क्योंकि उस समय जो विचार और भाव सबसे ऊपर होते हैं वे ही आत्मा का इस स्थूल शरीर और प्राणिक क्रियाओं के साथ, यानी निचली उपाधि के साथ नाता जोड़ते हैं। तब अंतरात्मा लंबे समयतक अंधकार और पीड़ा की तामसिक स्थिति में रहती है जिसे हम पाताल या सबसे बुरी अवस्था में नरक कहते हैं। अगर उस समय सबसे ऊपर के विचार और संस्कार ऐसे हों जो आत्मा का संबंध मन और उच्चतर कामनाओं के साथ जोड़ते हों तो आत्मा तेजी से थोड़े समय के अंधेपन को पार करके प्रकाश, सुख और अधिक विस्तृत ज्ञान—रजसो-सात्त्विक—की स्थिति में जा पहुंचती है जिसे हम स्वर्ग या बहिश्त कहते हैं, जहां से वह लौटकर इसी जगत् में जन्म लेगी। अगर विचार या संस्कार ऐसे हों जो आत्मा का मेल उच्चतर प्रज्ञा और आत्मानंद के साथ करवा दें तो आत्मा तेजी से उच्चतम आनंद की सात्त्विक स्थिति में जा पहुंचती है जिसे हम स्वर्ग या ब्रह्मलोक कहते हैं जहांसे पुनरागमन नहीं होता। परंतु अगर हम अपनी आत्मा को परम आत्मा के साथ आत्मसात् करना सीख लें तो मृत्यु से पहले ही हम भगवान् हो जाते हैं और मरकर कुछ और नहीं बनते। माया की तीन अवस्थाएं होती हैं, तामसिक माया, राजसिक माया और सात्त्विक माया; और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहांतक पहुंचने के लिये, जो भ्रम या माया नहीं है बल्कि एक और एकमात्र सत्य है, हमें तीनों से क्रमशः पीछा छुड़ाना होता है।

श्रुति का कहना है कि जो अपना हनन करते हैं वे अंधकार के अधोलोक में जाते हैं क्योंकि उन्होंने अपनी आत्मा को शरीर के साथ जोड़ लिया है और यह कल्पना कर ली है कि शरीर से पिंड छुड़ाकर वे मुक्त हो जायेंगे लेकिन वे दुःख, अधीरता, घृणा और पीड़ा से भरे हुए संस्कार लेकर मरते हैं। उदासी की इस अवस्था में वे लगातार अपने जीवन के अंतिम दृश्यों, उसके संस्कारों और उसकी उग्रतापूर्ण अशांति को दोहराते रहते हैं और जबतक ये चीजें घिसकर झड़ न जाएं तबतक उनके मनों को शांति नहीं मिल सकती। कोई भी आदमी अपनी मूर्खता या अधीरता के कारण ऐसे सर्वनाश को निमंत्रण न दे।

शिष्य—मुझे लगता है कि उपनिषद् इन तीन मंत्रों में स्पष्ट और एक-दूसरे से संबद्ध प्रतिपादन करता है लेकिन अगले ही मंत्र में उपनिषद् अचानक किसी असंबद्ध चीज की ओर चल पड़ता है।

गुरु—नहीं वह कहता है—

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति॥

श्रुति ने कहा है कि तुम्हें अपनी सभी चीजें प्रभु में प्रतिष्ठित करनी चाहियें। परंतु वस्तुतः इसका मतलब यह है कि तुम्हें यह अनुभव करना चाहिये कि कैसे सभी चीजें पहले ही से उनमें प्रतिष्ठित हैं, इसके बाद वह यह बताने लगती है कि यह कैसे है और यह संकेत देती है कि ईश ही ब्रह्म, एकमेव है जिसे अपनी सृजनशील क्रिया द्वारा पुरुष और प्रकृति के रूप में देखा जाता है और ईश कहा जाता है। अतः, अब उसके लिये नपुंसक लिंग के सर्वनाम का उपयोग किया जाता है, उसकी बातें करते हुए तत् और इदम् कहा जाता है क्योंकि ब्रह्म लिंग और भेद-भाव से ऊपर है। वह एक है फिर भी एक साथ अचल है और मन से भी अधिक तेज गतिवाला है। वह पुरुष और प्रकृति दोनों है, फिर भी साथ-साथ दोनों में से एक भी नहीं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बल्कि एकमेव है और है अविभक्त; पुरुष और प्रकृति तो मात्र उसके मन में संकल्पनाएं हैं जिन्हें बहु की सृष्टि के लिये सोद्देश्य प्रस्तुत किया गया है। प्रकृति की तरह वह मन से अधिक तेज है क्योंकि प्रकृति उसकी सर्जकशक्ति है जो गति द्वारा जड़-पदार्थ और उसके रूपों को बनाती है। समस्त सृजन गति है, समस्त क्रियाशीलता गति है। बाहर से स्थिर दीखनेवाला यह सारा विश्व वास्तव में बहुमुखी गति की स्थिति में है, हर चीज गति द्वारा अकल्पनीय तेजी से घूम रही है। यहांतक कि विचार भी, जो हमारी जानी हुई चीजों में सबसे अधिक तेज है, वैश्व गति के वेग की बराबरी नहीं कर सकता। और यह समस्त गति, सदा घूमनेवाला यह सारा विश्व, यह सारा ब्रह्मांड ब्रह्म ही है। देवता, इन्द्रियों के स्वामी अपनी अधिक-से-अधिक तेज गति में उस ब्रह्मतक नहीं पहुंच सकते क्योंकि वह आगे-आगे दौड़ता जाता है। आंख, कान, मन कोई भी भौतिक वस्तु उसतक नहीं पहुंच सकती, ब्रह्म की अकल्पनीय सृजन-क्रिया की कल्पनातक नहीं कर सकती। हम उसका पीछा करने की इस तरह कोशिश करते हैं मानों सौर मंडल में से प्रकाश की मूसलाधार वर्षा हो रही हो और देखो! इधर हम प्रयास में लगे होते हैं उधर वह आंखों की, दूरबीनों की अधिक-से-अधिक पहुंच से परे, स्वयं विचार के आलोक की अधिकतम दूरियों के परे नये-नये विश्व घड़ने में लगा होता है। विश्व के अस्तित्व में निहित आश्चर्यजनक गति और विस्मयकारक विचार की क्रियाशीलता के आगे भौतिक इन्द्रियां मंद पड़ जाती हैं फिर भी वह जो सबको पीछे छोड़ जाता है, वह दौड़ता नहीं खड़ा रहता है। जब कि हम उसके पीछे एड़ी-चोटी का पसीना एक करते हैं, वह सारे समय यहां, हमारे पास, हमारे सामने, हमारे पीछे, हमारे साथ, हमारे अंदर रहता है। सचमुच वह जरा भी नहीं हिलता। यह सारी गति हमारी अपनी अविद्या का परिणाम है जो हमें यह विश्वास दिलाकर, हमें यह कल्पना करने की प्रेरणा देकर कि हम सीमित हैं, हमारे विचारों को देश और काल की अवस्था के आधीन कर देती है। अपनी सारी सृजनशील क्रियावली में ब्रह्म वस्तुतः एक ही जगह रहता है। वह एक ही समय में सूर्य में भी होता है और यहां भी, लेकिन उसका अनुभव करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिये हमें सूर्य से पृथ्वीतक उसका अनुसरण करना होता है। और हमारे विचारों की यह गति, और हम तय की हुई दूरी और बीते हुए समय के इस संवेदनशील संस्कार को अपने विचार का न मानकर ब्रह्म का मान लेते हैं जैसे दौड़ती हुई रेल में बैठे हुए आदमी के अंदर यह संवेदनशील संस्कार होता है कि हर चीज दौड़ रही है, केवल उसकी गाड़ी खड़ी हुई है। विद्या उसे बतलाती है कि बात ऐसी नहीं है। तो विश्व की हलचल सचमुच हमारे मन की ही हलचल होती है—और सचमुच हमारा मन भी नहीं हिलता-डुलता। जिसे हम मन कहते हैं वह बहुत्व के भाव के साथ खेलता हुआ धारणा का खेल है जो रूप में गतिशील विचार बन जाता है। वास्तव में पुरुष गतिशून्य है; वह वास्तव में एक ऐसे नाटक का गतिशून्य मूक द्रष्टा है जिसमें वह स्वयं रंगमंच, रंगशाला, दृश्य, अभिनेता और अभिनय है। वह कवि शेक्सपीयर है जो डेस्डेमोना और ऑथेलो, हेमलेट और उसके हत्यारे चचा, रोजालिंड, जैक और वियोला और अपने ही उन सैंकड़ों रूपों को देखता है जो अभिनय करते, बोलते, सुख भोगते और दुःख सहते हैं, सब कुछ अपने-आप है फिर भी अपने-आप कुछ भी नहीं है, जो मौन साक्षी बनकर बैठता है, जो उनका स्रष्टा तो है परंतु जिसका उनके कर्मों में कोई भाग नहीं है फिर भी जिसके बिना उनमें से एक का भी अस्तित्व न होता। यह जगत् की पहेली और उसका विरोधाभास है और फिर भी उसका एकमात्र स्पष्ट, सरल और आसान-सा सत्य है।

शिष्य—अब मैं समझ पाया। लेकिन जलों के अंदर अचानक यह मातरिश्वा कहां से आ टपका? शंकर अपः का अर्थ करते हैं कर्म। क्या यह इसे मंत्र के बाकी हिस्से के साथ ज्यादा सामंजस्य में नहीं ले आयेगा?

गुरु—शायद। अपः का ठीक अर्थ है जल, लेकिन आओ देखें कि क्या उसका उचित भाव लेकर हम अधिक स्पष्ट अर्थतक नहीं पहुंच सकते। श्रुति का कहना है कि यह अनंत रूप से गतिशून्य फिर भी अनंत रूप से गतिशील ब्रह्म ही है जिसमें मातरिश्वा जलों को स्थापित करता है। अब हम जानते हैं कि शास्त्रों ने हमें इस जगत् की क्या धारणा दी है। वे सभी चीजें जिन्हें हम सृष्टि कहते हैं और जिन्हें भौतिक विज्ञान विकास कहता है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वास्तव में एक सीमांकन है; जैसा कि हम कहते हैं सृष्टि है समग्र में से एक भाग का छूट पड़ना या जैसा वैज्ञानिक कहते हैं (वे उसे प्राकृतिक चयन कहते हैं) चयन या जैसा हमें कहना चाहिये, प्रकृति की क्रिया द्वारा एक बड़े भंडार में से अंश का, विशेष में से सामान्य का चयन। तो हमने देखा है कि सुषुप्ति की स्थिति या प्रज्ञा ढील देने की स्थिति है या हम यूं कहें कि विशालतर वैश्व चेतना में से चेतना के किसी भाग का चयन है; स्वप्न-चेतना या हिरण्यगर्भ अधिक विस्तृत सुषुप्ति-चेतना और जाग्रत्-चेतना में से चयन है; विराट् या वैश्वानर अधिक विस्तृत स्वप्न-चेतना में से चयन है; इसी तरह हर व्यक्तिगत चेतना एक अधिक विस्तृत वैश्व जाग्रत्-चेतना का चयन है; जहां हर पग अधिक तंग और अधिकाधिक तंग होती हुई चेतना में अंतर्लीन है, यहांतक कि हम चेतना के अत्यधिक संकीर्ण भागतक पहुंच जाते हैं जो प्रपंच के भौतिक और बाह्य जगत् के एक टुकड़े के बारे में ही सचेतन होता है। जड़ भौतिक सृष्टि की सृजन प्रक्रिया के बारे में भी यही बात है। अरूपायित प्रकृति में से—जिसे सांख्य प्रधान या मूल भाव कहता है, जिसे तुम जड़ तत्त्व, जीव-द्रव्य या जो मरजी कह लो—एक पक्ष या एक शक्ति को चुन लिया जाता है जिसे आकाश कहते हैं जिसकी दृश्य अभिव्यक्ति है ईथर। यह आकाश सभी रूपों का और भौतिक सत्ताओं का आधार है। आकाश में से एक अधिक संकीर्ण शक्ति को चुना जाता है या उसे खुला छोड़ दिया जाता है जिसे वायु या मातरिश्वा—माता के अंदर शयन करनेवाला—कहा जाता है क्योंकि वह सीधा मातृतत्त्व—आकाश में शयन या विश्राम करता है। यह वह महान् देव है जो ब्रह्म में जलों को अपने स्थान पर निश्चित करता है।

शिष्य—मेरा ख्याल है कि आप अलंकार-रूप में उसे देवता कहते हैं। विज्ञान ने पुराने अनगढ़ पौराणिक देवों का पत्ता काट दिया है।

गुरु—देवता हैं—वे अमर हैं और विज्ञान चाहे जितनी उग्रता के साथ उनसे इंकार करे पर उनका पत्ता नहीं काट सकता। केवल एक ब्रह्म का ज्ञान ही उन्हें दूर कर सकता है। क्योंकि हर महान्, तात्त्विक, प्राकृतिक तथ्य के पीछे एक विशाल जीवित शक्ति होती है जो ब्रह्म का एक पक्ष, उसकी एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिव्यक्ति होती है, अतः उसे देवता से कम कुछ नहीं कहा जा सकता। मातरिश्वा इनमें सबसे अधिक बलशालिनी शक्तियों में से एक है।

शिष्य—तो फिर हवा देवता है या आंधी देवता है? लेकिन यह तो केवल गैसों का एक समूह होता है।

गुरु—भौतिक विश्लेषण के अनुसार केवल यही और इससे अधिक कुछ नहीं; लेकिन उसके परे संश्लेषण को देखो। जड़-पदार्थ ही सब कुछ नहीं है और न विश्लेषण ही सब कुछ है; विश्लेषण द्वारा तुम यह सिद्ध कर सकते हो कि मनुष्य जंतुकों की राशि के सिवा कुछ नहीं है, इसलिये जड़वाद आग्रही तथा विद्वत्तापूर्ण मूर्खता के साथ दृढ़तापूर्वक डटा रहता है। लेकिन मनुष्य अपने-आपको जंतुकों की राशि मानना कभी स्वीकार न करेगा क्योंकि वह जानता है कि वह इससे अधिक है। वह विश्लेषण के परे संश्लेषण की ओर देखता है, वह घर के परे घर में रहनेवाले को, अंशों के परे उस शक्ति को देखता है जो उन अंशों को साथ रखती है। हवा के साथ भी यही बात है। वह मातरिश्वा की, इस पृथ्वी के लिये अभिव्यक्तियों में से एक विशिष्ट अभिव्यक्ति है, उन मकानों में से एक है जिनमें मातरिश्वा निवास करते हैं लेकिन मातरिश्वा सभी लोकों में हैं, उन्होंने ही सब लोक बनाये हैं, उनके अपने रहने के लिये अनगिनत मकान हैं। उनकी सत्ता का तत्त्व है भौतिक रूप में प्रकट होनेवाली गति और हम जानते हैं कि सृष्टि गति से ही संभव होती है। अतः मातरिश्वा जीवन का तत्त्व है, सर्वव्यापी वैश्व प्राण का सागर है। मनुष्य में उसकी सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण अभिव्यक्ति है वह शक्ति जो शरीर के अंदर गैसों के वितरण का संचालन करती है जिन्हें हम श्वास का नाम देते हैं!

शिष्य—फिर भी अधिकतर लोग इसे प्राकृतिक शक्ति कहेंगे, देवता नहीं।

गुरु—कहने को तुम उसे जो मरजी कह लो, केवल यह जानो कि मातरिश्वा ब्रह्म की एक शक्ति, नहीं, स्वयं ब्रह्म है जो अपने अंदर जलों को उनके अपने स्थान पर स्थित करते हैं। जैसे मातरिश्वा आकाश में से चयन हैं उसी तरह अग्नि मातरिश्वा में से और आपः अग्नि में से चयन है। यहां ध्यान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो कि यह बहुवचन में अपः शब्द का उपयोग हुआ है, इसी तरह बहुधा श्रुति में अधिष्ठाता तत्त्व अग्नि के नाम का प्रयोग करने की जगह बहुवचन 'ज्योतींषि' का यानी ज्योतियों, भव्यताओं, चमकदार चीजों, अग्नि की विभिन्न अभिव्यक्तियों का उपयोग होता है। इसी तरह वह आपः; समस्त द्रव, वरुण की विभिन्न अभिव्यक्तियों का उपयोग करती है जो उनके पीछे अधिष्ठातृ शक्ति हैं। तुम्हें यह न सोचना चाहिये कि समुद्र का जल या वर्षा का जल ही इस तत्त्व की अभिव्यक्ति है। ठीक इसी तरह तुम्हें यह न मान लेना चाहिये कि उस परली वेदी में स्थित अग्नि या आकाश में स्थित सूर्य ही आग्नेय तत्त्व की एकमात्र अभिव्यक्ति है। प्रकाश के सभी आभास और हर चीज, जिससे गरमी निकलती है, उन सबका प्रत्यक्ष आधार या अधःस्तर अग्नि में है। जलों के साथ भी यही बात है जिनका गरमी आदि की क्रिया द्वारा अग्नि में से चयन किया जाता है। फिर इसी तरह समस्त पृथ्वी, सभी ठोस रूपों का आधार या अधःस्तर पृथ्वी या पार्थिव शक्ति में होता है जो द्रव तत्त्व या जल या वरुण में से चयन है। अब जीवन इसी भांति चलता है। वह मातरिश्वा या वायु-शक्ति को अपने मुख्य तत्त्व तथा आवश्यक अवस्था के रूप में लेकर आकाश के अधःस्तर पर उठता है। वह आग्नेय या प्रकाशतत्त्व द्वारा तरल में से उस ठोस में उठता है जो उसका शरीर है। अतः बहुधा श्रुति में कहा जाता है कि जड़ जगत् जलों में से उत्पन्न हुआ है क्योंकि जबतक वह तरल स्थिति में से न निकल आये तबतक कोई विश्व नहीं होता। जब भौतिक विज्ञान प्रकृति के पथ का अनुसरण करते हुए विश्लेषण द्वारा उजान की ओर बढ़ते हुए ठोस को तरल, तरल को आग्नेय और आग्नेय को वायव्य में बदलने की जगह अनुप्रवाह में प्रकृति की प्रणाली का अनुकरण करना शुरू करेगा और विशेष रूप से संक्रमण की नाजुक स्थितियों का अध्ययन और उपयोग करेगा तब जड़ भौतिक सृजन का रहस्य खुल जायेगा और तब विज्ञान आज की तरह भौतिक जीवन का केवल नाश करने की जगह उसका सृजन कर सकेगा। अब हम समझ सकते हैं कि जब श्रुति कहती है कि ब्रह्म के अंदर मातरिश्वा जलों को अपने-अपने स्थान पर प्रतिष्ठित करते हैं तो इससे उसका क्या अर्थ होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्म समस्त भौतिक जीवन के पीछे की वास्तविकता हैं और सृजन की क्रियाएं उनकी वैश्व चेतना का सीमित अंश हैं और उस चेतना की नींव के बिना उन क्रियाओं का रहना असंभव है। शायद शंकर की यह भूल नहीं है कि वे अपः में 'क्रियाओं' का अर्थ देखते हैं। मातरिश्वा जिन विभिन्न प्राणिक क्रियाओं के अधिष्ठाता हैं उनमें मनुष्य-जाति के उद्देश्यों के लिये कर्म ही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसलिये याद रखो कि तुम जो कुछ करते हो, बनाते या नष्ट करते हो उसे तुम ब्रह्म के अंदर ही कर रहे, बना रहे या नष्ट कर रहे हो, कि वे तुम्हारे सभी कर्मों की स्थिति हैं। तुम अपने अंदर ब्रह्म को जितना अधिक आध्यात्मिक शक्ति के सागर के रूप में अनुभव करोगे, तीव्र बनाओगे, तुम्हारा सृजन और तुम्हारा विनाश उतना ही अधिक शक्तिशाली होगा; तुम परम देव के अधिकाधिक निकट पहुंचोगे। क्योंकि आत्मा ही सब कुछ है, शरीर नहीं, तुम्हें शरीर के बारे में इतना ही सावधान रहना चाहिये कि वह आत्मा का वाहन मात्र है क्योंकि आत्मा की उपस्थिति के बिना, जो प्रकृति को कर्म करने की शक्ति देती है, प्रकृति बिल्कुल जड़ रहती, नहीं, उसका अस्तित्व ही न होता। क्योंकि प्रकृति अपने-आपमें महान् बलशाली शक्ति के सृजन के सिवा और क्या है जो आदिहीन और अंतहीन, शाश्वत की शक्ति है। कुछ ज्ञान और अंतरस्थ आत्मा की अनुभूति के बिना तुम्हारा कर्म महान् नहीं हो सकता और तुम्हारा ज्ञान जितना ही गहरा होगा, तुम्हारा कर्म उतना ही महान् होगा। सभी महान् स्रष्टा ऐसे लोग हुए हैं जिन्होंने अपने अंदर बलपूर्वक भगवान् का अनुभव किया था, फिर वे चाहे शंकर जैसे ओलम्पियन प्रकार के दैवी हों या नैपोलियन की तरह आसुरी प्रकार के। असुर का ज्ञान चूंकि सीमित और गदला होता है इसलिये वह सदा शाश्वत और प्रकृति की अस्थायी और स्थूलतर अभिव्यक्तियों में, उदाहरण के लिये अपनी काम-वासना और महत्त्वाकांक्षा के प्राणिक आवेगों में घपला कर देता है। देव सात्त्विक होता है और प्रकाश का बालक होता है और ज्यादा स्पष्ट देखता है। जब नेपोलियन चिल्ला पड़ा था, "फ्रेंच क्रांति है क्या ? मैं ही फ्रेंच क्रांति हूं" तो उसने इस भाव को व्यक्त किया कि वह एक सामान्य मनुष्य की अपेक्षा अधिक है, भगवान् की क्रियारत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्ति है जिसने उसे इतनी आश्चर्यजनक ऊर्जा और ऐसा व्यक्तित्व प्रदान किया; लेकिन चूंकि उसका मन रजस्, आवेगों और कामनाओं के कारण गदला था इसलिये वह यह न देख पाया कि फ्रेंच क्रांति होने का तथ्य ही उसे साम्राज्य और वैभव के प्राणिक भाग की संतुष्टि भर की अपेक्षा अधिक उच्च और विशाल आदर्शों की ओर इशारा करता, कि वह उसे विद्रोही मानवजाति के नेता होने की प्रेरणा देता, वह राष्ट्रीयता की उस अमर भावना को कुचलनेवाला नहीं होता जो स्वयं उसकी अपेक्षा भी अधिक महान् और अधिक ऊर्जावान्, शाश्वत शक्ति की अभिव्यक्ति थी। इसीलिये उसका पतन हुआ, इसीलिये आद्या शक्ति देवी चंडी, रणरंगिणी, नृमुंडमालिनी ने उससे अपने वराभय को खींच लिया और उसके विरुद्ध तबतक लड़ती रही जबतक उसने उसे अपने सिंह के पंजों द्वारा कुचलकर चीर-फाड़ नहीं डाला। अगर वह मानवजाति के नेता के रूप में गिरता—तब वह गिर न पाता फिर भी यदि गिर पड़ता—तो भी उसकी आत्मा मृत्यु के बाद विजय पाती और आनेवाली शताब्दियों में राष्ट्रों पर शासन करती और उन्हें मार्ग दिखाती। इसलिये ज्ञान प्राप्त करो, अपने अंदर स्थित ब्रह्म का शुद्ध ज्ञान प्राप्त करो और उसे निष्काम कर्म द्वारा अपनी जाति के लिये, अपने देश के लिये, मानवजाति के लिये, सारे विश्व के लिये निःस्वार्थ कर्म में प्रकट करो, तब तुम इस मर्त्य शरीर में निश्चित रूप से ब्रह्म बन जाओगे और मृत्यु द्वारा अपने अंदर शाश्वतता को धारण कर लोगे।

तब श्रुति ईश के स्वभाव को प्रतिपादित करके और उसे ब्रह्म के साथ तदात्म करके उसके अज्ञेय परब्रह्म और विश्व के स्वामी के दोहरे रूप के आभासी द्वंद्वों का संक्षिप्त विवरण देती है कि वे विश्व के अंदर आत्मा और तुम्हारे शरीर के अंदर आत्मा हैं। जैसा कि पहले ही बतलाया जा चुका है वह तत् जो गति करता है और जो गति नहीं करता, जो दूर है और वह तत् जो बिल्कुल नजदीक है, वह जो इस सबके भीतर है और वही जो सबके बाहर है।

शिष्य—इस वक्तव्य में तो कोई कठिनाई नहीं है।

गुरु—नहीं, एक बार चाबी मिल जाये तो कोई कठिनाई नहीं रहती,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकिन यह अनुभव करने की कोशिश करो कि इसका अर्थ क्या है। अपनी आंखें सूर्य की ओर उठाओ, वह उस अद्‌भुत प्राण, प्रकाश और वैभव के हृदय में है। रात के समय अनगिनत तारा-मंडलों को देखो जो उस असीम नीरवता में शाश्वत की भव्य पहरुए की आग की तरह दमक रहे हैं; वह नीरवता शून्य विस्तार नहीं है बल्कि एक अनन्य शांति और विस्मयकारी अस्तित्व की उपस्थिति से स्पंदित होती है। वहां अपने खड्ग सहित ओरायन (मृग) को अपनी मेखला सहित उस तरह चमकते देखो जैसे वह आर्ययुग के आरंभ में दस हजार वर्ष पहले हमारे आर्य पूर्वजों के आगे चमका करता था, अपनी भव्यता में सीरिअस (लुब्धक), आकाश-सागर में करोड़ों, अरबों मील दूर तैरते हुए लाइरा (वीणा) को देखो। याद रखो कि ये अनगिनत लोक, जिनमें से अधिकतर हमारी पृथ्वी से अधिक बड़े और बलवान् हैं, अवर्णनीय गति से उस काल के चिर पुराण के इशारे पर घूम रहे हैं, कहां ? किस ओर ? स्वयं उसके सिवा कोई नहीं जानता। फिर भी वे तुम्हारे हिमालय से करोड़ों गुना अधिक पुराने, तुम्हारे पर्वतों की जड़ों से कहीं अधिक स्थायी और ऐसे ही बने रहेंगे जबतक कि उसकी इच्छा उन्हें विश्व के शाश्वत वृक्ष से सूखे पत्तों की तरह झाड़ नहीं देती। काल की अनंतता के बारे में कल्पना करो, देश की असीमता का अनुभव करो और फिर यह याद करो कि जब ये लोक नहीं थे, तब भी वह था, वैसा ही जैसा अब है और जब ये नहीं रहेंगे तब भी वह रहेगा, तब भी ठीक ऐसा ही रहेगा। देखो वीणा के परे भी वह है और देश (आकाश) में बहुत दूर जहां से त्रिशंकु भी नहीं दिखायी देता, वहां भी वह है। और फिर धरती पर लौट आओ और यह पता लगाओ कि यह "वह है कौन" ? वह तुम्हारे बहुत निकट है। उस ओर नजर डालो; लाठी लेकर चलते हुए उस बूढ़े को देखो जो झुका हुआ, घुटने मोड़े तुम्हारे सामने से जा रहा है। क्या तुम यह अनुभव करते हो कि यह भगवान् ही जा रहा है ? उधर धूप में हंसता हुआ एक लड़का भागा जा रहा है। क्या तुम्हें उसकी हंसी में भगवान् की हंसी सुनायी दे रही है ? नहीं, वह इसकी अपेक्षा भी अधिक नजदीक है, वह तुम्हारे अंदर है वह तुम ही हो। तुम ही करोड़ों मील दूर देश के अनंत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विस्तार में प्रज्ज्वलित हो रहे हो, तुम ही विश्वस्त चरणों से वायवीय सागर की उठती-गिरती लहरों पर चलते हो; तुमने ही तारों को अपने स्थान पर जड़ा है और हाथों से नहीं उस योग से, उस नीरव निष्क्रिय निर्वैयक्तिक इच्छा से सूर्यों की माला को गूंथा है। उसीने तुम्हें मेरी वाणी में स्वयं अपने-आपको सुनने के लिये आज यहां ला बिठाया है। हे प्राचीन योग के बालक, ऊपर देखो, और कांपनेवाले और संदेह करनेवाले न बने रहो; डरो मत, शंका मत करो, दुःख मत करो क्योंकि तुम्हारे प्रतीयमान शरीर में वह विद्यमान है जो एक ही सांस में सृष्टि का सृजन और विनाश कर सकता है।

हां, वह इस सबके अंदर आध्यात्मिक शक्ति के असीम सागर की तरह से है क्योंकि अगर वह न होता तो न तो यह बाह्य तुम और न यह बाह्य मैं, न ये सूर्य और न ये सब लोक एक लव निमेष भी रह पाते। लेकिन वह इस सबके बाहर भी है। अपनी अभिव्यक्ति में भी वह उसका अतिक्रमण करता हुआ उसके बाहर भी है—*अत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्*। अपनी अनभिव्यक्ति में वह उससे एकदम पृथक् है। दूसरे सत्य की अपेक्षा इस सत्य को ग्रहण करना अधिक कठिन है परंतु उसे ग्रहण करना है जरूरी। एक प्रकार का सर्वेश्वरवाद है जो विश्व को भगवान् के रूप में देखता है, भगवान् को विश्व के रूप में नहीं। लेकिन अगर विश्व भगवान् है तो क्या भगवान् जड़-भौतिक, विभाज्य, परिवर्तनशील, वस्तुओं के केवल ज्वार और भाटा हैं; लेकिन ये सब अपने-आपमें भगवान् नहीं हैं बल्कि अपनी छाया में या आभास में भगवान् हैं। अपने पुराने रूपक को दोहराएं तो वे शेक्सपीयर के मन की छायाएं और कल्पनाएं हैं। शेक्सपीयर अपने सारे नाट्य जगत् से अधिक विशाल ही नहीं है, उसके भीतर और उसके बाहर ही नहीं है बल्कि उससे अलग और उससे भिन्न भी है।

शिष्य—क्या आपका मतलब यह है कि ये उसके मन से निःसृत पदार्थ हैं?

गुरु—मेरा मतलब यह नहीं है। "निःसृत पदार्थ" एक मूर्खतापूर्ण शब्द है और मूर्खतापूर्ण भाव है। भगवान् कोई ऐसा पदार्थ नहीं हैं जिसमें से भाप निकलती रहती है। अगर तुम भगवान् में से निःसृत हो तो मेहरबानी करके यह बतलाओ कि वे निःसृत होकर गये कहां हैं, उनका इलाका कहां है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहां है उनका निवास ? तुम किसी ऐसी जगह नहीं जा सकते जहां तुम भगवान् के बाहर होओ, तुम अपनी आत्मा के बाहर नहीं जा सकते। चाहे तुम देश के दूरस्थ बिंदुतक भाग जाओ, भगवान् वहां भी हैं। क्या हेमलेट तथा दूसरे पात्र शेक्सपीयर के मन से निःसृत हैं ? क्या तुम मुझे बतलाओगे कि वे निःसृत होकर गये कहां ? क्या इन पृष्ठों में जो लुगदी की विकृतियां हैं, जो आज बनी और कल नष्ट हो जायेंगी ? क्या अंग्रेजी अक्षरों के उन संयोजनों में जिनसे ये पृष्ठ भरे पड़े हैं ? उन्हें किन्हीं और अक्षरों के संयोजनों में रख दो या किसी और भाषा में ऐसे आदमी को सुनाओ जो अक्षरों से परिचित नहीं है फिर भी हेमलेट उसके लिये जीवित-जाग्रत् होगा। क्या वह उन ध्वनियों में है जिन्हें अक्षर चित्रित करते हैं, ऐसी ध्वनियों में जो इस क्षण सुनायी देती और अगले क्षण विस्मृत हो जाती हैं ? लेकिन हेमलेट विस्मृत नहीं होता—वह सदा के लिये तुम्हारे मन में जीता है। तो क्या यह त्रिस्मृत ध्वनियों द्वारा भौतिक मस्तिष्क पर बनाये गये संस्कारों में है ? नहीं, तुम्हारे अंदर निद्रा पुरुष, चाहे तुमने कभी हेमलेट पढ़ा या सुनातक न हो, यदि पर्याप्त योग-प्रक्रिया से अथवा प्रबल सम्मोहन द्वारा मुक्त हुआ हो तो वह तुम्हें हेमलेट के बारे में बतलायेगा। शेक्सपीयर का नाटक-जगत् कभी शेक्सपीयर के मन से निसृत नहीं हुआ क्योंकि वह उसके मन में था और मन में है और तुम हेमलेट के बारे में इसलिये जान सकते हो क्योंकि तुम्हारा मन उसी वैश्व मन का अंग है जिसका अंग शेक्सपीयर का मन था—मैं अंग शब्द का प्रयोग इसलिये कर रहा हूं क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है, परंतु वास्तव में मन एक और अविभाज्य है। समस्त ज्ञान उसीका है, स्वभावतः निरंतर काल से निरंतर रूप में उसका है और जो ज्ञान हमें जाग्रत् अवस्था में वाणी, लेखन आदि वाहनों द्वारा प्राप्त होता है वह उसमें से बने या छोड़े हुए भाग या टुकड़े हैं और फिर भी वे उसी के अंदर हैं जैसे लोक ब्रह्म में से बने या बिखेरे गये खंड हैं; जिस तरह वैश्व चेतना में से चुनी हुई औरं अलग की गयी चेतना है जो अलग होने के बावजूद हमेशा ब्रह्म के अंदर ही है। निःसृत होना एक ऐसा ही रूपक है जैसे श्रुति में मकड़ी और जाल के रूपक का व्यवहार होता है, जो कुछ बातों के लिये उपयोगी तो है पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्य नहीं है, एक दर्शन खड़ा करने के लिये बहुत ही दुर्बल आधार है।

विश्व के अंदर और स्वयं अपने अंदर भगवान् को उपलब्ध करना सच्चा सर्वेश्वरवाद है और अज्ञेय को प्राप्त करने के लिये जरूरी कदम है, लेकिन विश्व को ही भगवान् समझ लेना भूल-भरा और उल्टा सर्वेश्वरवाद है। यह विलोम सर्वेश्वरवाद ऋग्वेद का बाहरी पक्ष है इसलिये ऋग्वेद उपनिषदों के विपरीत बंधन के सातत्य या ब्रह्मलोक की ओर ले जा सकता है जब कि उपनिषद् केवल ब्रह्मलोक या स्वयं ब्रह्मतक ले जाते हैं।

शिष्य—लेकिन आधुनिक पांडित्य हमें बतलाता है कि ऋग्वेद या तो एकैकदेववाद (एकसत्तावाद) या बहुदेववाद है, वास्तविक सर्वेश्वरवाद नहीं है।

गुरु—नहीं, अगर तुम अपने धर्म की व्याख्या ईसाइयों, नास्तिकों और अज्ञेयवादियों से मांगो तो इससे भी अधिक अद्भुत बातें सुनोगे। तुम चार्वाक की इस व्याख्या के बारे में क्या कहोगे कि वैदिक धर्म न तो सर्वेश्वरवादी है न बहुदेवतावादी बल्कि ब्राह्मणों का धनिकतंत्री अन्वेषण है? किसी बंद कमरे में आंधी जितनी आजादी से चल सकती है, कोई यूरोपीय या उसका शिष्य विद्वता में उससे ज्यादा आजादी के साथ वेदों के भाव में प्रवेश नहीं कर सकते। और विशेष रूप से विद्याडंबरी लोग तो शब्दों के परिचालन के परे कभी जा ही नहीं सकते। मेक्समूलर जैसे लोग थोड़ा-बहुत संस्कृत व्याकरण जानने के कारण यह मान लेते हैं कि वे हमें हमारे वेद और वेदांत के बारे में भाषण दे सकते हैं, लेकिन जब हम उनके पास प्रकाश के लिये जाते हैं तो देखते हैं कि वे तो मंदिर के प्रांगण की सीढ़ियों पर बैठे गोलियां खेल रहे हैं। उन्हें प्रवेशाधिकार प्राप्त नहीं था क्योंकि वे दर्प के भाव से यह सोचकर आये थे कि वे सीखने के लिये नहीं सिखाने के लिये आये हैं। अतः उनका शिक्षण सत्य की ओर नहीं केवल व्याकरण-मार्ग में सहायक था। दूसरे हैं जिन्होंने संस्कृत के प्रारंभिक ज्ञान से अनभिज्ञ होते हुए भी इन लोगों की अपेक्षा ज्यादा गहराई में देखा है—यद्यपि इनमें कुछ ने जितना देखना था उससे ज्यादा ही देख लिया, क्योंकि आखिर यह हेनोथीज़्म (एकसत्तावाद) क्या बला है, भूल पर आधारित पंडिताऊपन से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुजात पर नया शब्द क्या है? अगर इसका मतलब यह है कि आर्यों के विभिन्न वर्ग विभिन्न देवों को सर्वोपरि देव मानते और अन्य देवों को मिथ्या या अपेक्षया मिथ्या देव मानते तो अनिवार्य रूप से विभिन्न संप्रदायों में उग्र संघर्ष और धर्म के बीच सतत युद्ध हुआ करते लेकिन ऐसा हुआ नहीं। लेकिन दूसरी ओर अगर इसका यह अर्थ हो कि भिन्न-भिन्न पूजा करनेवाले विश्व के स्वामी की पूजा अलग-अलग विशिष्ट रूपों में करना पसंद करते हैं तो क्या फिर भी हम एकैकाधिदेववादी होंगे? हममें से ऐसा एक भी नहीं होगा जिसका अपना इष्टदेव न हो चाहे वह विष्णु, शिव, गणपति, मारुति, राम, कृष्ण, या शक्ति क्यों न हो; फिर भी हम उन सब रूपों के पीछे, जिन्हें हम पूजते हैं, विश्व के एक स्वामी को देखते हैं। और इसके अतिरिक्त अगर एक ही आदमी भिन्न-भिन्न प्राकृतिक शक्तियों की पूजा करे और बारी-बारी से हर एक को विश्व का स्वामी मान ले तो यह शुद्ध रूप से बहुदेवतावाद होगा। और वस्तुतः वैदिक धर्म का यही बाहरी प्रत्यक्ष रूप था। लेकिन जब वेदों के द्रष्टा यज्ञ की वेदी को छोड़कर ध्यान में बैठते थे तो वे देखते थे कि ब्रह्म न तो विश्वदेव और न विश्वदेवों का समन्वय है, बल्कि उनसे कुछ भिन्न ही चीज है। तब उन्हें वह अंतःप्रकाश प्राप्त हुआ जो उपनिषद् में दिया गया है; *ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्*। यह कहने का यही मतलब है कि ब्रह्म इस सबके बाहर है। वह न तो प्रकृति का समन्वय है न कोई ऐसी चीज है जिसे विश्व अपने भीतर समाये हुए है, वह स्वयं विश्व को समाये हुए है, जो स्वयं उसके अपने मन में, उसके अपने मन की छाया है।

शिष्य—मैं समझ गया।

गुरु—अगर तुम सचमुच समझ गये तो क्या तुम श्रुति के अगले कदम के लिये तैयार हो जिसे वह ब्रह्म के ऐक्य से प्राप्त करती है, जो किसी भी धर्म में पाया जानेवाला उदात्ततम नैतिक सिद्धांत है।

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रुति एक ऐसे आदमी को एक अमोघ मार्गदर्शक, एक निश्चित सहारा और पूर्ण आदर्श प्रदान करती है जो अपने-आपको ऐसे विरोधाभासों के बीच में पाता है जिन्हें उसके अंदर स्थित आत्मा की दोहरी प्रकृति ने रचा है—एक वह शक्ति जो जानती है, दूसरी वह शक्ति जो न जानने का खेल करती है।

सभी प्राणियों को अपनी आत्मा के अंदर देख। अगर तेरा मन धोखा दे, अगर तेरे आवरकों की वेदना अब भी तेरे भीतर की अमर आत्मा को छिपाये तो आंसुओं को छिड़क डाल, हां वे खुद रक्त के आंसू क्यों न हों, उन्हें अपनी आंखों से पोंछ डाल और विश्व पर नजर डाल। वहां तेरी अपनी आत्मा है जो ब्रह्म है, और ये सभी चीजें—तेरा अपना स्व, तेरा सुख, तेरा दुःख, तेरे मित्र और तेरे शत्रु—"उसके" अंदर हैं, *तत्र कः मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः*। हां, सब पुत्र-कलत्र, मित्र, शत्रु, सुख-दुःख, विजय, पराजय, सुंदरता और कुरूपता, सजीवता और निर्जीवता—ये सभी एकमात्र चेतना की तरगें हैं और वह चेतना हमारी अपनी है। अगर तुम उसके बारे में सोचने बैठो तो तुम्हारे न मित्र हैं न शत्रु, हर्ष है न शोक, जो भी है तुम्हारे अपने बनाये हुए हैं। वैज्ञानिक तुम्हें बतलाते हैं कि अपने परिवेश के साथ किसी विशेष तरीके से अनुकूलन करने की इच्छा के कारण ही एक जाति अपने-आपको दूसरी जाति से अलग कर लेती है, लेकिन यह तो वैश्व सिद्धांत का एक प्रयोग है। इच्छा-शक्ति ही सब चीजों की जड़ है। तुम पुत्र-कलत्र, शत्रु, मित्रों के लिये इच्छा करते हो और वे उठ खड़े होते हैं। तुम रोगी और दुःखी होना चाहते हो तो दुःख और रोग तुम्हें पकड़ लेते हैं। तुम बलवान् और सुंदर और सुखी होना चाहते हो और सारा संसार तुम्हारी कांति से चमक उठता है। यह समस्त विश्व उस एकमात्र वैश्व इच्छा का परिणाम है जिसने अपने अंदर बहु की सृष्टि करने का निश्चय करके अपने-आपको इन सब रूपों में रच लिया है जिन्हें तुम उसमें देखते हो।

शिष्य—इस विचार को पकड़ना बहुत कठिन है, यह बहुत विस्तृत और बहुत सूक्ष्म है।

गुरु—क्योंकि तुम्हारे शरीर में अविद्या, भेद-भाव ही स्वाभाविक स्थिति है। जरा सोचो। यह शरीर जीव-द्रव्य के अपने-आपको **विभाजित** करने से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं, बढ़ाने से बना है क्योंकि विभाजन से वह बढ़ नहीं सकता था। वह अपने अंदर से और एक अपने-आपको पैदा करता है, जो आकार-प्रकार, स्वभाव और रंग-रूप में एक ही होता है और इस तरह वह एक ऐसे शरीर का निर्माण करता है जो स्वयं वही होता है, जिसे स्वयं उसीसे गुणा किया गया हो। यह एक अपूर्ण उदाहरण है जो समझने में तुम्हारी सहायता कर सकता है।

शिष्य—वह अपने अंदर नहीं, अपने बाहर गुणा करता है, जैसे एक नर और नारी अपने बाहर एक पुत्र का सृजन करते हैं।

गुरु—तुम्हें ऐसा प्रतीत होता है क्योंकि वह देश और काल में कार्य कर रहा है—यह भी उसी तरह जैसे तुम्हें बहुत-सी जीवात्माएं दिखायी देती हैं जो एक-दूसरे के बाहर होती हैं जब कि गहरा ज्ञान तुम्हें बतलाता है कि जीवात्मा एक ही है या जैसे तुम कल्पना करते हो कि एक मनुष्य में दो पृथक् चेतनाएं होती हैं जब कि ज्यादा चतुर सम्मोहन तुम्हें दिखलाता है कि एक ही चेतना है जो अपने ही अंदर अलग-अलग तरह से काम कर रही है। एक अर्थ में हमें ऐसा लगता है कि जैव द्रव की तरह एकमेव भी अपना गुणन करता रहता है क्योंकि एकमेव जीवात्मा सब में समान है, इसीलिये सभी सत्ताओं में चेतना का आधारभूत साम्य है। एक अर्थ में ऐसा लगता है कि मानव चेतना की तरह वह भी अपने-आपको विभक्त करता है क्योंकि वह इकाई है और बाकी सब उस व्यापक इकाई की आंशिक अभिव्यक्तियां हैं। और फिर ऐसा लगता है कि वह अपने ही टुकड़ों को एक साथ जोड़ता है, क्योंकि तुम—यानी वह चेतना जो "तत्" है—अपने-आपको अपनी पत्नी के साथ जोड़ते हो, जो "वही" है, और एक बन जाते हो, और यह प्रक्रिया तबतक चलती रहती है जबतक व्यष्टि—अंशों में विश्लेषण—में से समष्टि या सबका समन्वय न पैदा हो जाये और अंत में ऐसा लगता है कि वह अपने-आपको अपने अंदर से घटाता है, क्योंकि जैसा मैं तुमसे कह चुका हूं, सृष्टि में हर चरण बृहत्तर सत्ता में से भागों को अलग करना और बिखेरना है। फिर भी ये सब रूप और आभास हैं और वह जो कुछ करता है वह उसके अपने अंदर ही होना चाहिये, क्योंकि उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पास यह करने के लिये और कोई जगह ही नहीं है, क्योंकि वह स्वयं समस्त देश और समस्त काल है। अतः इस बात को अनुभव करो कि ये सब जो तुम्हारे चारों ओर हैं, पुत्र-कलत्र, मित्र, शत्रु, मनुष्य, पशु, निर्जीव और सजीव चीजें स्वयं तुम्हारे अंदर, वैश्व मन में, रंगमंच पर अभिनेताओं की तरह हैं जो केवल नाटक की सुविधा के लिये, आभास के लिये तुमसे बाहर दिखलायी देते हैं। अगर तुम इसे अनुभव कर लो तो किसी पर नाराज न होओगे, इस कारण तुम किसी से घृणा न करोगे और किसी को चोट पहुंचाने की कोशिश न करोगे। क्योंकि तुम किसी से नाराज हो ही कैसे सकते हो; अगर तुम्हारे शत्रु तुम्हें कष्ट पहुंचाते हैं तो स्वयं तुम अपने-आपको कष्ट पहुंचा रहे होगे, वे जो कुछ भी हैं, स्वयं तुमने उन्हें वह बनाया है; वे जो कुछ करते हैं, तुम ही उनकी क्रिया की जड़ हो। तुम भी उन्हें कष्ट नहीं दे सकते क्योंकि इससे तुम अपने सिवा किसी और को कष्ट न दे रहे होगे। यदि शेक्सपीयर औथेलो को कष्ट देने के लिये इयागो से घृणा नहीं कर सकता तो उसी तरह तुम भी उनसे घृणा क्यों करो और उन्हें कष्ट क्यों पहुंचाओ? क्या तुम सोचते हो कि शेक्सपीयर ने जब सफल दुष्ट इयागो को मृत्यु और यंत्रणा की दंडाज्ञा दी तो वह उसके (इयागो के) भावों का साथी था? अगर शेक्सपीयर ने इयागो से घृणा की तो तुम झट कह दोगे कि यह शेक्सपीयर की अविद्या थी क्योंकि स्वयं शेक्सपीयर ने ही तो औथेलो पर चोट करने के लिये इयागो की रचना की थी, क्योंकि सचमुच न तो कोई इयागो है न औथेलो, है केवल शेक्सपीयर जो स्वयं अपने अंदर अपनी रचना कर रहा है। तब फिर तुम शेक्सपीयर के अपनी रचना के साथ घृणा करने की अपेक्षा स्वयं अपने बनाये हुए शत्रुओं के साथ अपनी घृणा को कैसे अधिक युक्तिसंगत बतला सकते हो। नहीं, जब सभी चीजें तुम्हारे अंदर हैं, तुम्हारी अपनी रचनाएं हैं, तुम स्वयं हो तब तुम अपनी रचना से विरक्त नहीं हो सकते, अपने-आप से घृणा नहीं कर सकते। घृणा और विद्वेष अविद्या के, अज्ञान के बालक हैं। यह नैतिकता का नकारात्मक पक्ष है; लेकिन एक सकारात्मक पक्ष भी है। श्रुति आगे चलकर उसीकी नींव रखने की तैयारी करती है। अवास्तविकताओं से अपने-आपको खींच लेने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिये सभी प्राणियों को आत्मा में देखना चाहिये लेकिन अगर तुम केवल इतना ही करो तो बड़ी जल्दी तुम समस्त कर्म के निर्वाण पर जा पहुंचोगे और एक अपूर्ण नाटक का परदा गिरा दोगे, लेकिन नाटक को उचित समय पर अपने निष्कासनतक जारी रखने के लिये तुम्हें अपने-आपको भी सब प्राणियों में देखना चाहिये। विद्या की स्थिति में आत्मा का स्वभाव है आनंद; विद्या की स्थिति आत्म-सिद्धि की स्थिति है, एकत्व की और सार्वभौमिकता की उपलब्धि है। अविद्या की स्थिति में आत्मा का स्वभाव, विभिन्नता और सीमांकन का मिथ्या भाव, शुद्ध आनंद की अवस्था न होकर सुख-दुःख की अवस्था है, क्योंकि सुख आनंद से भिन्न है, वह सीमित होता है और उसमें दुःख भी मिला होता है जब कि आनंद का स्वभाव असीम और द्वित्त से ऊपर होता है। जब स्वयं दुःख सुख बन जाता है, सुख के अंदर निगल लिया जाता है तब आनंद का जन्म होता है। अतः हर वह चीज जो भले आंशिक रूप से ही सही भेद-भाव को दूर करती और चरम ऐक्य की ओर जाने में सहायक होती है, अपने साथ, दुःख की आंशिक विस्मृति के साथ आनंद का स्पर्श लाती है। और जो चीज तुम्हारे लिये आनंद लाती है उसमें तुम भाव-विभोर होकर मगन हुए बिना नहीं रह सकते, उससे **प्रेम** किये बिना नहीं रह सकते। अगर तुम किसी दूसरे में अपने-आपको देखते हो तो तुम सहज स्वाभाविक रूप से उसके साथ प्रेम करने लगते हो क्योंकि तुम्हें अपने अंदर सुख प्राप्त होता ही है, अगर तुम अपने-आपको सभी प्राणियों में देखते हो तो तुम सभी प्राणियों के साथ प्रेम किये बिना नहीं रह सकते। बहु में एक की अनुभूति का अनिवार्य परिणाम है वैश्व प्रेम और वैश्व प्रेम के साथ भला घृणा, जुगुप्सा, नफरत आदि का लेशमात्र भी कैसे रह सकता है? ये चीजें उसके अंदर उसी तरह घुल जाती हैं जैसे उदय होते हुए सूर्य की ज्योति में रात का कुहरा। इसे एक और तरह से लो तो हम एकमेव सत्य के एक और नये पक्ष को देख पायेंगे। सारी घृणा और जुगुप्सा एक ही कारण से आती है और वह है अविद्या, जिससे उत्पन्न होती है इच्छा जिसे कामना कहते हैं, जिससे अहंकार उत्पन्न होता है, जिससे क्षुधा नामक कामना उत्पन्न होती है, कामना-क्षुधा से पसंद और नापसंद पैदा होती है, जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ हमारी कामना में सहायता देता है या उसे संतुष्ट करता है उसके लिये पसंद और जो कुछ कामना की तुष्टि में बाधा देता या उसे कम करता है उसके लिये नापसंद। इस प्रकार पैदा हुई यह पसंद जीव-द्रव के कोष की हर उस चीज के लिये पसंद की तरह है जो उसे ऐंद्रिय तुष्टि दे, प्राणमय कोष की उस पसंद की तरह है जो उसे भावात्मक तुष्टि दे, मनोमय कोष की उस पसंद की तरह है जो उसे सौंदर्य-बोधात्मक तुष्टि दे, ज्ञानमय कोष की उस पसंद की तरह है जो उसे बौद्धिक तुष्टि दे। लेकिन इनके परे भी कुछ ऐसी चीज है जो इतनी आसानी से समझ में नहीं आती, एक नारी के सुंदर शरीर के लिये, एक सुंदर चित्र या प्रीतिकर साथी, उत्तेजक नाटक, चतुर वक्ता, अच्छी कविता, प्रकाशमय और सुविवेचित तर्क के अतिरिक्त किसी के लिये मेरी ऐसी पसंद भी हो सकती है जिसका कोई औचित्य या प्रत्यक्ष कारण नहीं होता। अगर ऐंद्रिय तुष्टि ही सब कुछ होती तो स्पष्ट है कि इसका कोई कारण न होता कि मैं एक नारी की अपेक्षा दूसरी नारी को ज्यादा पसंद करता और पाशविक परितोष के बाद पसंद समाप्त हो जानी चाहिये थी; मैंने देखा है कि इस पाशविक आवेग को प्रेम का नाम दिया जाता है, शायद जब मेरे अंदर जैव द्रववाला पशु प्रधान था तो मैं स्वयं उसे यही नाम देता था। अगर भावात्मक तुष्टि ही सब कुछ होती तो मैं कुछ समयतक उस नारी के साथ चिपका रहता जो मेरे शरीर को सुख देती थी लेकिन यह तभीतक जबतक वह आज्ञापालन, मेरी पसंद और नापसंद के साथ सहानुभूति द्वारा, अपनी सुखद वाणी, अपने समादर या प्रत्युत्तर देनेवाले प्रेम द्वारा भावात्मक सुख देती लेकिन इनके बंद होने के साथ-ही-साथ मेरी पसंद भी मंद पड़ने लगती। इस तरह की पसंद को भी वही महान् नाम दिया जाता है और काव्य तथा रोमांस में उसका गुणगान किया जाता है। और यदि सौंदर्यात्मक परितोष ही सब कुछ होता तो एक बहुत सुंदर या मोहक नारी के लिये मेरी पसंद भावात्मक तुष्टि के खतम हो जाने बाद भी बनी रहती लेकिन जब उसके चेहरे पर अवस्था की लिपि झुर्रियों द्वारा प्रकट होने लगती या कोई दुर्घटना उसके सौंदर्य को बिगाड़ देती तो मेरी पसंद भी मंद पड़ जाती या गायब हो जाती क्योंकि कार्य के लिये वर्तमान कारण का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पोषण न रह जाता। नारी के लिये पुरुष के प्रेम में बौद्धिक तुष्टि कभी-कदास ही आती है और अगर आ भी जाये तो बहुधा बौद्धिक तुष्टि एक ही मन से प्राप्त होती है और दिन भर और रात भर के संग के कारण बहुत जल्दी समाप्त हो जाती है। तब फिर वह प्रेम कहां से आता है जो जीवन से अधिक महान् और मृत्यु से अधिक बलवान् है, जो सौंदर्य और मोहकता के चले जाने पर भी बना रहता है, जो प्रेम-पात्र के दिये गये अधिकतम कष्ट और तिरस्कार को चुनौती दे सकता है, जो बहुधा महान् और उच्च बुद्धि से अनंतगुनी नीची बुद्धि पर उतरता है? नारी का वह प्रेम क्या है जिसे कोई चीज मात नहीं दे सकती, जो अवज्ञा पर जीता और तिरस्कार और क्रूरता पर पनपता है, जिसकी ज्वालाएं चिता की लाल लपटों से ऊंची उठती हैं, जो स्वर्गतक तुम्हारे पीछे जाता है या नरक में से तुम्हें खींच लाता है? यह न कहो कि ऐसे प्रेम का अस्तित्व ही नहीं है और जो कुछ है वह क्षुधा, दर्प, स्वार्थ और स्वार्थ-भरे सुख पर आधारित है, कि राम और सीता, रुरु और सावित्री केवल स्वप्न और कल्पनाएं हैं। मानव प्रकृति, जो अपनी दिव्यता के बारे में सचेतन होती है, वह इस अपमान को तिरस्कार के साथ वापिस फेंक देती है—कविता इसे आशीर्वाद देती और इतिहास इसके निर्णय की पुष्टि करता है। वह प्रेम इसके सिवा कुछ नहीं है कि आत्मा आत्मा को मंद अथवा स्पष्ट रूप में पहचानने और एकत्व तथा एकत्व के आनंद को अनुभव करने का प्रयास करे। और फिर मित्र क्या है? निश्चय ही मैं अपने मित्र में शारीरिक सुख की खोज नहीं करता, न मैं उसे सुंदर सूरत-शकल के लिये चुनता हूं, न उससे समान रुचि या लक्ष्य की मांग करता हूं, जिसे मैं सामान्य साथी में चाहूंगा। मैं उससे इसलिये भी प्रेम नहीं करता क्योंकि वह मुझसे प्रेम करता या मेरी प्रशंसा करता है जैसा शायद मैं अपने विद्यार्थी से करूंगा और न ही मैं आवश्यक रूप से उससे एक चतुर मस्तिष्क की मांग करूंगा मानों वह केवल एक बौद्धिक सहायक या अध्यापक हो। ये सब भावनाएं रहती हैं लेकिन वे मैत्री की आत्मा नहीं हैं। नहीं, मैं अपने मित्र से नारी जिस कारण प्रेम करती उसी कारण से प्रेम करता हूं, क्योंकि मैं उससे प्रेम करता हूं, क्योंकि पुरानी अमर सूक्ति के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुसार वह मेरी "दूसरी आत्मा" है। पुराने रोमनों ने अंतर्भास द्वारा प्रेम के चरम रहस्य पर उंगली रखी थी। प्रेम है आत्मा का मन या शरीर में स्थित मिथ्या पुरुष से मुंह मोड़कर दूसरे में अपनी सच्ची आत्मा की ओर मुड़ना। मैं उससे प्रेम करता हूं क्योंकि मैंने उसके अंदर स्वयं अपनी आत्मा को पा लिया है, अपना शरीर या मन, अपनी रुचियां और भावनाएं नहीं बल्कि प्रेम और आनंद की मेरी अपनी आत्मा को जिसके बाह्य पक्ष के बारे में श्रुति ने सुंदर ढंग से कहा है, "प्रेम उसका दक्षिण पक्ष है" आदि। देश-प्रेमी के बारे में यही बात है, उसने अपनी आत्मा को अपने राष्ट्र में देखा है और वह अपने निम्नतर स्व को उच्चतर राष्ट्रीय आत्मा में खो देना चाहता है। चूंकि वह ऐसा कर सकता है इसलिये हम मेजिनी, गेरीबाल्डी, जॉन ऑफ आर्क, वाशिंगटन, प्रताप सिंह, शिवाजी आदि को पाते हैं। निम्नतर जड़-भौतिक पुरुष हमें ये सब न दे सकता। तुम ऐसे लोगों को उपयोगिता के कारखानों में, चार्वाक की भट्टी में नहीं बना सकते और न एपीक्यूरस की वाटिका में उगा सकते हो, मानवता के प्रेमी के लिये भी यही बात है जो अपनी निम्नतर सत्ता को मानवजाति में खो देता या खो देना चाहता है, कोई प्रबुद्ध स्वार्थ हमें फादर दामिएन (एक पादरी जिन्होंने अपना जीवन कोढ़ियों की सेवा में लगा दिया था) या ईसा मसीह या फ्लोरेंस नाइटिंगेल न दे पाता। और अंततः समस्त जगत् के प्रेमी के साथ भी यही बात है, उसका महान् प्ररूप हैं बुद्ध—मनुष्य के अंदर दिव्य प्रेम का एक और अद्वितीय आदर्श—जिन्होंने पूर्ण दिव्य आनंद से उसी तरह मुंह मोड़ लिया जैसे पूर्ण मानव आनंद से मुंह मोड़ा था ताकि वे अकेले नहीं बल्कि सभी प्रकृतियां त्राण पा सकें।

अपनी आत्मा को सभी प्राणियों में देखना समस्त प्राणियों को अपनी आत्मा में देखना समस्त धर्म, प्रेम, देश-प्रेम, लोकोपकार, मानवजाति और उन सभी चीजों का आधार है जो स्वार्थ और स्थूल उपयोगिता से ऊपर उठती हैं। क्योंकि स्वार्थ क्या है? स्वार्थ है भूल से अपनी सच्ची आत्मा के—जो समस्त विश्व और विश्व से भी बढ़कर है—अकलुष आनंद के स्थान पर शरीर और प्राणिक आवेगों को अपनी सच्ची आत्मा मान लेना और उनका परितोष, उनका स्थूल, संकीर्ण और अस्थायी सुख खोजना।

(क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोसायटी समाचार

सोसायटी की नारी परिषद् ने २१ से २३ नवंबरतक एक सेमिनार किया जिसका विषय था, "जीवन को सुंदर कैसे बनाया जाये"। देश के विभिन्न प्रदेशों से आयी हुई नारियों ने इस विषय पर अपने विचार प्रकट किये और इस विषय में माताजी और श्रीअरविंद के वाक्य भी पढ़कर सुनाये गये। सभा के अंत में सभी के अंदर यह भाव काम कर रहा था कि हम सच्चे सौंदर्य के वाहक बन सकें।

सोसायटी के युवा संघ ने २२ दिसंबर से २ जनवरीतक युवक-शिविर का आयोजन किया जिसमें माताजी और श्रीअरविंद के प्रकाश में व्यावहारिक मार्ग-प्रदर्शन देने का प्रयास किया।

डाक्टर महेश्वरी ने श्री सुधीर दीवान के साथ बंगाल के विभिन्न स्थानों पर विभिन्न विषयों पर भाषण दिये; कुछ विषय थे, 'मानव अभीप्सा और पूर्णता की प्रतिश्रुति', 'भावी युग'; 'श्रीअरविंद और गीता' आदि। इसके अतिरिक्त बंगाल की युवा परिषद् ने अनेक कार्यक्रम रखे थे जिनमें श्री किशोरी लाल जी ने भी भाग लिया।

हमारी देहरादून शाखा ने "श्रीअरविंद की शिक्षा" तथा शिक्षा पर अनेक वक्तृताओं की व्यवस्था की।

सोसायटी की रांची शाखा ने अपनी ३५ वीं वर्षगांठ मनायी।

पटियाला में वार्षिक योगासन प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया जिसमें लगभग एक सौ व्यक्तियों ने भाग लिया।

हैदराबाद शाखा ने १७ नवंबर, २४ नवंबर, ५ दिसंबर को 'सामूहिक ध्यान', 'आत्म-समर्पण' के कार्यक्रम रखे थे।

२१ फरवरी को गुंटूर सोसायटी भवन का उद्घाटन होगा। जिन लोगों को रस हो उन सबको निमंत्रण है। पता : कण्णकरै तोट्टे, गुंटूर—५२२००४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

O Lord, awaken in me an ardent desire to know Thee. I aspire that my life may be consecrated to Thy service.

The Mother

Space donated by

Kooverji Devshi & Co., Pvt. Ltd.

FIREX LEADS TO SAFETY
SAFETY LEADS TO PROSPERITY

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबसे पहली चीज होनी चाहिये 'शांति'। तुम जो कुछ करो उसे शांतिपूर्ण तरीके से करना चाहिये।

सहारनपुर सर्विस स्टेशन

पैट्रोल पम्प, देहरादून रोड

सहारनपुर-२४७००१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
Registered with the Registrar of Newspaper's for India
No. R. N. 18135/70
REGD. No. M. 8731

"The constant remembrance of the Divine is indispensable for transformation."

— THE MOTHER

With Best Wishes from:

MRS. KOYAL DEORAH CHARITABLE TRUST

28, VARSHA, 69/B, NEPEANSEA ROAD

BOMBAY - 4000 006

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्निशिखा

अखिल भारतीय पत्रिका

मार्च १९९०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्च १९९०   वर्ष २०, अंक ८, पूर्णांक २३६

विषय-सूची

सन्देश		१
'संपादकीय' : प्रयास	अनुबेन	२
दैनन्दिनी		३
ईशावास्योपनिषद्	श्रीअरविंद	७

आवरण पृ० १—पुष्प का माताजी का बतलाया हुआ अर्थ :
रूपान्तर
(सृष्टि का लक्ष्य)

आपका अग्निशिखा/पुरोधा का चंदा ... में समाप्त हो रहा है। कृपया अग्निशिखा के १० और पुरोधा के १४ शीघ्र भेजें अन्यथा अगला अंक वी.पी.पी. से जायगा। वी.पी.पी. लौट आने से हमें बहुत हानि होती है। अलग अनुस्मारक नहीं भेजा जायगा। कृपया चेक न भेजें। चाहें तो २२५ और २७५ एक साथ या किस्तों में देकर अग्निशिखा और पुरोधा के या ५०० देकर दोनों के आजीवन सदस्य बन सकते हैं।

अग्निशिखा वार्षिक १०.००   आजीवन २२५.००

श्रीअरविंद सोसायटी की मासिक पत्रिका

संपादक : रवींद्र, अनुबेन
प्रकाशक : श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी–६०५००२
मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी–६०५००२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि

संदेश

और लोग क्या करते, सोचते या कहते हैं उससे दुःखी होना हमेशा दुर्बलता का चिह्न और इस बात का प्रमाण है कि सारी सत्ता ऐकांतिक रूप से भगवान् की ओर मुड़ी हुई नहीं है, केवल भगवान् के प्रभाव में नहीं है। और तब अपने साथ प्रेम, सहिष्णुता, समझ तथा धैर्य से बना हुआ वातावरण लाने की जगह किसी और के अहंकार के उत्तर में तुम्हारा अहंकार अकड़ और आहत भावनाओं के साथ बाहर आता है और असामंजस्य बढ़ जाता है। अहंकार यह कभी नहीं समझता कि भिन्न-भिन्न लोगों में भगवान् के काम करने के तरीके भिन्न-भिन्न होते हैं और यह कि अपने अहंकारमय दृष्टिकोण से चीजों का मूल्यांकन करना बहुत बड़ी भूल है जो अस्त-व्यस्तता को निश्चय ही बढ़ाती है। हम जो कुछ आवेग तथा असहिष्णुता के साथ करते हैं वह दिव्य नहीं हो सकता क्योंकि भगवान् केवल शांति और सामंजस्य में ही कार्य करते हैं।

—माताजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संपादकीय :

प्रयास

हम समझते हैं कि हम अपने जीवन में जो भी निर्णय करते हैं वे सभी हमारे स्वतंत्र निर्णय होते हैं। यह कितनी बड़ी गलतफहमी है ! हमारी अपनी आंतरिक अवस्था, परिवेश और चारों ओर मंडराती भली-बुरी शक्तियों के प्रति हमारा झुकाव; ये सब चीजें हमारे निर्णय के लिये जिम्मेदार होती हैं। ऐसी परिस्थिति का निरीक्षण करके माताजी, श्रीअरविंद ने हमारी सहायता करने के लिये एक उपाय दिखाया है, वह है आंतरिक सचेतनता और जाग्रति। हम जितना अधिक अपने-आपको पहचानेंगे उतने अधिक स्वतंत्र बनकर, उन अदृश्य शक्तियों से मुक्त होकर, अपने जीवन पर नियंत्रण रख सकेंगे। मानव स्वाधीनता, इस क्षेत्र में बड़ा प्रश्न-चिह्न है। जिसे हम नियति कहते हैं वह केवल हमारी आंतरिक स्थिति, परिस्थिति, अदृश्य शक्तियों की ओर हमारे खुलने और हमारे अंतिम चुनाव पर निर्भर है। माताजी ने बताया था कि प्रत्येक मनुष्य के लिये हर क्षण सात संभावनाएं उपस्थित रहती हैं और साधारणतया मनुष्य उस स्थिति में चुनाव करता है जिससे वह सबसे अधिक प्रभावित हो। उदाहरण के लिये अगर उसका मन उस समय अधिक मजबूत हो तो उसका चुनाव मानसिक होगा, प्राण की लहरों में डूबता-उतराता हो तो चुनाव प्राणिक होगा। किंतु मनुष्य सबसे अच्छा चुनाव तब कर पाता है जब वह शांत हो, और आंतरिक रूप से नीरव रहकर उस मधुर, मद्धिम आवाज को सुन पाये जो उसकी आत्मा की आवाज होती है।

राष्ट्र इस समय कठोर परिस्थिति में पड़ा है। हमें राष्ट्र की सहायता करनी चाहिये और देश-सेवा के लिये भी हमें आंतरिक जाग्रति के साथ प्रयास करना होगा।

—अनुबेन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दैनन्दिनी

मार्च

१. सुखी और सार्थक जीवन के लिये आवश्यक तत्त्व हैं निष्कपटता, विजय, अध्यवसाय और प्रगति के लिये कभी न बुझनेवाली प्यास। और सबसे बढ़कर तुम्हें प्रगति की असीम संभावना के बारे में विश्वास होना चाहिये। प्रगति ही यौवन है। सौ वर्ष की अवस्था में भी तुम युवक हो सकते हो।

२. तुम मानसिक क्रिया-कलाप के द्वारा मन को स्थिर-शांत नहीं कर सकते, तुम्हें जिस सहायता की आवश्यकता है वह किसी उच्चतर या गहनतर स्तर से प्राप्त हो सकती है। और दोनों को नीरवता में ही पाया जा सकता है।

३. मन को स्थिर-शांत रहना चाहिये ताकि संपूर्ण अभिव्यक्ति के लिये 'शक्ति' उसके द्वारा प्रवाहित हो सके।

४. अच्छा काम करने के लिये अच्छी रुचि होनी चाहिये।
रुचि अध्ययन और सुरुचिपूर्ण लोगों की सहायता से शिक्षित की जा सकती है।
सीखने के लिये, पहले तुम्हें यह अनुभव होना चाहिये कि तुम नहीं जानते।

५. कोई महत्त्वाकांक्षा न रखो, और सबसे बढ़कर यह कि किसी चीज का दिखावा न करो, हर क्षण, तुम अधिक-से-अधिक जो हो सकते हो वह बनो।

६. मानव जीवन का लक्ष्य है भगवान् को खोजना और उन्हें अभिव्यक्त करना। परंतु यह सुख अपने-आपमें लक्ष्य न होकर एक परिणाम है। एक सामान्य अनुवर्ती परिणाम को जीवन का लक्ष्य मान बैठने की यह भूल ही मनुष्यजाति पर आनेवाली विपदाओं का कारण है।

७. वीर किसी चीज से नहीं डरता, किसी चीज की शिकायत नहीं करता और कभी हार नहीं मानता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८. अपने अंदर संपूर्ण समन्वय का निर्माण करो ताकि जब समय आये तो संपूर्ण सौंदर्य अपने-आपको तुम्हारे द्वारा प्रकट करे।

९. स्वाधीनता का मतलब अव्यवस्था और अस्तव्यस्तता से बहुत भिन्न है। हमें आंतरिक स्वाधीनता प्राप्त होनी चाहिये, और अगर तुम्हें वह प्राप्त है तो कोई भी उसे तुमसे नहीं छीन सकता।

१०. साहसी, सहनशील और जागरूक बनो : और सबसे बढ़कर, पूरी ईमानदारी के साथ सच्चे बनो।
तब तुम सभी कठिनाइयों का सामना कर सकोगे और विजय तुम्हारी होगी।

११. अपने-आपको भागवत चेतना में खो देना लक्ष्य नहीं है। लक्ष्य है भागवत चेतना को जड़-द्रव्य में प्रविष्ट होने देना और उसे रूपांतरित करना।

१२. जो रूपांतर के लिये तैयार हैं वे उसे कहीं भी कर सकते हैं। और जो तैयार नहीं हैं वे चाहे जहां भी हों उसे नहीं कर सकते।

१३. परम प्रज्ञा के लिये कोई भी चीज और हर एक चीज धरती को नयी सृष्टि की दृष्टि से तैयार करने का साधन बन सकती है।

१४. मृत्यु पर विजय पा सकने के लिये और अमरता को हस्तगत करने के लिये न तो तुम्हें मृत्यु से भय खाना चाहिये न ही उसकी कामना करनी चाहिये।

१५. भगवान् हर जगह हैं, और मैं फिर से दोहराती हूं कि भगवान् के लिये कुछ भी जीवित या मृत नहीं है—सब कुछ शाश्वत में रहता है।

१६. रोगमुक्त होने के लिये अनिवार्य शर्त है स्थिरता और अचंचलता। किसी भी तरह का विक्षोभ, कोई भी संकीर्णता बीमारी को बढ़ा देते हैं।

१७. श्रद्धा रखो। ऐसा कोई रोग नहीं है जो भागवत कृपा द्वारा ठीक न हो सके।

१८. निश्चेतना की गहराइयों में भी भागवत चेतना देदीप्यमान और शाश्वत रूप से चमकती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९. जो निष्कपट रूप से सत्य की सेवा करना चाहता है, वह सत्य को जान लेगा।

२०. अतिमानस सत्य है और वस्तुओं की स्वाभाविक गति के अनुसार उसका आविर्भाव अनिवार्य है।

२१. तर्कबुद्धि का शासन तबतक समाप्त न होना चाहिये जबतक चैत्य विधान न आ जाये जो भागवत इच्छा को अभिव्यक्त करता है।

२२. सभी बंधनों से मुक्त, ऊंचाई-से-ऊंचाई की ओर उड़नेवाली सत्ता वह सत्ता है जो भागवत रूपांतर की सुखद खोज कर रही है।

२३. आत्महत्या, हल से बहुत दूर की चीज है, यह परिस्थिति में एक ऐसा मूर्खतापूर्ण प्रकोप ले आती है जो शायद शताब्दियोंतक जीवन को असह्य बना देता है।

२४. अगर हम अपने अंदर, कुछ अधिक अंदर जायें तो हमें पता लगेगा कि हममें से हर एक के अंदर एक चेतना है जो युगों से जीती आ रही है और विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त होती आ रही है।

२५. अपने-आपको उस नये प्रकाश के प्रति खोलो जो धरती पर उदित हुआ है और तुम्हारे सामने एक ज्योतिर्मय पथ खुल जायेगा।

२६. नये जगत् का आविर्भाव अवश्यंभावी तथ्य है और उसे चाहे जो नाम दे लो, उसकी विजय निश्चित है।

२७. जबतक तुम स्वयं पूर्ण न होओ तबतक तुम और किसी से पूर्ण होने की आशा नहीं कर सकते। और पूर्ण होने का अर्थ है ठीक वैसा होना जैसा प्रभु चाहते हैं।

२८. जबतक धरती पर भगवान् की उपलब्धि तुम्हारा लक्ष्य न हो तबतक भगवान् के संदेशवाहकों के बहुत नजदीक न आने में पूरी सावधानी बरतो, क्योंकि उनकी क्रिया तूफान जैसी होती है जो सभी चीजों को उड़ा देती है।

२९. प्रभु ही हर चीज को सत्ता की गहराइयों से गति देते हैं, उनकी इच्छा निर्देशन करती है, उनकी शक्ति कार्य करती है।

अपने प्रति और अपने लक्ष्य के प्रति सच्चा होना, अव्यवस्थित आवेगों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के द्वारा परिचालित न होना, परिवर्तनशील बाह्य रूपों को ही सद्वस्तु न मान बैठना आदि वे गुण हैं जो अध्यात्म-पथ पर प्रगति करने की इच्छा रखनेवाले मनुष्य में अवश्य होने चाहियें।

३०. जो यह अच्छी तरह जानते हैं कि कौन-सी चीज सुंदर और महान् है लेकिन फिर भी इच्छा करके अशुभ कार्य करते हैं, ऐसे लोगों के लिये निःसंदेह जीवन भयंकर रूप से दुःखदायी बन जाता है। जब हम यह जानते हैं कि यह कार्य नहीं करना चाहिये और फिर भी उसीको लगातार करते रहते हैं तो उसका अर्थ यह होता है कि हम जो कुछ आराम, जो कुछ संभव शांति, जो कुछ सुख-समृद्धि प्राप्त कर सकते हैं उसे मूल्य में देकर ही ऐसा कर रहे हैं। जो मनुष्य झूठ बोलता है वह इस भय से निरंतर बेचैन रहता है कि उसकी मिथ्या बात प्रकट हो जायेगी; जो व्यक्ति गलत रूप में कार्य करता है वह इस भावना से सदा चिंतित रहता है कि शायद उसे दंड दिया जायेगा; जो आदमी धोखा देने की चेष्टा करता है वह शांति नहीं पाता और इस बात से संत्रस्त रहता है कि कहीं यह न पता चल जाये कि वह धोखा दे रहा है।

३१. तुम अपने कर्मों से उत्पन्न वातावरण को अपने साथ, अपने चारों ओर, अपने अंदर लिये फिरते हो और तुम जो कुछ करते हो वह यदि सुंदर, शुभ और सुसामंजस्यपूर्ण हो तो तुम्हारा वातावरण भी सुंदर, शुभ और सुसामंजस्यपूर्ण बना रहेगा, दूसरी ओर यदि तुम क्षुद्र स्वार्थपरता में, अविवेकपूर्ण आत्म-हितचिंतन में, निष्ठुर अशुभ इच्छा में निवास करो तो तुम अपने जीवन के प्रत्येक मुहूर्त्त उसीमें सांस लोगे और उसका अर्थ होगा दुःख, निरंतर बेचैनी; उसका अर्थ होगा ऐसी कुरूपता जो अपनी ही कुरूपता के कारण निराश है।

जीवन में रहकर ही तुम्हें अपने-आपको रूपांतरित करना चाहिये। इसी पृथ्वीपर ही तुम उन्नति कर सकते हो और इस पृथ्वी पर ही उपलब्धि प्राप्त कर सकते हो। इस शरीर में ही तुम 'विजयश्री' को अधिकृत कर सकते हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईशावास्योपनिषद्

(गतांक से आगे)

गुरु—स्वार्थ अविद्या से, महान् आधारभूत अज्ञान से उत्पन्न होता है जो अहंकार को पैदा करता है, यह तुम्हारे व्यक्तिगत अस्तित्व के भाव की अपने ही व्यक्तिगत अस्तित्व में तल्लीनता है जो एक साथ कामना और क्षुधा की ओर ले जाती है जो मृत्यु है, तुम्हारी अपनी मृत्यु तथा अन्यों की मृत्यु। यह भाव कि यह मैं हूं और वह तुम, मुझे यह या वह ले लेना चाहिये अन्यथा तुम उसे ले लोगे, यही समस्त स्वार्थ का आधार है। यह भाव कि जीवित रहने के लिये या खाये जाने से बचने के लिये इस अहं को चाहिये कि उस त्वं को खा ले, यही जड़ जीवन का आधार है जिसमें से संघर्ष और घृणा पैदा होते हैं। और जबतक मैं और तू का फर्क बना रहेगा, घृणा का अंत नहीं आ सकता, लोभ का अंत नहीं आ सकता, युद्ध का अंत नहीं आ सकता, अशुभ और पाप का अंत नहीं आ सकता और चूंकि पाप का अंत नहीं आ सकता इसलिये दुःख-दैन्य का अंत भी नहीं आ सकता। यह ऐसी शाश्वत माया है जो पृथ्वी पर जड़-भौतिक स्वर्ग की सभी भौतिक योजनाओं को व्यर्थ बना देती है, स्वर्ग का निर्माण भोजन और पेय के आधार पर, वस्तुओं के समान वितरण या वस्तुओं पर समान अधिकार के आधार पर नहीं होता क्योंकि सदा मेरा और तेरा, लोभ, घृणा अगर इस व्यक्ति और उस व्यक्ति के बीच न हों फिर भी इस जाति और उस जाति के बीच बार-बार आते रहेंगे। ईसाइयत आशा करती है कि वह मनुष्यों को एक सुखी परिवार की तरह भाई-भाई बनकर रहना सिखायेगी जिसमें सब एक-दूसरे से प्यार करेंगे और सबकी सहायता करेंगे। शायद उसे अब भी यह आशा है, यद्यपि आज के आधुनिक जगत् में ऐसा कुछ नहीं है जो उसके सपनों को संतुष्ट करता हो। लेकिन वह स्वर्ण युग भी न आयेगा, चाहे ईसा अपने सभी फरिश्तों के साथ उतर आयें और गांठ को काट दें, मनुष्य-जाति की बहुत बड़ी संख्या को बाहरी अंधकार में देश-निकाला दे दें जहां रोना-धोना और दांत किटकिटाना ही होता है और शुद्ध तथा निष्ठावान् बची-खुची मानवजाति से एकीकृत मानवजाति के परिवार की स्थापना कर सकें। यह रुग्ण कल्पना का कैसा पागल स्वप्न है कि मनुष्य वास्तव में हमेशा के लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुखी रह सकते हैं जब कि मानवजाति हमेशा दुःखी और पीड़ित रहती आयी है ! और बौद्ध धर्म की हल्की-सी मधुर और ललित छाया को भूमध्य-सागर की उग्र जातियों के अंधेरे और क्रूर मनों में किस तरह विकृत किया गया जब उन्होंने संतों का ऐसा चित्र आंका कि वे उन शाश्वत यातनाओं के ध्यान से अतिरिक्त आनंद पा रहे थे जिनमें ऐसे लोग तड़प रहे थे जिनके साथ वे रहते थे और शायद जिनसे वे प्यार भी करते थे। भारत ने ईसामसीह के अधरों से बुद्ध की प्रकृति, दिव्य प्रेम और दिव्य दया-माया का संदेश भेजा और यूरोपीय मानस ने दिव्य प्रेम और दिव्य दया की व्याख्या इस तरह की ! स्मिथफील्ड की अग्नियां, ऑटो द फे—धर्माधिकरण की दंडाज्ञा—की चमकती लपटें, ईसाई धर्म की अदालतों के अंध कूपों के इतिहास से भाप की तरह निकलनेवाले संताप का अवर्णनीय धुंआ—हां, ऐसे बुद्धिमान् लोग हैं जो इन पवित्र यातनाओं के लिये भी समर्थन खोज निकालते हैं—आखिर यह विनाशशील शरीर के बदले आत्मा की रक्षा करनेवाला भागवत प्रेम था ! लेकिन पूर्व की आर्य भावना, बुद्ध की भावना यूरोप की बर्बर भावना के साथ सतत संघर्षरत रहती है और अंत में निश्चय ही विजय पायेगी। अभी से ही यूरोप अपने मन के प्रवेश-द्वार पर मानवजाति को अपनी जीभ से श्रद्धांजलि दे रहा है, शायद किसी दिन वह अपने हृदय से भी श्रद्धांजलि दे। बहरहाल, टेरट्यूलिएन (ईसाई पादरीवाद) का युग पुराना हो गया है फिर भी सर्वोत्तम यूरोपीय विचार पर स्वयं सत्य का नहीं, ईसाई आदर्श का, सत्य के सीरियाई भाष्य का बोल-बाला है और ईसाई आदर्श है संयुक्त परिवार का आदर्श।

शिष्य—निश्चय ही यह एक उदात्त आदर्श है।

गुरु—बहुत उदात्त, हमारे यहां भी यह "वसुधैव कुटुम्बकम्" के प्रसिद्ध श्लोक में आसीन है। लेकिन हर वह चीज जो भिन्नता का संकेत देती है वह अविद्या पर आधारित और अविद्या का अनिवार्य फल है। क्या तुमने बंगाल का कोई बड़ा संयुक्त परिवार देखा है, विशेष रूप से तब जब उसमें से आर्य अनुशासन मिट चुका हो ? उसके बाहरी बल और एकता के बाहरी आभास के पीछे कैसा कर्ण-कटु संघर्ष, कैसे मन-मुटाव, कैसे तुच्छ विद्वेष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और घृणा, कैसी डाह और कैसी लोलुपता होती है ! और अंत में एक दिन धमाका, लड़ाई झगड़ा, अदालतों में मुकद्दमे और सदा के लिये विच्छेद। छोटे पैमाने पर सम्मिलित परिवार जो कुछ है वही एक बड़े पैमाने पर संयुक्त देश या राष्ट्र है चाहे वह रूस, आस्ट्रिया, जर्मनी या इग्लैंड हो। संयुक्त परिवार के रूप में मानवजाति का अर्थ होगा व्यावहारिक रूप में संयुक्त राष्ट्र के रूप में मानवजाति। उससे तुम्हें कितना लाभ होगा ? तुम युद्ध से पिंड छुड़ा सकोगे—कुछ समय के लिये—मनुष्यों द्वारा मानव शरीरों को क्षत-विक्षत होने से बचा सकोगे, लेकिन यद्यपि शरीर का ब्रह्म के चुने हुए बाह्य या उनके प्रिय परिधान के रूप में मान करना चाहिये फिर भी वह सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है। तुम घृणा, लोभ और संघर्ष द्वारा मानव आत्मा को और भी अधिक क्षत-विक्षत होने से न रोक सकोगे। यूरोपीय लोग शरीर को बहुत अधिक महत्त्व देते हैं, वे शारीरिक पाप से बहुत अधिक सकुचाते हैं परंतु मानसिक पाप में पूरी तरह आराम का अनुभव करते हैं। उनके लिये यह काफी है कि नारी अपनी कामना-वासना को क्रियान्वित करने से बचे, पुरुष शारीरिक हिंसा से दूर रहे, ऐसी स्थिति में वह सती साध्वी और पुरुष आत्म-संयत है। यह अगर शुद्ध रूप से अनार्य या म्लेच्छवाद नहीं है तो भी अपने अच्छे-से-अच्छे रूप में तुम लोगों के लिये अर्द्ध-आर्यत्व है जो आर्य शिक्षण में पैदा हुए हो, वह लंबी दासता के कारण चाहे जितना विकृत क्यों न हो गया हो, तुम वस्तुतः मन और भाव में शुद्ध आर्य हो, केवल वाणी और शरीर के बारे में सावधान नहीं, केवल शब्दों और क्रियाओं में शालीन नहीं बल्कि हृदय और विचार में भी सौम्य हो। यह सच्चा आत्म-संयम है और यही है वास्तविक नैतिकता। जबतक पाप करनेवाले और नरक की रचना करनेवाले पर विजय न पा ली जाये तबतक किसी स्वर्ग का अस्तित्व नहीं रह सकता और अगर कोई स्वर्ग रहा भी हो तो वह स्थायी नहीं रह सकता। हो सकता है कि धरती पर कभी स्वर्ग न आये और अगर कभी आये भी तो वह तब तो न आयेगा जब सारी मानवजाति भाई-भाई बन जाये क्योंकि भाई उसी तरह टकराते और झगड़ते हैं जैसे मित्र या अजनबी लड़ते-झगड़ते हैं बल्कि उससे भी बढ़कर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकिन यह तभी हो सकता है जब सारी मानव-जाति अनुभव कर ले कि समस्त सत्ता उसका अपना स्व है। यदि संयुक्त मानव-जाति पक्षी, पशु और जीव-जंतुओं पर अत्याचार करे तो निचले प्राणियों के श्वास से निकलनेवाली पीड़ा, घृणा और भय का वातावरण उच्चतर प्राणियों की शुद्धि को उत्पीड़ित और भ्रष्ट करेगा। कर्म का विधान अपरिहार्य है और तुम औरों के साथ जैसा व्यवहार करोगे वैसा ही असर तुम्हारे ऊपर होगा चाहे इस जन्म में हो या किसी और में। क्या तुम्हारा ख्याल है कि कभी सारी मानवजाति के साथ ऐसी विलक्षण घटना घटेगी कि वह कुत्ते और गिद्ध में ही नहीं, डसनेवाले सांप, डंक मारनेवाले बिच्छू में भी अपनी ही आत्मा को देख सके और मृत्यु को अपने भाई और विनाश को अपनी बहन के रूप में संबोधित कर सके, इतना ही नहीं, वे इन सबको अपने ही रूप में देख सकें—*'सर्वभूतेषु चात्मानम्'*, श्रुति तुम्हें तुच्छतम रेंगनेवाले जंतु या छटपटाते हुए गंदे-से-गंदे कीड़ों को भी न छोड़ने देगी।

शिष्य—यह तो संभव नहीं मालूम होता।

गुरु—मालूम तो नहीं होता; फिर भी बहुत-सी असंभव चीजें बार-बार होती हैं। फिर भी, यदि तुम्हें उस दूरस्थ विषय का आदर्श रखना है जिसकी ओर मानव-जाति गति कर रही है तो उसे हृदय में बनाये रखो। उन सभी राम-राज्य की कल्पनाओं पर अविश्वास करो जो पाप को नष्ट करना या उस माटी के एक अंश को खरोंच डालना चाहती हैं जिसमें वह उगता है, जब कि पाप की जड़ यानी अहंकार को सुरक्षित बनाये रखना चाहती हैं जो अज्ञान और कामना से उत्पन्न होता है। एक बार अहंकार आ जाये तो पसंद और नापसंद पैदा होती हैं, द्विविधता का मूल जोड़ा, *रागद्वेषौ*, पैदा होता है उसके लिये पसंद जो कामना की तुष्टि को आगे बढ़ाता है और जो उसमें बाधा दे उसके लिये नापसंद, अधिकार का भाव, हानि का भाव, आकर्षण, विकर्षण, सम्मोहन, वितृष्णा, प्रेम, घृणा, दया, क्रूरता, कृपा, क्रोध—द्विविधता का अनंत और शाश्वत जुलूस। तुम इनमें से एक जोड़ी को आने दो तो उसके पीछे सभी टटोलते-लड़खड़ाते आ जायेंगे। लेकिन जो मनुष्य अपने-आपको सभी प्राणियों में देखता है, घृणा नहीं कर सकता, वह किसीसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कतराता नहीं, उसमें न तो जुगुप्सा होती है न भय, "*ततो न विजुगुप्सते*"। वह उस ओर जो कोढ़ी है, जिससे सभी मनुष्य दूर रहते हैं—क्या मैं उससे दूर रहूंगा, मैं, जिसे मालूम है कि इस विचित्र वेश में से ब्रह्म मुस्कराती हुई आंखों से देख रहे हैं? यह वैरी जो हाथ में तलवार लिये उसे मेरी छाती में भोंकने के लिये आ रहा है—मैं तेज डरावनी तलवार के परे देखता हूं, उसकी तनी भृकुटी और घृणा-भरी आंखों के परे देखता हूं तो अपनी ही आत्मा के मुखौटे को पाता हूं; इसके बाद मैं न तो तलवार से भय करूंगा न उसके वाहक से घृणा करूंगा। हे मेरे अपने स्व जो मूढ़तावश अपने-आपको मेरा शत्रु मानता है, जबतक मैं अपने-आप यह चुनाव न करूं, तू मेरा शत्रु हो ही कैसे सकता है; मित्र और शत्रु बस उस असंख्य कार्य करनेवाले जादूगर, उस महान् स्वप्नद्रष्टा और कलाकार मन की रचनाएं हैं और अगर मैं तुझे अपना शत्रु न मानने की इच्छा करूं तो तू स्वप्न या छाया से बढ़कर कुछ नहीं हो सकता, जैसे तेरी तमतमाती तलवार एक स्वप्न है और तनी हुई भौंहें एक छाया है। लेकिन तू अपनी तलवार से मुझे काट देगा, तू मुझे मार डालेगा, गोलियों से छेद देगा, आग की लपटों से तड़पायेगा, अपनी तोप के मुंह से उड़ा देगा? मुझे तू नहीं छेद सकता क्योंकि मैं अकाट्य, अभेद्य, अविभाज्य, अदाह्य और अविचल हूं। तू मेरे इस परिधान को, मेरे पहने हुए इस अनेकानेक पर्तों के जैवद्रव से बने अन्नमय वेश को फाड़ सकता है—**मैं** वही रहूंगा जो पहले था। मैं तुझसे नाराज भी न होऊंगा। कोई एक बालक से कैसे नाराज हो सकता है क्योंकि उसने खेल-ही-खेल में या बचकाने गुस्से में उसका कपड़ा फाड़ दिया है? लेकिन शायद मेरे लिये कपड़ा मूल्यवान् था और मैं इतनी आसानी से उससे अलग न होता। तब मैं उसे बचाने की कोशिश करूंगा और हो सकता है कि मैं क्रोध के बिना तुझे दंड देने की कोशिश करूं ताकि तू और कपड़े न फाड़े; लेकिन अगर मैं यह न कर सकूं तो आखिर वह एक कपड़ा ही तो था और जल्दी ही दुकान से नया कपड़ा मिल सकता है। क्या मैं पहले से ही पेशगी दाम नहीं दे चुका हूं? हे मेरे न्यायाधीश, तू जो यह फैसला सुनाने के लिये बैठा है कि मुझे गले में फांसी लगाकर लटका दिया जाये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और तबतक लटकने दिया जाये जबतक मेरे प्राण न निकल जायें क्योंकि मैंने संयोग-वश तेरे विधानों को तोड़कर हजारों भूखों को रोटी दी, संयोगवश अपने देशवासियों की सहायता की जिन्हें तू अपनी खुशी के लिये दास बनाकर रखना चाहता था — क्या तू मुझे फांसी पर चढ़ा देगा ? जब तू आकाश से सूर्य को नहीं हिला सकता या व्योम को कपड़े की तरह लपेट नहीं सकता तो क्या तुझे मुझे फांसी पर लटकाने की शक्ति दी जायेगी ? तब फांसी के कारण जो मरेगा उसे तू क्या या कौन मानता है ? जंतुकों के एक गट्ठर से बढ़कर कुछ नहीं। ये बाहरी तू और मैं तो मंच के मुखौटों से बढ़कर कुछ नहीं हैं, उनके पीछे तो वह एकमेव है जो न तो मारता है और न मरता है। हे न्यायाधीश कहानेवाले मुखौटे, अपनी भूमिका अदा किये जा, मैं अपनी भूमिका पूरी कर चुका। हे प्राचीन योग के बालक, सभी चीजों में अपनी आत्मा का अनुभव कर, किसी चीज से भय न कर, किसी चीज से घृणा न कर, किसी चीज से आतंकित न हो, किसी चीज से जुगुप्सा न कर। अपनी भूमिका बल और साहस के साथ पूरी किये जा ताकि तू वही हो जो तू सचमुच है। भगवान् ही तेरी विजय हैं, भगवान् ही तेरी पराजय हैं, भगवान् ही तेरी मृत्यु और तेरा उत्पीड़न हैं—भगवान् जो कभी पराजित नहीं हो सकते, जो कभी मर नहीं सकते। क्या भगवान् किसीसे डरेंगे? क्या वे निराश होंगे ? क्या वे कांपेंगे और थरथरायेंगे ? नहीं, तेरा शरीर और तेरा मस्तिष्क जिन कीटों से बना है वे कांपते और थरथराते हैं। उनके अंदर बैठा तू शांत-अचंचल आंखों से उनकी पीड़ा और उनके आतंक को देखता है क्योंकि वे छाया-मात्र हैं जो अपने-आपको वास्तविकता के स्वप्न-रूप में देखते हैं। सभी जीवों में आत्मा का अनुभव कर, सभी जीवों को आत्मा के अंदर अनुभव कर तब अंत में आतंक तेरे आतंक से भाग जायेगा, पीड़ा तुझे छू भी न पायेगी ताकि कहीं तेरे स्पर्श से वह स्वयं पीड़ित न हो उठे, मृत्यु इस डर से तेरे नजदीक न फटकेगी कि कहीं वह स्वयं न मार डाली जाये।

यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो विवेकशील है, जिसमें सभी प्राणी आत्मा बन गये हैं, वह कैसे मोहग्रस्त हो सकता है, जिसकी आंखों में सभी चीजें एक हैं उसमें दुःख कहां से आयेगा ? यह महान् आदर्श की अनुभूति है, पूर्ण वेदांत का नैतिक और व्यावहारिक परिणाम है कि हमारे अंदर सभी चीजें हमारा अपना स्व बन जायेंगी। श्रुति कहती है कि जिस मनुष्य की आत्मा सर्व-जीव बन गयी है उसमें कौन-सा मोह या शोक रह सकता है, क्योंकि वह जहां कहीं देखता है "*अनुपश्यतः*", वह महान् एकत्व के सिवा, भगवान् के सिवा, प्रेम और आनंद की अपनी आत्मा के सिवा कुछ नहीं देखता। मोह है आभास को वास्तविकता समझ लेने की भूल, माया की शक्ति से चकरा जाना। "यह मकान जो मेरे पुरखों का था, यह मेरा था पर खेद है कि मैंने इसे खो दिया।" "यह मेरी पत्नी थी जिससे मैं प्यार करता था और मैं इसे हमेशा के लिये खो बैठा।" "हाय, मैं जिस बेटे से इतनी आशाएं रखता था उसने मुझे कितना निराश कर दिया।" "यह पद जिसके लिये मैंने आशा की और योजनाएं बनायीं, उसे मेरे प्रतिस्पर्द्धी ने, जिससे मैं घृणा करता था, पा लिया।" ये सब मोह के उद्‌गार हैं और मोह का परिणाम होता है शोक। लेकिन जिसकी आत्मा सर्व-जीव बन गयी है उसे न मोह हो सकता है न शोक। वह यह नहीं कहता, "मुझ देवदत्त ने यह मकान खो दिया, कैसी मुसीबत है !" वह कहता है, "मुझ देवदत्त ने यह मकान खो दिया लेकिन वह गया है मुझ हरिश्चंद्र के पास, यह सौभाग्य की बात है।" **मैं** कुछ भी नहीं खो सकता, सब कुछ मेरे पास ही रहेगा। मैं अपनी मृत और खोयी हुई पत्नी के लिये विलाप न करूंगा, वह खोयी बिल्कुल नहीं है, आज भी मेरे उतने ही नजदीक है जितनी पहले थी क्योंकि वह अब भी मेरी आत्मा है, मेरी आत्मा में है, मृत्यु के बाद भी उतनी ही जितनी तब थी जब उसका शरीर मेरे हाथों के नीचे था। **मैं** अपनी आत्मा को नहीं खो सकता। मेरे बेटे ने मुझे निराश किया है ? उसने अपना मार्ग अपनाया है, मेरा नहीं, लेकिन उसने स्वयं अपने-आपको, अपनी आत्मा को निराश नहीं किया जो मेरी अपनी आत्मा है, उसने केवल कोष को, ढक्कन को, उस मानसिक कोषाणु को निराश किया है जिसमें मैं नजरबंद था। एकमेव आत्मा का दर्शन सभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भेद-भावों को छिन्न-भिन्न कर देता है। उस शक्तिशाली अंतरात्मा का, जिसने भगवान् के दर्शन कर लिये हैं, स्वभाव ही है अनंत अचंचलता, अनंत प्रेम, अनंत उदारता और अनंत सहन-शक्ति। उसके मन को पाप, कलंक, रोग, जगत् की गंदगी मैला नहीं कर सकते और न ही उसकी सहानुभूति को विकर्षित कर सकते हैं जब वह पापी को गोबर के उस ढेर में से निकालने के लिये झुकता है जिसमें वह रेंगता है। वह उस कलंक से नहीं कतराता जो उसके अपने हाथों पर दाग लगा देता है; उसकी आंखें आंसुओं से भर-भर नहीं आतीं जब वह चीखते-चिल्लाते दुःखी जन को पीड़ा के गर्त में से उठा लेता है। वह उसे वैसे ही उठाता है जैसे कोई पिता अपने रोते हुए बालक को दलदल में फिसल पड़ने पर उठाता है। बालक सोचता है कि उसके चोट लग गयी है और वह रोता है। पिता जानता है कि सचमुच उसके चोट नहीं लगी है इसलिये वह दुःख नहीं करता, वह उसे फटकारता भी नहीं, वह उसे उठा लेता है और उसकी हठीली काल्पनिक पीड़ा को शांत करता है। ऐसी आत्मा भगवान् बन जाती है जो सहायता और प्रेम करने के लिये बलवान् और प्रेम-भरी होती है। वह स्वयं रो-धोकर मनुष्य के आंसुओं के सागर को और बढ़ाती नहीं है। जब बुद्ध ने जगत् के दुःख-दर्द को देखा तो वे रोये नहीं, वे उसकी रक्षा के लिये आगे बढ़े। और निश्चय ही ऐसी आत्मा अपने बाह्य स्व पर बाहरी जगत् से मिलते हुए दीखनेवाले तमाचों पर दुःख न करेगी क्योंकि जो समस्त विश्व है वह दुःख कैसे कर सकता है? उसके अपने तुच्छ स्व की पीड़ा उसकी चेतना के लिये उससे अधिक न होगी जितनी एक पैरों तले कुचली गयी चींटी की पीड़ा उस राजा के लिये जो राष्ट्रों की नियति को अपने कंधों पर ढोते हुए चिंतन करता हुआ अपने बगीचे में टहलता है। वह चाहे तो भी अपने लिये दुःखी नहीं हो सकता क्योंकि उसे पूरे एक जगत् के दुःखों का शमन करना है, उसके लिये अपना सुख कुछ भी नहीं है क्योंकि पूरे जगत् का सुख उसके आधिपत्य में होता है।

ज्ञान या दर्शन पाने के लिये दो रास्ते हैं। एक है अंतर्दर्शन का मार्ग, दूसरा है जगत्-दर्शन का मार्ग। भक्ति के दो मार्ग हैं : एक है आत्मा को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हारे अंदर केंद्रित सबका भगवान् मानकर उसके प्रति भक्ति और दूसरा है आत्मा को समस्त विश्व में फैला हुआ भगवान् मानकर उसके प्रति भक्ति। कर्म के भी दो मार्ग हैं, एक है योग द्वारा, कोषों की निश्चलता और अनिर्वचनीय, निष्क्रिय फिर भी सबको आवृत करनेवाली अंतरस्थ आत्मा की सर्वशक्तिमत्ता, दूसरा मार्ग है कामना की निष्क्रियता और समस्त विश्व में अधिक विस्तृत स्व के लिये बृहत्तर कोषों की निःस्वार्थ क्रियाशीलता। पहले मार्ग के लिये तुम्हें अपनी आंखें बाहर फेरने की जगह भीतर आवृत्त करनी होंगी, संपर्क और संवेदन के सुखों को अपने से दूर करके, मन और उसकी इंद्रियों को चुप करके और द्वित्त के ऊपर उठकर अपने अंदर एक बन जाओ '*आत्मतुष्टिरात्मारामः*'। क्या यह तेरे लिये बहुत कठिन है? क्या तेरा मन तुझे अशक्त छोड़ देता है, क्या तेरे कोषों का परिताप तेरे भीतर अमर आत्मा को अब भी छिपाये रहता है? आंसुओं को अपनी आंखों से मार भगा, भले वे खून के आंसू क्यों न हों, वे जैसे ही चूना शुरू करें उन्हें आग्रह के साथ पोंछ डाल और **बाहर** की ओर विश्व पर नजर डाल। वही तेरी आत्मा है, वही ब्रह्म है। इस सारी वैश्व हलचल का अनुभव कर, सूर्यों की इस परिक्रमा का, इस प्रकाश का, इस प्राण का, इस अंतहीन क्रियाशीलता का अनुभव कर। इस समस्त विश्व के अंदर तू स्वयं दोलायमान है, तू ही यह सूर्य, यह चंद्र और ये नक्षत्र है। सागर तेरे अंदर ही ठाठें मारता है, तूफान तेरे अंदर ही उठते हैं, पहाड़ तेरे अंदर ही दृढ़ता से खड़े हैं। अगर तू न होता तो ये चीजें भी न होतीं। क्या तू ब्रह्म के अंदर इस छोटे-से धूल के कण के कष्टों, इस छोटे-से कीट-आवरण के कष्टों के लिये दुःख मना सकता है? इन दुःखों का तू ही तो रचयिता है, क्या तू इनका अंत करनेवाला नहीं हो सकता? क्या यह दर्शन तेरे लिये बहुत बड़ा है? तब अपने चारों ओर नजर दौड़ा, अपनी दृष्टि को वहींतक सीमित कर दे। ये तेरे चारों ओर के सभी नर-नारी और जीवित प्राणी, उनके अनगिनत सुख और दुःख, इनमें से कौन-से तेरे हैं? ये सब तेरी आत्मा हैं और सब तेरे अंदर हैं। तू उनका स्रष्टा, पोषक और विनाशक है। अगर तू चाहे तो उन्हें तोड़ सकता है और अगर तू चाहे तो उन्हें अपने दुःख-दैन्य से मुक्त कर सकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है क्योंकि तेरे अंदर अनंत शक्ति है, अपने-आपको औरों के अंदर कष्ट पहुंचाकर तू असुर तो न बनेगा? तब फिर तू औरों के अंदर अपने-आपकी सहायता करने के लिये देव बन जा। जो तेरे निकट रहते हैं उनके दुःखों को जान और उन्हें दूर कर। तुझे शीघ्र अनुभव होगा कि तू इतने कालतक कैसे आनंद को खोये बैठा था; एक ऐसे आनंद को जिसमें तेरा अपना दुःख अपार्थिव कुहरे की तरह बढ़ता है। महान् शक्तिशाली अधर्मियों के साथ भिड़ जा, अत्याचार-पीड़ितों की सहायता कर, दास और बद्ध को मुक्त कर तो शीघ्र ही तुझे उस आनंद का पता चल जायेगा जो किसी भी सुख से बढ़कर है, तुझे शीघ्र ही उस एकमेव के आनंद की दीक्षा मिल जायेगी जो सबमें है। मृत्यु में भी तू उस आनंद को जानेगा और अपने अंदर से बहते रक्त में भी आनंद लेगा।

शिष्य—ये आदर्श बहुत अधिक ऊंचे हैं। उनके पीछे चलने के लिये बल कहां है और उस बल को पाने का रास्ता कहां है?

गुरु—उसका बल स्वयं तुम्हारे अंदर है और उस बल को पाने का मार्ग पुराकाल से तुम्हारा जाना हुआ है। लेकिन पहले उस आदर्श को स्वीकार करो नहीं तो रास्ते में आनेवाली बाधाओं को पार करने के लिये तुम्हारे पास कोई प्रेरणा न होगी।

शिष्य—मगर कितने हैं जो इस आदर्श को स्वीकार करेंगे जब कि बहुतेरे अधिक सरल आदर्श बल और सुख-सुविधा देने के लिये मिल सकते हैं?

गुरु—लेकिन क्या वे आदर्श सच्चे हैं? भ्रम तुम्हें कुछ समय के लिये बल और सुख-सुविधा दे सकता है लेकिन कुछ समय के बाद वे चकनाचूर हो जाते हैं और तुम्हें 'अस्तव्यस्तता' में लुढ़कने के लिये छोड़ जाते हैं। केवल सत्य ही निश्चित और चिरस्थायी विश्राम की चट्टान और बल का अविरत अग्रणी है। समस्त विश्व सत्य पर, अस्ति पर आधारित है, नास्ति पर नहीं। स्थूल जड़-पदार्थ के तामसिक कोष में भ्रमपूर्वक सुख से रहना मनुष्य का स्वभाव है। दर्शन और धर्म का काम है कि इस भ्रम को दूर करे और उसे सत्य के सम्मुख आने के लिये बाधित करे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिष्य—लेकिन कई बुद्धिमानों का कहना है कि ये छोटे आदर्श ही सत्य हैं, दर्शन और सत्य सत्य नहीं भ्रम हैं।

गुरु—इन नवजात सत्यों में एक भी बतलाओ मुझे जो उस ज्ञान को दूर करने का दावा करता हो जो अनादि और अनंत है, क्योंकि तुम मेरी अपेक्षा पाश्चात्य विज्ञान के बारे में अधिक जानते हो।

शिष्य—एक है अधिक-से-अधिक भला करने का सिद्धांत जिसमें कुछ सीमित, निश्चित और प्राप्य है—उसमें कोई तत्त्व ज्ञान की या अमूर्त वस्तु नहीं है।

गुरु—इस देश में हमने कुछ ऐसी बातें सुनी हैं। यह गणित द्वारा नैतिकता की ऐसी पद्धति है जिसे उपयोगितावाद कहा जाता है, जो चाहती है कि मनुष्य सारे जीवन तराजू हाथ में लिये अच्छे और बुरे को तोलता रहे। अपने समय में इसने कुछ भला किया था किंतु यह सत्य न था और स्थायी न हो सका।

शिष्य—यह किस बात में सत्य नहीं है ?

गुरु—यह सत्य नहीं है क्योंकि यह मानव स्वभाव में नहीं है। किसी मनुष्य ने किसी क्रिया के परिणाम-स्वरूप होनेवाले सुख-दःुख का गणित के हिसाब से लेखा-जोखा नहीं किया है और न ही कभी करेगा और न ही क्रिया करने से पहले उन लोगों का हिसाब लगाया है जिनपर उनके विभिन्न प्रकार के प्रभाव पड़ते हैं। इस प्रकार का नैतिक बीज-गणित, नैतिक हिसाब-किताब की इस पद्धति के लिये एक अन्य ग्रह की आवश्यकता है; एक योग्य लेखापाल के मानव धरातल पर उत्पन्न होने की जरूरत है। तुम सुख-दुःख, अच्छे बुरे को पाउंड, आउंस में नहीं तौल सकते : मानव भावनाएं, अमूर्त्त भाव दुर्ग्राह्य और क्षण-क्षण बदलनेवाले होते हैं। अपनी अत्यधिक व्यावहारिकता और निश्चितता के आभास के बावजूद उपयोगितावाद वास्तव में किसी भी निश्चित सत्य से खाली है, वह कोई भी सच्चा और सहायक पथ-प्रदर्शन देने में असमर्थ है। अपने-आपमें वह प्रकाश और अंतर्भास से समान रूप से रिक्त है, वह शुष्क, नीरस और निर्जीव सिद्धांत है और उससे भी बुरी बात यह है कि वह **मिथ्या** है। उसमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो कुछ मूल्यवान् है वह परोपकारवाद की नकल या उसका व्यंग-चित्र है। वह हमें तोल और माप के ऐसे मानक देता है जिन्हें निश्चित करना एकदम असंभव है। वह आत्माहुति के लिये या उसके प्रति तीव्र प्रेरणा के लिये कोई दार्शनिक औचित्य सिद्ध करने में असमर्थ रहता है। मेरा ख्याल है कि उपयोगितावादी सुखवाद—यही तो मुहावरा है न?—से ऐसा मालूम होता है कि दूसरों का भला करके हम वस्तुतः अपने लिये विशुद्धतः किसी भी सीमित संतोष से मिलनेवाले सुख की अपेक्षा अधिक विरल और अधिक गहरा सुख पा सकते हैं। बात बिल्कुल सच्ची है लेकिन यह सच सीखने के लिये हमें किसी सुखवादी या उपयोगितावादी की जरूरत नहीं है। बौद्ध लोग इसे दो हजार वर्ष पहले से जानते थे और भारत वर्ष के आर्य उससे भी पहले से इसे व्यवहार में लाते थे। श्रीकृष्ण का सारा जीवन औरों का, अपने मित्रों का, अपने देश का और जगत् का भला करने में लगा और श्रीकृष्ण का दुःख या पीड़ा से कभी परिचय नहीं हुआ। लेकिन उदारता और परोपकारिता से तीन तरह के सुख मिल सकते हैं; पहला है दर्प का संतोष, अपनी प्रशंसा सुनने का दर्प, यह अनुभव करने का दर्प कि मैं कितना अच्छा हूं। मेरा ख्याल है कि भारतवर्ष की अधिकतर उदारता की तह में यही भाव होता है और यूरोप में इससे भी बढ़कर; और यहां सुखवाद अधिक क्रियाशील होता है; लेकिन यह कमजोर कमानी है जो किसी भी तनाव के कारण टूट सकती है; यह उदारता की ओर तो ले जा सकती है परंतु आत्माहुति की ओर कभी नहीं। और फिर है कोई अच्छा काम करने की और अपने-आपको स्वर्ग के अधिक निकट लाने की खुशी। यह आर्यवर्त में परोपकार के लिये सबसे बड़ी प्रेरणा होती थी और शायद अब भी है। यह अधिक सशक्त कमानी है लेकिन यह संकरी है और सच्चे आत्मातक नहीं पहुंचती; उसका सर्वोत्तम मूल्य यह है कि यह पवित्रीकरण की ओर सहायक होती है और फिर हैं ऐसी आत्माएं जो प्रेम और निःस्वार्थता के लिये पैदा हुई हैं, शुद्ध रूप से औरों की सहायता करने के लिये, औरों के लिये कष्ट सहने के लिये, जो आंसुओं से भीगे चेहरों पर, कष्ट से भीगी आंखों पर खुशी को लौटते देखने के लिये उस आनंद का अनुभव करती है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो अपने अंदर भगवान् के उमड़ने से प्राप्त होता है। इन लोगों के लिये सुखवाद मिथ्या अभिमान और बच्चों का तुतलाना है। उपयोगितावाद में सुखवादी तत्त्व एक ऐसे महान् सत्य को खोजने का भूल-भरा टटोलता हुआ प्रयास है जिसे न तो वह पकड़ पाया है न वैज्ञानिक यथार्थता के साथ घोषित ही कर सका है। वह सत्य केवल वेदांत की स्पष्ट और आलोकमय शिक्षा में ही पाया जाता है। वह यह है, जिस मिश्रित परिणाम को हम मनुष्य कहते हैं. वह निश्चय ही एकाकी, सरल, एकरूप सत्ता नहीं, जैसा कि हमारी इंद्रियां मानना चाहेंगी, बल्कि मिश्रित परिणाम है। वह बहुत-से तत्त्वों से मिलकर बना है, शारीरिक, प्राणिक, मानसिक, बौद्धिक और तात्त्विक। और उसकी सच्ची आत्मा जिस तत्त्व में रहती है वह इन पचमेल तत्त्वों में से कोई नहीं है बल्कि इनके परे और परात्पर है। अतः सुख, दुःख, अच्छा, बुरा स्थायी और निश्चित सत्ताएं नहीं हैं। इनमें से पहली पचमेल राशि है जो कभी-कभी आपस में भिड़ते हुए भावों और आवेशों का मेल है जो ऐसे विभिन्न छिलकों में से आते हैं जिनमें आत्मा लिपटी रहती है। शुभ और अशुभ सापेक्ष हैं और इसपर निर्भर हैं कि हम मनुष्य के इस छोटे-से ब्रह्मांड में आत्मा की सच्ची स्थिति के बारे में कौन-सा दृष्टिकोण अपनाते हैं। अगर हम उस आत्मा को कहीं नीचे स्थित मानें तो हमारा शुभ धरती की एक तुच्छ चीज, पार्थिव होगा जिसे अशुभ से मुश्किल से ही अलग जाना जा सकता है। अगर हम उसे उसके अपने सच्चे स्थान पर देखें तो हमारा शुभ स्वर्ग के समान उच्च और विस्तृत होगा। समस्त पीड़ा और सुख, सभी शुभ और अशुभ अपना जन्म, अपना अस्तित्व और अपना अंत आत्मा में ही पाते हैं। अतः इसका अर्थ यह होता है कि उच्चतम प्रेम और परोपकारिता भी आत्मा से बंधे हैं। परोपकारिता औरों के लिये अपनी बलि नहीं है बल्कि अपने मिथ्या स्व की अपनी सच्ची आत्मा पर बलि है। जबतक हम योगी न हों, इसे औरों में ही अच्छी तरह देख सकते हैं। सच्चा प्रेम औरों के लिये प्रेम नहीं है, बल्कि अपनी आत्मा के लिये प्रेम है, क्योंकि हम संभवतः किसी ऐसी चीज से प्रेम नहीं कर सकते जो हमारी अपनी आत्मा न हो। अगर हम किसी ऐसे से प्रेम करें जो हमारी आत्मा नहीं है तो वह संपर्क का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिणाम होना चाहिये लेकिन हम केवल संपर्क से, स्पर्श से प्रेम नहीं कर सकते क्योंकि संपर्क अपने स्वभाव तथा परिणामों में अस्थायी होता है और प्रेम जैसे स्थायी भाव को नहीं जगा सकता। याज्ञवल्क्य ने ठीक ही कहा है, "हम पत्नी की चाह पत्नी के लिये नहीं करते बल्कि *'आत्मनस्तु कामाय'*, आत्मा के लिये करते हैं।" अगर हम उन चीजों को आत्मा मान लें जो सच्ची आत्मा नहीं हैं तो परिणाम-स्वरूप हम ऐसी चीजों को प्रेम मान बैठेंगे जो सचमुच प्रेम नहीं हैं। अगर हम चोकर को आत्मा मान बैठें तो हम पत्नी की कामना शारीरिक तुष्टि के लिये करेंगे। अगर हम प्राणिक भाव के चोकर को आत्मा मान लें तो हम भावनामय तुष्टि के लिये पत्नी की कामना करेंगे। अगर हम मानसिक चोकर को आत्मा मान लें तो हम पत्नी की चाह सौंदर्य-बोध की तुष्टि के लिये, घर के आस-पास उसकी उपस्थिति, उसकी आवाज, उसकी सूरत-शकल के सुखद बोध के लिये करेंगे। अगर हम बौद्धिक चोकर को आत्मा मान लें तो हम पत्नी की चाह करेंगे उसकी विशेषताओं और उसके सद्गुणों, उसकी क्षमताओं और मानसिक प्रतिभाओं और समझ की तुष्टि के लिये। अगर हम आत्मा को आनंदमय कोष में देखें जहां भूल-भ्रांति का तत्त्व लगभग लुप्त-सा हो जाता है तो हम पत्नी की इच्छा सच्ची आत्मा की तुष्टि के लिये, ऐक्य के भाव की तुष्टि के लिये, एक हो जाने के भाव के लिये करेंगे। और अगर हमने अपनी सच्ची आत्मा को चोकर या आवरण के बिना देखा और समझा है तो हम पत्नी की चाह बिल्कुल न करेंगे क्योंकि हमें उसपर अधिकार होगा, हम जानते होंगे कि वह पहले से ही हमारी आत्मा है, अतः उसे उसके कोषों में चाहने की जरूरत नहीं है, क्योंकि **वह** पहले ही अधिकृत है। इसका मतलब यह हुआ कि हम जितने ही आंतरिक कोष को आत्मा समझ लें, उतना ही शुद्ध सुख, उतना ही उच्च शुभ का विचार होगा, यहांतक कि वास्तविक निरावरण में हम शुभ और अशुभ के ऊपर उठ जाते हैं क्योंकि तब हमें न तो शुभ की जरूरत रहती है और न अशुभ के लिये प्रलोभन। भावनात्मक सुख शारीरिक सुख से ऊंचा, सौंदर्यात्मक भावनात्मक से, बौद्धिक सौंदर्यात्मक से, नैतिक बौद्धिक से और आध्यात्मिक सुख नैतिक सुख से ऊंचा होता है। नीति-शास्त्र का यही पूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्य और पूर्ण दर्शन है। बाकी सब शक्तियों की व्यावहारिक व्यवस्था और संतुलन है, सामाजिक संतुलन या अन्य महत्त्वपूर्ण परंतु अस्थायी लक्ष्य के लिये ऊर्जाओं की मितव्ययता है।

उपयोगितावाद सत्य की एक आंशिक और उलझी हुई दृष्टि पाता है और उचित रूप से उसका मेल बैठाने में असमर्थ होने के कारण किसी विधान, मानक या व्यवस्था के सिद्धांत के लिये टटोलता फिरता है और मान लेता है कि उसने उसे उपयोगिता में पा लिया है। लेकिन कैसी उपयोगिता? मैं, यह निष्पादित पशु जिसमें कामनाएं, विचार, स्पंदन और उन्हें तुष्ट करने की उत्कट आवश्यकता है, अच्छी तरह समझ सकता है कि व्यक्तिगत उपयोगिता क्या है; इस प्राणिक, भावात्मक और विचारात्मक "मैं" के लिये उपयोगिता। मेरी उपयोगिता है अपने जीवन और उसकी सुरक्षा से मेल खाती हुई अधिक-से-अधिक संवेदात्मक, भावात्मक, बौद्धिक तुष्टि पाना; यदि उपयोगिता ही मेरे आचार का मानक हो तो यही मेरा नीति-शास्त्र है। लेकिन जब तुम मुझसे कहते हो कि उपयोगिता और बौद्धिकता के नाम पर किसी उच्चतर या अधिक विस्तृत उपयोगिता के लिये, औरों के लिये, अधिक संख्यक लोगों के लिये, समाज के लिये इन चीजों की आहुति दे दूं तो मैं तुम्हारा अनुकरण नहीं करता। जिस हदतक शासन चलाने के लिये, विधान और सुव्यवस्था और अच्छी पुलिस रखने के लिये आवश्यक है, वहांतक मैं समझ सकता हूं क्योंकि ये चीजें मेरी सुरक्षा और मेरे आराम के लिये जरूरी हैं। समाज ने मुझे ये चीजें दी हैं और मेरा कर्तव्य है कि इन्हें बनाये रखने के लिये अपना योगदान दूं तथा औरों से भी दिलवाऊं। यह व्यापारी बुद्धि है, उपयोगिता की दृष्टि से भी और युक्ति-संगत दृष्टि से भी। लेकिन इसके परे समाज का मेरे ऊपर कोई अधिकार नहीं है। समाज का अस्तित्व मेरे लिये है, मेरा समाज के लिये नहीं। तो अगर मुझे उन चीजों की समाज के लिये, अपने जीवन, अपनी वस्तुओं, अपनी घरेलू शांति के लिये बलि देनी पड़े जिन्हें शायद मैं सबसे अधिक चाहता हूं, तो मेरे लिये समाज का उपयोग नहीं रहता। तब मैं समाज को एक कपटी जमाकर्ता के रूप में मानता हूं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो मेरे नैतिक बैंक में से उससे अधिक निकालना चाहता है जितना उसने जमा किया है। साधारण मनुष्य, जो न अनैतिक है और न बहुत नैतिक, केवल एक संभ्रांत व्यक्ति है, यह युक्ति दे सकता है और उपयोगितावाद उसे कोई संतोषजनक उत्तर नहीं दे सकता।

और फिर, यदि मेरे अंदर और भी सहज वृत्तियां हैं जो संभ्रांत व्यक्ति में नहीं पायी जातीं, और उन्हें पूरा करने की क्षमता है, तो मैं क्यों उनसे परहेज करूं ? मुझे कौन-सी चीज रोकती है ? अगर मैं धोखा-धड़ी के किसी सुरक्षित तरीके से, जूए या सट्टे से या अमरीकी धनाढ्यों के दयाहीन तरीकों से, तेजी से विपुल धन कमा सकूं तो मैं उससे क्यों दूर रहूं ? समाज-विरोधी आचरण का आरोप ? लेकिन मजबूत स्वभाव अहंकारी के लिये इन बातों का कोई भय नहीं रहता। वह जानता है कि वह समाज के विरोध को स्वर्ण-मोहरों की बौछार से बंद कर सकता है। प्राणिक रूप से संवेदनात्मक मनुष्य के लिये नैतिकता उपयोगितावाद के काल में केवल सामाजिक या कानूनी दया का **भय** बनकर रह जाती है और मजबूत लोग नहीं डरते और जबतक उनके कर्म समाज के ढांचे को ही न हिला दें तबतक उपयोगितावादी समाज उनकी भर्त्सना करने की परवाह नहीं करता क्योंकि वे किन्हीं कड़े दंड-विधान को नहीं तोड़ते, किन्हीं गहरी जड़ोंवाले मनोभावों को आघात नहीं पहुंचाते—उपयोगितावादी सोच-समझकर मनोभावों से कन्नी कटा लेता है। वह पुराने पूर्वाग्रहों और धर्म की शक्तियों को तो नष्ट करता है परंतु उनका स्थान लेने के लिये उसके पास शक्ति और भय के सिवा और कुछ नहीं होता। इन लोगों से यह कहना बेकार होता है कि वे सदाचार और परोपकार में अपनी वर्तमान स्वार्थपरता और समाज-विरोधी जीवन की अपेक्षा अधिक सच्चा और गहरा आनंद पाएंगे। ये दार्शनिक जो बात कहते हैं उसका प्रमाण या दार्शनिक औचित्य कहां है ? उनका निजी अनुभव ? परंतु यह किसी सामान्य संवेदनात्मक मनुष्य के लिये प्रामाणिक नहीं है। **उसका** गहरे-से-गहरा सुख आवश्यक रूप से प्राणिक और संवेदनशील है। यह केवल उन्हीं लोगों के लिये मान्य होता है जो ऐसा वक्तव्य देते हैं क्योंकि वे बुद्धि-प्रधान लोग होते हैं जिन्हें मृत ईसाइयत से बची हुई नैतिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा प्राप्त होती है। उसके संवेदनात्मक मनुष्य होने के लिये यह जरूरी है कि वह संवेदनात्मक होना बंद कर दे। उसे आध्यात्मिक पुनरुद्धार की प्रक्रिया में से गुजरना होगा जिसके लिये उपयोगितावादी दर्शन चाबी या कोई प्रेरक प्रेरणा भी नहीं दे सकता। उपयोगितावादी के मुख से गहरे और सच्चे आनंद की बात सुना-सुनाया ज्ञान है, उसकी अपनी कमाई नहीं। यह नैतिक सिक्कों के खजाने का एक भाग है जिसे ईसाइयत की तिजोरी के बुद्धिवाद से भरा गया है। आजकल की यूरोपीय सभ्यता उसीके ऊपर खतरनाक ढंग से टिकी हुई है। उस दिन की बात सोचकर घबराहट होती है जब यह सिक्का चुक जायेगा—हम अभीसे बढ़ते हुए नैतिक गंवारूपन, अश्लीलता, लगभग जंगलीपन को यूरोपीय मानस में बढ़ते हुए देखते हैं। अगर यह बढ़ता गया, अगर इस पाशविक शक्ति और चरित्रहीन बल की खुले आम पूजा बढ़ती गयी जो अगर आज यूरोप की राजनीति में उच्छृंखल रूप से और व्यापारिक दोष के रूप में बढ़े, जैसा कि अंततः उसे करना ही होगा, तो समाज का गभीरतर हृदय प्राणिक और संवेदनात्मक आवेशों के एक ऐसे गुप्त अनुष्ठान की ओर ले जायेगा जैसा रोम के साम्राज्य के सबसे बुरे काल से आजतक नहीं देखा गया।

शिष्य—लेकिन लीकी ने सिद्ध कर दिया है कि यूरोप का नैतिक सुधार पूरी तरह बुद्धिवाद के उभरने की वजह से हुआ है।

गुरु—मेरे बेटे, यूरोप और एशिया दोनों में विद्वान् और सुसंस्कृत मन एक ऐसी महान् विशेषता है जिसकी हमें सराहना तो करनी चाहिये पर नकल नहीं, और यह है शब्दों के साथ चालाकी के साथ बाजीगरी। अगर तुम किसी शब्द-विशेष को विस्तृत अर्थ देना चाहो, एक ऐसा अर्थ जो वह नहीं देता या उसे नहीं देना चाहिये तो तुम आसानी से उसपर सिद्धांत की एक चमकती हुई इमारत खड़ी कर सकते हो जो आंखों को तबतक मोहित करती रहती है जबतक कि कोई और अधिक प्रभावकारी शब्द के साथ न आ जाये जिसे अधिक प्रभावशाली अर्थ के साथ विस्तारित किया जाये, जो पुरानी इमारत को ढाकर एक नये और अधिक चमचमाते भवन की रचना कर दे। इस तरह प्राचीन शाश्वत सत्य के ऊपर निकम्मी अधिरचनाएं खड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जाती हैं, यहांतक कि एक दिन कोई हितकर भूकंप आकर इमारतों और उन्हें बनानेवालों को हड़प लेता है और प्राचीन सत्य को प्रकट करता है जिसे कोई परिवर्तन या संयोग हानि नहीं पहुंचा सकता। यूरोप के हमेशा बदलते रहनेवाले सिद्धांतों के दिये हुए चक्करों में केवल दो आधारभूत सत्य हैं जिनका बहुधा गलत प्रयोग होता है, फिर भी वे आभास के क्षेत्र में सच्चे हैं—विकास, जिसकी शिक्षा हमारे सांख्य और वेदांत ने भिन्न-भिन्न रूपों में दी है और अनिवार्य कार्य-कारण विधान, जो हमारे काल और कर्म के सिद्धांतों में अंतर्निहित है। ये ग्रहण करते और मजबूती से पकड़े रहते हैं। इन्हें क्रियान्वित करके, हमेशा भली-भांति नहीं, परंतु हमेशा अर्थगर्भित रूप में क्रियान्वित करके यूरोप ने ज्ञान के शाश्वत भंडार में अपना सच्चा योगदान दिया है। लेकिन उसके वादों और संप्रदायों पर विश्वास न करो—उनकी मनों भूलों में सत्य का कोई छोटा-सा दाना होता है।

शिष्य—फिर भी मुझे लगता है कि लीकी एकदम से गलत नहीं है।

गुरु—इसके विपरीत उसकी बात बिल्कुल सच्ची है, यदि हम समस्त प्रबोध को, उसके स्वभाव और उसके स्रोत की ओर ध्यान दिये बिना, बुद्धिवाद मान लें और यह कि यूरोप का नैतिक विकास वर्धनशील प्रबोध के द्वारा हुआ तो बात बिल्कुल सच है क्योंकि ज्ञान, इससे मेरा मतलब पाठशाला के अध्यापक की जानकारी के थैले या विश्वविद्यालय की पढ़ाई से नहीं बल्कि ज्ञान, सत्य के दर्शन और उसकी सिद्धि से है जो पाप का शाश्वत शत्रु और बधिक है, क्योंकि पाप अज्ञान से उसके पुत्र अहंकार का वंशज है। यह सच है कि यूरोप में तथाकथित ईसाइयत के युग पाप और अंधकार के काल थे। यूरोप ने ईसा को केवल इसीलिये स्वीकार किया था ताकि वह उन्हें फिर से सूली पर चढ़ा सके। उसने उन्हें अपनी शुद्ध, दयापूर्ण शिक्षा के साथ जिंदा ही गाड़ दिया था और उस जीवित कब्र के ऊपर उसने गिरजा नामक चीज का निर्माण किया। हम जिस चीज को ईसाइयत के नाम से जानते हैं वह रोमन भ्रष्टाचार, जर्मन बर्बरता और प्राचीन संस्कृति के टुकड़ों का एक अजीब-सा मिश्रण था जो उस हल्के-से प्रकाश से नहाया हुआ था जो सूली पर चढ़े और कब्र में दफन किये हुए ईसा की पवित्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भृकुटियों से ऊपर की ओर प्रवाहित होता था। उन्होंने पश्चिम के लिये जिस महान् आध्यात्मिक संचय को खोला था उसे ताला चाबी लगाकर उन व्यक्तियों के सिवा बाकी सबके लिये अप्राप्य रखा गया जिनकी आत्मा इतनी प्रकाशमान थी कि व्यापक अंधकार द्वारा हड़पी न जा सके। समस्त ज्ञान वर्जित था, इसलिये नहीं कि धर्म और विज्ञान के बीच कोई स्वाभाविक द्वंद्व था बल्कि इसलिये कि राजनीतिक पुरोहितवाद के रूढ़िवाद और फिर से उठते हुए ज्ञान में स्वाभाविक असमाधेय विरोध था। फिर से एशिया यूरोप के उद्धार के लिये आया और अरबों की उदार संस्कृति से विज्ञान ने अपनी मध्यकालीन रात्रि में पुनर्जन्म पाया और विज्ञान के उत्पीड़ित और संतप्त प्रकाश ने संघर्ष किया, यहांतक कि अंधकार को वश में कर लिया गया और घायल करके मौत के घाटतक पहुंचा दिया गया। बाहरी रूप से यूरोप का बौद्धिक इतिहास विज्ञान और गिरजावाद के बीच संघर्ष की कहानी रहा है, उस गिरजावाद की जो ईसाई धर्म को चक्कर में डालता था, जो अधरों पर तो ईसाई धर्म को स्वीकार करता था और हाथों से उसका गला घोंटने की कोशिश करता था। भीतर से वह देवों और असुरों, सत्त्व और तमस् के बीच का पुराना संघर्ष ही था। अब धर्म सात्त्विक है जिसमें प्रकाश की ओर एक स्वाभाविक अंतः-प्रेरणा होती है, वह तामसिक नहीं हो सकता, देवों के शत्रुओं के साथ उसका कोई संबंध नहीं हो सकता और अगर कोई चीज, जो अपने-आपको धर्म कहती है, प्रकाश को दबा देने की कोशिश करे तो तुम विश्वास रखो कि वह धर्म नहीं है बल्कि उसके नाम से छद्मवेश में आनेवाला कोई ढोंगी है। विचार करो वे कौन-से भाव थे जिनके तले, मानों झंडे तले, आधुनिक भाव ने मध्यकालीन दानव को धर पछाड़ा था। उन भावों की अंतिम लहर हम फरासीसी क्रांति में देखते हैं। हम क्रांति का आदर्श-वाक्य जानते हैं : स्वाधीनता, समता और भ्रातृभाव, वह जिस भाव का दावा करती थी पर प्राप्त नहीं कर पायी, उसे भी हम जानते हैं, वह है मानवता। स्वाधीनता में, ईसाई धर्म की व्यक्तिगत नैतिक स्वाधीनता और यूनानियों की सामाजिक स्वाधीनता का मेल; समानता में, समाज पर लागू की गयी ईसाइयत की गणतंत्रवादी आध्यात्मिक समानता, भ्रातृभाव में, वैश्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाई-चारे के लिये अभीप्सा—यही है ईसाइयत का विशेष और प्रभेदक विचार; मानवता है दया, कृपा और प्रेम का वह बौद्ध भाव जिसके बारे में यूरोप तबतक कुछ नहीं जानता था जबतक ईसाई धर्म ने उसे भूमध्य-सागर और उससे भी बढ़कर शुद्ध रूप में आयरलेंड में नहीं फुसफुसाया। इसके साथ मिला हुआ था भारत से प्राचीन गूढ़ ज्ञानवादियों और अफलातूनवादियों द्वारा लिया हुआ मनुष्य में दिव्यता का भाव। ये विचार आज भी यूरोप को गहराईतक प्रभावित करते हैं। इनमें से कइयों को अपना लेने या सह लेने के लिये वैज्ञानिक जड़वाद बाधित हुआ है और अभीतक वह उनमें से किसीको निर्मूल करने में सफल नहीं हुआ है। बुद्धिवाद ने इन भावों की रचना नहीं की, उसने उन्हें पाया और अपना लिया। बुद्धिवाद वह भाव है जो सभी मान्यताओं और मतों को अवलोकित तथ्यों से तर्क की कसौटी पर कसता है। वास्तव में वह बौद्धिक कोष है—अधिकतर निम्न या मात्र अर्ध-तर्कसंगत बौद्धिक कोष—जो अपने-आपको आत्मा के स्थान पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास करता है। हम इसे ही विज्ञान और वैज्ञानिक भाव कहते हैं। जहां कहीं वह शुद्ध शुष्क बुद्धि के प्रकाश में काम कर सका है, जो हमारी निम्न सत्ता के स्वार्थ, दर्प, आवेश, पक्षपात आदि के घावों से विकृत नहीं है, उसने अमूल्य परिणाम उपजाये हैं। अतः आवेशरहित अवलोकन, वर्गीकरण और तथ्यों के अन्योन्य-संबंध के बारे में हम किसी अविश्वास या लुढ़कने के भय के बिना विज्ञान का अनुसरण कर सकते हैं। लेकिन जब कभी वह, उसने मानव प्रकृति, मानव कार्रवाई और आध्यात्मिक विकास के बारे में जो कुछ देखा है, उसके आधार पर सिद्धांत बनाने लगता है तो विज्ञान हमेशा निम्नतर व्यक्तित्वों में हड़बड़ा कर गिर पड़ता है। जड़-भौतिक स्तर से ऊपर जड़-भौतिक पुरुष के विधान के अनुसार वस्तुओं को क्रमबद्ध करने के प्रयास में वह पानी पर चलने का, हवा में उतराने का प्रयास कर रहा है। वह ऐसी चीज कर रहा है जो तत्त्वतः अवैज्ञानिक है और जब वह इसी तरह से आत्मा की उच्चतर चीजों के साथ व्यवहार करना चाहता है तो यह गड़बड़ और भी अधिक बढ़ जाती है। तब उसके सिद्धांत ऐसे आश्चर्यजनक रूप से परस्पर-विरोधी हो जाते हैं कि हम यह देखकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विस्मय से ठिठक जाते हैं कि तथ्यों के प्रशिक्षित निरीक्षक को पक्षपात और पूर्वाग्रह जान-बूझकर कितना अधिक अंधा बना देते हैं। वहां उनका अनुसरण न करो। वे अंधे को रास्ता दिखानेवाले अंधे हैं जो रात के समय अंधी चिड़िया की तरह उन्हीं शाश्वत दीवारों के साथ टकराती रहती है और उस खुली हुई खिड़की को नहीं देख पाती जिसमें से वह निकल सकती है।

शिष्य—लेकिन आपने कहा है कि विकास एक शाश्वत सत्य है। विकास के आधार पर ही वैज्ञानिकों ने एक नैतिक विधि खोज निकाली है जो पुराने धार्मिक विधि-विधान का स्थान लेती है, व्यक्ति पर जाति का परम अधिकार।

गुरु—कौन-सी जाति? अंग्रेज, जर्मन या रूसी या फिर महान् ऐंग्लो सेक्सन जो, ऐसा लगता है कि जगत् को विरासत में पायेगी, भगवान् के अंग्रेज और अब हमें यह भी जोड़ देना पड़ेगा, भगवान् के अमरीकन या फिर सारी गौरांग जातियां? व्यक्ति को विकास के नेता और अध्यक्ष के रूप में किसके आगे सिर झुकाना चाहिये?

शिष्य—मेरा मतलब सारी मानवजाति से है। व्यक्ति क्षण-भंगुर है, वर्ग बना रहता है और जीनस (वंश) लगभग चिरस्थायी होता है। इस आधार पर व्यक्ति का अपने प्रति कर्तव्य, समाज के प्रति कर्तव्य, अपने देश के प्रति कर्तव्य, मानवजाति के प्रति कर्तव्य—ये सब सुंदरता से वर्गीकृत, व्यवस्थित, संतुलित आयोजन में आ जाते हैं। समस्त नैतिकता ऐतिहासिक, अनिवार्य विकास प्रतीत होती है। हमें केवल उसे पहचानना और पथ पर चलकर पगडंडी पर पीछे लौटने की जगह विकास को आगे बढ़ाना है।

गुरु—और रूढ़िवादी, विकृत तथा अन्य भयंकर नामों से पुकारा जाऊं? फिर भी मैं इस सममित और अनिवार्य आधार से अधिक संतुष्ट रहूंगा; क्योंकि अगर मुझे विश्वास हो कि मैं एक क्षण-भंगुर पशु हूं तो मैं भी अन्य क्षण-भंगुर पशुओं की तरह अपने एक दिन में ही भोग करना ज्यादा पसंद करूंगा और मुझे इसका कोई कारण नहीं दीखता कि मैं अपने-आपको भविष्य के बारे में क्यों परेशान करूं। विज्ञान भले अपने शब्दकोष के बड़े-से-बड़े जबड़ातोड़ शब्दों की मुझपर बौछार करे, मुझे नहीं लगता कि मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी बहुत परवाह करूंगा। और मेरा ख्याल है कि सर्वश्री रॉक फेलर और जे गोल्ड और करोड़ों अन्य लोग मेरे साथ हार्दिक रूप से सहमत होंगे। तुम कहते हो कि जीनस शाश्वत है ? लेकिन मेरा ख्याल है कि यह विज्ञान की शिक्षा नहीं है। जैसा कि मैं समझता हूं, मनुष्य केवल एक पशु है, एक विशेष प्रकार का बंदर जो अचानक किसी अबोधगम्य कारण से, अभीतक धरती पर जितने पशु उत्पन्न हुए हैं उनसे दस हजार मील आगे जा टपका है। अगर ऐसी बात है तो इसका कोई कारण नहीं कि कोई अन्य पशु, मान लो कि एक विशेष प्रकार की चींटी अचानक किसी अबोधगम्य कारण से विकसित होकर हमसे एक लाख मील आगे न जा टपके और मनुष्य को वैसा ही छोटा न बना दे जैसा मनुष्य ने विशालकाय पशुओं को बना दिया। या किसी और तरीके से मानवजाति का स्थान कोई और जाति अवश्य ले लेगी। अभी हाल में जिस विशालकाय पशु की अस्थियां विज्ञान ने खोद कर निकाली हैं, उसका यह जानकर क्या भला होगा कि एक ऐसी जाति विकसित हुई है जो उसकी अस्थियों को खोदकर निकाल सकती है और उसके अवशेषों पर बहुत-से जबड़ातोड़ शब्दों में शोध-प्रबंध लिख सकती है ? और अगर अपने काल में कोई वैज्ञानिक विशालकाय पशु यह संभावना उसके आगे रखता और उससे कहता कि तू विशालकाय पशु-जाति के हित को अपने आगे रख और इसके लिये अपने असामाजिक और स्वार्थपूर्ण तौर-तरीके छोड़ दे तो क्या उस अत्यधिक बुद्धिमान् विशालकाय पशु को यह आत्म-बलि देने के लिये काफी प्रयोजन मालूम होता ? इन मामलों में उसका **लाभ** कहां आता है ?

शिष्य—यह ठीक-ठीक व्यक्तिगत लाभ का प्रश्न नहीं है। यह अनिवार्य विधान का प्रश्न है। आप अपने-आपको अनिवार्य विधान के विरोध में रख रहे होंगे।

गुरु—सचमुच ? इसकी मुझे क्या परवाह है ? अगर अनिवार्य विधान का विरोध मुझे कोई हानि नहीं पहुंचाता बल्कि मेरे जीवन-काल में संतोष और समृद्धि लाता है और यदि मैं मिट्टी ही हूं तो मेरी मृत्यु के बाद कोई चीज मुझे हानि नहीं पहुंचा सकती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिष्य—व्यक्ति अनैतिक हो सकता है लेकिन नैतिकता अनिवार्य रूप से प्रगति करती है।

गुरु—सचमुच ? मुझे नहीं लगता कि यूरोप की वर्तमान अवस्था इस धारणा के अनुकूल है। हमने सोचा था न कि विज्ञान सुसंस्कृत राष्ट्रों को धरती पर प्रभुत्व प्रदान करेगा और उन्हींका बोलबाला होगा। और हम उन्हें जनसंख्या में बिल्कुल स्थायी या पीछे हटता हुआ पाते हैं जो बल और साहस में विकृत होते दीखते हैं; वे अपने सच्चे प्रतापमय गुणों को खोते जाते हैं। हमने सोचा था कि नगरों की लूट-पाट, हत्याकांड, उत्पीड़न और घृणित बलात्कार को संस्कृति ने युद्ध के उपायों से मिटा दिया है। यूरोप के प्रबुद्ध लोग चीन में प्रवेश करते हैं और वहां गंदगी, रक्त और पीड़ा के शीत आनंद का गुप्त अनुष्ठान होता है जिससे अधिक-से-अधिक घृणित बर्बरों के सिवा सभी जुगुप्सा से कतरायेंगे। क्या यही अनिवार्य नैतिक प्रगति है या रेड इंडियनों की संशोधित बर्बरता है ? हमने सोचा था कि बढ़ती हुई शिक्षा और बौद्धिकता के साथ बढ़ती हुई शुद्धता या कम-से-कम सुरुचि तो आनी ही चाहिये। अमरीका के एक बड़े नगर में पुलिस वेश्यालयों की छान-बीन करती है और अपने जाल में सैंकड़ों सुशिक्षित, सुसंस्कृत, रमणीय और गौरवपूर्ण नारियों को इकट्ठा करती है जो अपने साथ अपनी शिक्षा, सौंदर्य और संस्कृति को वहां ले गयी थीं। क्या यह अनिवार्य नैतिक प्रगति है या मेसालिना[1] के दिन लौट रहे हैं ? ये इक्की-दुक्की घटनाएं नहीं हैं। इनके अनंतगुने उदाहरण मिल सकते हैं। यूरोप प्राचीन रोम के पदचिह्नों पर चल रहा है।

शिष्य—ये अधोगति के काल हैं। विकास सीधी रेखा में नहीं गोलाई में आगे बढ़ता है।

गुरु—और ख्याल रखो ये अधोगतियां अत्यंत अनिवार्य हो जाती हैं जब जगत् धर्म को छोड़कर दार्शनिक जड़वाद में डुबकी लगाता है। ये तत्काल

[1] प्राचीन रोम की एक रानी जो अपने लोभ और कामुकता के लिये कुख्यात थी। उसका पति ये बातें न जानता था। पति की अनुपस्थिति में इसने खुले आम अपने प्रेमी के साथ शादी कर ली। बाद में पहले पति ने इसकी हत्या करवा डाली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं आतीं। जब प्राचीन धर्म की आत्मा शरीर की मृत्यु के बाद अभी बची होती है तो ऐसा लगता है कि देश बल और शक्ति में आगे बढ़ रहे हैं लेकिन शीघ्र ही मरणोपरांत की शक्ति समाप्त हो जाती है। सभी प्राचीन देश इसलिये समाप्त हो गये क्योंकि उन्होंने बुद्धि के गर्व में आकर अपने धर्म को छोड़ दिया लेकिन भारत और चीन अभीतक जीवित हैं। ऐसी कौन-सी शक्ति थी जिसने पराजित भारत को लौह मुष्टि और लौह खुरों से कुचले जाने के बाद भी अमर रूप से बचाये रखा, जिसने हमेशा प्रतिरोध करने के लिये, तात्कालिक विजेता को अंततः अपने भीमकाय चरणों के नीचे मसलकर, फिर से अपने शक्तिशाली शीर्ष को तारोंतक उठा सकने के लिये अमर रूप से बनाये रखा। इसका कारण यह है कि उसने धर्म की पकड़ कभी नहीं छोड़ी, आत्मा पर श्रद्धा को कभी नहीं खोया। इसलिये श्रीकृष्ण का वचन हमेशा सत्य रहता है, इसलिये आद्या शक्ति, महान् चंडी जब-जब लोग उसे पुकारें तो हमेशा उतरती हैं और असुरों को टुकड़े-टुकड़े कर डालती हैं। समय बदलता है और पूर्व के असुरों की जगह एक नये प्रकार की बाहरी शक्ति भारत पर शासन करती है। लेकिन दुर्भाग्य होगा भारत का यदि वह अपने शाश्वत धर्म से अलग हो जाये। तब प्राचीन देशों की नियति उसे भी पकड़ लेगी। उसका नाम राष्ट्रों की सूची में से निकाल दिया जायेगा और उसके लोग धरती पर एक स्मृति या कहानी बनकर रह जायेंगे। उसे अपनी आत्मा के प्रति, अपनी आत्मशक्ति के प्रति सच्चा रहना चाहिये, आत्मा की शाश्वत शक्ति उसे फिर से बलवान् बनायेगी और ऊंचा उठायेगी। आधुनिक विज्ञान ने अपने-आपको गहराई के साथ दो मूलभूत भ्रांतियों में फंसा लिया है, उसने एक कार्य-कारण विधान बना लिया है जो यूनानी, हिंदू या अरब नियतिवाद से भी अधिक दृढ़ और कठोर है। उस पूर्व-नियति में व्यस्त होकर विज्ञान यह मानने लग गया है कि मानव इच्छा केवल एक सेवक है, नहीं, शाश्वत निर्जीव शक्तियों की रचना मात्र है। यह विज्ञान की भूल है और अगर वह अपनी दृष्टि को विस्तृत न करे तो अधिक समय बीतने से पहले, बड़ी आसानी के साथ उसे बड़े भद्दे ढंग से अपनी भूल पर विश्वास हो जायेगा। इच्छा-शक्ति किसी भी विधान, नियति या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्ति से अधिक बलवान् है। इच्छा-शक्ति शाश्वत, सर्वशक्तिमान् है। उसने कार्य-कारण नियम बनाया है और वह उसपर शासन करती है। उसीने जड़-तत्व के नियम बनाये हैं और वह उन्हें लांघ भी सकती है। वह स्वयं वे सब शक्तियां हैं जो उसपर शासन करती और बांधती प्रतीत होती हैं। मानव इच्छा-शक्ति के लिये ऐसी कोई बाध्यता नहीं है कि उसे प्रगति की ओर विकसित होना ही होगा। अगर वह पीछे की ओर लौटना चाहे तो वह जायेगी और सारा संसार उसके साथ लड़खड़ाता, चीखता-चिल्लाता बर्बरता और अव्यवस्था में जा गिरेगा; और अगर वह आगे बढ़ना चाहे तो कोई शक्ति उसे रोक नहीं सकती। दूसरी भूल जो विज्ञान ने की है वह यह है कि वह ईसाइयत से उधार लेता है, वह यह कि अपने-आपसे स्पष्ट रूप से भिन्न सत्ताओं की ओर क्रिया और भाव को निर्देशित किया जा सकता है; सभी क्रियाएं और भाव आत्मा के लिये, आत्मा के अंदर हैं। लेकिन यदि विज्ञान मनुष्यों को यह सिखाये कि वे अपने-आपको स्पष्ट रूप से पृथक् और स्पष्टतः शारीरिक सत्ताएं मानें जिनका औरों के साथ भौतिक संपर्क और इंद्रियों के संचार के सिवा और कोई संबंध नहीं हो सकता, तो यह स्पष्ट है कि इस मान्यता से अभिभूत मानव-इच्छा अनिवार्य रूप से अपनी क्रियाओं और अपने विचारों को इसके अनुकूल गढ़ेगी और विकास की अधिक धुंधली नैतिक सामान्यताओं के ऊपर से गुजर जायेगी। और अंततः, इसका अर्थ होता है, अत्यधिक स्वार्थपरता, बढ़ती हुई विषयासक्ति, शक्ति, धन, सुख-सुविधा और अधिकार-भाव की लोलुपता, देवों के सभी अस्त्र-शस्त्र अपने सौ हाथों में लिये शत-भुज राक्षस की एक दानवीय तथा अहंकारमय नृशंसता। अगर मनुष्य अपने-आपको पशु माने तो वह पशु की तरह व्यवहार करेगा और पाशविक प्रेरणा को ही अपने पथ-प्रदर्शक के रूप में बढ़ाएगा। यूरोप ज्यादा तेजी से इस स्थितितक नहीं पहुंच रहा है इसका कारण यह है कि ज्ञान, धर्म, सत्य-प्रबोध, वह भले ही लंगड़ा और घायल क्यों न हो फिर भी मरने या समाप्त होने से आग्रह के साथ इंकार करता है; वह मानव इच्छा को यह मानने न देगा कि वह स्नायु, मांस, शरीर, पशु और क्षण-भंगुर चीज से बढ़कर कुछ नहीं है। धर्म बना रहता है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

जड़वादी विज्ञान के पीछा करने से बचने के लिये सैंकड़ों रूप धारण करता है और शाश्वत जननी को पुकारता है कि वह नीचे आकर उसे बचाये और निश्चय ही शीघ्र ही वे आयेंगी। नैतिकता के वे सभी आधार जो आधारभूत भगवान् और मनुष्य की अनंत प्रकृतितक नहीं जाते, भूल-भरे और क्षणिक होने चाहियें। धर्म और पुण्य की महानताएं वानर और बर्बर की सहज-वृत्तियों और रीति-रिवाजों से पैदा नहीं हुईं। वे प्रच्छन्न देव की चिरस्थायी ज्योतियां हैं जो अपने-आपको सदा अधिक स्पष्ट रेखाओं में, अधिकाधिक सुंदर इंद्रधनुषी चमक की बाढ़ में प्रकट करती हैं जिनकी परिसमाप्ति परम सिद्धि की शुद्ध शुभ्र ज्योति में होती है; जब सभी प्राणी हमारी आत्मा बन जाएं और हमारी आत्मा अपने निजी ऐक्य को उपलब्ध कर ले।

यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ॥
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥

उपनिषद् इस ऐक्य को प्रतिष्ठित करके, जो एक ही साथ समस्त धर्म और नैतिकता का औचित्य और परिसमाप्ति है, जिसमें धर्म और नैतिकता इन दोनों से उच्चतर वस्तु में गायब हो जाते हैं, आगे चलकर इस नूतन प्रकाश में शाश्वत को समझने और उसका वर्णन करने में लग जाता है। चौथे मंत्र में 'उस' का वर्णन केवल महान् शक्ति के रूप में किया गया है जो इस सारे विश्व का सृजन करती और उसे घेरे रहती है। यहां 'उस' का वर्णन उस महान् ऐक्य के रूप में होगा जो अपनी अनभिव्यक्ति में समस्त अस्तित्व का उत्स है और अपनी अभिव्यक्ति में इन अनगिनत लोकों पर शासन करता है।

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम् ।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ।

यह वही है जो चारों ओर घूमा, वह दीप्ति, अशरीरी, अक्षत, स्नायु-रहित, शुद्ध, पाप से अछूता है; वह कवि, मनीषी, स्वयंभू है जो सब में व्याप्त है। वह अनंत काल से सभी वस्तुओं को पूरी तरह व्यवस्थित रखता है।

मंत्र पहले ली गयी स्थिति को लेकर शुरू होता है जिसमें कहा गया था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि ईश सभी चीजों को उस तरह घेरे हुए है जैसे लबादा पहननेवाले को घेरे रहता है, जो गति के आभास से सभी वस्तुओं का सृजन करता है, जो सचमुच एक आभास ही है, शाश्वत की वास्तविकता नहीं। "यह वही है जो चारों ओर घूमा।" दूसरे शब्दों में, यह तो गति का भंवर है जिसे अभिव्यक्त शाश्वत ने क्रियान्वित किया है और लोकों का सृजन किया। उसने अपने अंदर से प्रज्ञा के रूप में शाश्वत बुद्धि को प्रवाहित किया और हर चीज का सृजन करते हुए उसमें प्रवेश किया और चारों ओर से घेर भी लिया। लेकिन वह है कौन ? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए श्रुति तुरंत नपुंसक लिंग की ओर मुड़ती है क्योंकि उसे प्रकाशमान परब्रह्म की ओर लौटना होगा जो लिंग या विशेषणों के भाव से परे है। वास्तव में वह, लोकों का स्रष्टा ही वह दीप्ति उस अज्ञेय की प्रकाशमय छाया है जिसके बारे में हम केवल नेति नेति ही कह सकते हैं। उसका शरीर नहीं है, उसका रूप नहीं है, रूप उसके द्वारा निर्मित होता है अतः उसका यह पार्श्व है। उसमें व्रण या अपूर्णताएं नहीं हैं। वह दोष-रहित और पूर्ण ज्योति है। उसमें स्नायुएं या मांसपेशियां नहीं हैं। वह जड़-तत्त्व का पार्श्व है और सृष्टि उससे भौतिक साधनों या शारीरिक बल और कौशल से नहीं बल्कि उसकी शक्ति या इच्छा के प्रवाह मात्र से पैदा होती है। वह केवल जड़-तत्त्व का वह पार्श्व ही नहीं है बल्कि मन का वह पार्श्व भी है क्योंकि वह शुद्ध है और पाप से अछूता है। मन ही द्वित्त पैदा करनेवाली कामना द्वारा अशुद्धि और अशुभ पैदा करता है; लेकिन शाश्वत कामना के आधीन नहीं है। अशुभ या पाप है क्या ? यह सीधे रूप में अधिक सूक्ष्म की तुलना में अधिक स्थूल को, रजस् की अपेक्षा तमस् को और सत्त्व की अपेक्षा रजस् को पसंद करना है। अतः वह केवल गुणों के क्षेत्र में काम करता है और शाश्वत चूंकि गुणों से ऊपर है अतः उसे पाप छू भी नहीं सकता। उस प्रभु का, जो सृजन करता और शासन करता है, शुद्ध आलोकमय परब्रह्म के साथ तादात्म्य स्थापित करके, जो न तो अधिष्ठाता है न अधीन, श्रुति प्रभु का वर्णन सर्व-प्राज्ञ शासक के रूप में करती है; वह कवि और मनीषी है जो अपनी आलोकित प्रेरणाओं द्वारा हिरण्यगर्भ बनकर सृजन करता है, वह सारे जगत् का अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनंत मन में सृजन करता है। वह मनीषी, प्राज्ञ, बुद्धिमान् है जिसकी संतुलित चेतना के तात्त्विक द्रव्य में से समस्त सत्ता और उसके विधान अपने सतत बल और सत्ता को खींचते और अपने कार्यों की ओर प्रवाहित करते हैं और वह वह भी है जो प्रवाहित होता है। वह विराट् है, वह व्याप्त आत्मा है जो सभी वस्तुओं के अंदर प्रवेश करती और उनको घेरे रहती है। इन सभी रूपों में वह स्वयंभू है क्योंकि वह प्राज्ञ है जो अपने ही बल-बूते पर आलोकमय परब्रह्म से आता है और स्वयं परब्रह्म है। वह हिरण्यगर्भ है जो अपने ही बल-बूते पर प्राज्ञ से निकलता है और स्वयं प्राज्ञ है। वह विराट् है जो अपने ही बल-बूते पर हिरण्यगर्भ से उत्पन्न होता है और स्वयं हिरण्यगर्भ है। वह आत्मा द्वारा आत्मा से उत्पन्न आत्मा है। दूसरे शब्दों में कहें तो ये सब एक ही आत्मा के विभिन्न पक्षों में नाम हैं या अनंत वैश्व चेतना की अलग-अलग स्थितियां हैं। तब फिर प्रभु को परब्रह्म से भिन्न पुल्लिंग रूप में क्यों रखा जाता है ? क्योंकि यहां उन्हें महान् शासक और व्यवस्थापक के रूप में देखा जाता है, उस रूप में नहीं जिससे सभी वस्तुएं प्रवाहित होती हैं। वस्तुओं के स्रोत, आधार और धारक के रूप में वह प्राज्ञ, हिरण्यगर्भ और विराट् की त्रयी है जिसमें नर और नारी, आत्मा और जड़-पदार्थ, आत्मा और उसकी शक्ति अभीतक एक और अविभक्त हैं, इसलिये सबसे अच्छा उपाय यह है कि उसके लिये नपुंसकलिंग का उपयोग किया जाये। लेकिन जब हम उसे शासक और व्यवस्थापक के रूप में देखते हैं, प्रपंचों के सृष्ट जगत् के साथ व्यवहार करनेवाले अभिव्यक्त ब्रह्म के रूप में देखते हैं तो विभाजन हो चुका होता है, शक्ति अपने कामों में लग चुकी होती है और महान् नर त्रित्व, ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर, उस शक्ति के बल से भरे हुए अनगिनत लोकों और उनके अंदर रहनेवाले असंख्य रूपों का सृजन, पालन और विनाश करते रहते हैं। ये दोनों त्रिक सचमुच एक ही त्रयी हैं, केवल दृष्टिकोण भेद पैदा करता है। इस दृष्टिकोण से श्रुति प्रभु का वर्णन करती है। वह कवि, महान् द्रष्टा और शब्द के सच्चे अर्थों में कवि है। कवि वह है जो वस्तुओं को शुद्ध अंतर्भास द्वारा आलोकमय और स्पष्ट रूप से जान लेता है और जिसके भविष्य-कथन अपने ही उफान से सृजन बन जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्-ब्रह्म-हिरण्यगर्भ के रूप में परमात्मा में कवित्व की यह क्षमता है—जिसे मनुष्य सृजन-शक्ति कहते हैं और इसीलिये उसकी शक्ति को सरस्वती कहा जाता है। फिर ईश को मनीषी या विचारक भी कहा जाता है। ईश का विचार ही इस समस्त सृष्टि का आधार या निचला स्तर है। इसीलिये निर्जीव पदार्थ निर्दोष रूप से रूपायित होता है, वनस्पति बिना भूल के बढ़ती है, पशु अपनी मुख्य आवश्यकताओं की ओर अचूक सहज-वृत्ति से क्रिया करता है, तारा अपने मार्ग पर चलता है और पर्वत अपने आधार के साथ जड़ा रहता है। यदि अनिवार्य प्रज्ञा अपने स्थायित्व और संतुलन की विशेषताओं के साथ सभी चीजों के नीचे स्थित न होती और उन्हें अपने स्थान, क्रिया और स्वभाव के साथ न रखती तो महान् कवि के सारे सृजन अपने संबंधों में असंगत होते, एक-दूसरे के साथ टकराते और संघर्ष करते, यहांतक कि एक-दूसरे को नष्ट कर देते। यह ध्यान रखना चाहिये कि यह प्रज्ञा वस्तुओं की अपनी प्रकृति है, यह कोई आयोजित आविष्कार, अनुबोध, समायोजन और परिवर्तन की चीज न होकर आरंभ से ही अपरिवर्तनशील और अस्तित्व का अनिवार्य आधार है। वह चाहे जो रूप ले, चाहे गुरुत्वाकर्षण, आकर्षण, विकर्षण का या विकास का, वह एक शाश्वत उपस्थिति और जगत् का निजी स्वभाव—'*प्रज्ञानं ब्रह्म*' है। दिव्य नैसर्गिक विचार की यह शक्ति चित्-महादेव-प्राज्ञ (तमस्, स्थाणु) रूप में परमात्मा का एक गुण है। उसका दूसरा गुण है विनाश का, क्योंकि वह अमरता की आत्मा है जिसकी परिपूर्ति है पूर्ण अप्रतिबद्ध विचार की गहरी निद्रा (चित्) और अगर शाश्वत में कवि की क्रियाशीलता न होती, यदि उसके अंदर मनीषी कवि को मिटा देता तो आभासों का यह समस्त धबकता हुआ जगत् चुप हो जाता और निष्क्रियता द्वारा अनिर्धारित, घनीभूत सत्ता के गर्भ में लौट जाता। और फिर वह परिभू है, वह जिसका अस्तित्व चारों ओर है, सत्ता का महान् व्यापक आनंद। क्योंकि कवि के कार्य, भले मनीषी उन्हें सहारा दे, कभी न टिक पाते यदि सत्ता का आनंद सभी सृष्ट वस्तुओं में स्वर्गिक मधु की धारा की तरह न उंडेला जाता और प्राण तथा सत्ता को अपनी प्रथम अनिवार्य आवश्यकता न बना देता। यह जर्मन दार्शनिक की जिजीविषा है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो अन्य सभी यूरोपीय लोगों की तरह सत्य के केवल एक अंग को ही देख पाया, दिव्य समग्र के रूप में नहीं; इसी कारण उसके विचारों में इतनी निराशाजनक ध्वनि है। यह आनंद सभी चीजों को सहारा देता और शाश्वत बनाता है, क्योंकि यह अपरिवर्तनशील और शाश्वत परमात्मा है। सांत रूप में प्रकट होकर जीवित रहने की इच्छा को उसे अनंत जीवन में जीने की इच्छा में विस्तृत करना चाहिये ताकि वह अपने-आपको परिपूर्ण कर सके और अपनी गहनतम और तात्त्विक प्रकृति को फिर से पा सके। पहले हम व्यक्ति के रूप में जीने की इच्छा करते हैं फिर परिवार में जीने की, फिर कुल या वंश में, फिर जाति या राष्ट्र में जीने की, फिर मानवजाति में, फिर विश्व में जीने की, फिर भगवान् में जीने और फिर शाश्वत में जीने की। यह मानवजाति का स्वाभाविक विकास है और उसका मार्ग स्वयं आत्मा के स्वभाव द्वारा निर्धारित होता है। विज्ञान या अपरा विद्या हमारे लिये विकास के मार्ग और उसके उपनियमों का आलेखन करती है परंतु केवल परा विद्या ही उसे हमारे लिये संस्थापित करती, हमें उसका कारण, मूल, विधान और परिपूर्ति प्रदान करती है। यह आनंद विष्णु-विराट् की सामर्थ्य है जो आनंद है। सभी सत्ताओं के अंदर अस्तित्व मात्र से ईश उनका पोषण और उनकी रक्षा करता है। याद रखो कि भले तुम अपने दुःख-दैन्य के समय सहायता के लिये स्वर्ग को टेर लगाओ फिर भी नील गगन तुम्हारी पुकार न सुनेगा। तुम्हारे बाहर से कोई चीज तुम्हारी रक्षा करने नहीं आती बल्कि वह जो तुम्हारे अंदर आसीन है वही रक्षा कर सकता है। हे मानव, क्या तू नर पिशाच, राक्षस, भूत या शत्रु से पीड़ित है? अपने अंदर उसकी महान् शक्ति भवानी महिषमर्दिनी को खोज और वे विजयी असुर को कुचलने के लिये खड्ग और त्रिशूल से लैस होकर प्रकट होंगी। यही विधान है और यही है वेद-वाक्य। कवि, मनीषी और विभु ये तीनों स्वयंभू हैं जो अपने ही द्वारा अपने अंदर से और अपने अंदर जन्म लेता है। देवता एक-दूसरे से भिन्न नहीं, वे सब एक ही देव हैं, कोई दूसरा नहीं है। यही वह है जिसने शाश्वत काल से सभी चीजों को पूरी तरह व्यवस्थित किया है, याथातथ्यतः, हर एक को ठीक उसी तरह जैसा अपने स्वभाव के कारण होना चाहिये, क्योंकि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी चीज का स्वभाव ही उसका मूल, उसका विधान, उसकी नियति और उसका अंत है और अपने स्वभाव के साथ सामंजस्य ही उसकी पूर्णता है। यह समस्त महान् विश्व, जिसमें विभिन्न वस्तुएं अपने विभिन्न स्वभावों के अनुसार सुसंगत होती हैं और पूर्ण ऐक्य में घुल-मिल जाती हैं, उसने अनेकविध पक्षोंवाले एकमात्र विधान के अद्‌भुत राज्य को '*व्यदधात्*' विभिन्न रूपों में व्यवस्थित किया है। उसने हर चीज को उसके अपने स्थान पर बैठाया है जहां वह अपने ही घेरे में और अपने विजयी और कठोर स्वभाव के अनुसार कार्य में लगी हुई है। वह यह सब शाश्वत काल से करता आया है, काल की किसी विशेष तारीख या ऋतु में नहीं शाश्वत रूप से, काल से भी पहले से करता आया है। दिव्य विधान अचानक अस्तित्व में नहीं आ गया बल्कि वह था, है और हमेशा रहेगा। यह सच है कि वस्तुओं के रूप काल में बदलते रहते हैं लेकिन उनकी प्रकृति के विधान का मूल शाश्वत है। आज तुम जो काम करते हो उसमें तुम उस विधान का अनुसरण करते हो जो समस्त शाश्वतता से चला आ रहा है। उसे अनुभव करने की कोशिश करो और तुम देखोगे कि देश और काल अनंतता में लुप्त होते जा रहे हैं। तुम शाश्वत जलों का गर्जन सुनोगे और जलों के ऊपर सदा चिल्लाते हुए 'तपस् तपस्' की आवाज सुनोगे और अपने-आपको एक अपरिवर्तनशील, शाश्वत भगवान् की उपस्थिति में अनुभव करोगे। माया और उसके कार्यों का कहीं अंत नहीं होता क्योंकि उनका कहीं आरंभ नहीं था। परंतु मनुष्य की आत्मा माया और उसके कार्यों से ऊपर उठ सकती है और उससे स्वतंत्र, उसके ऊपर खड़ी उसका निरीक्षण उस मालिक की तरह कर सकती है जिसकी प्रसन्नता के लिये वह शाश्वत परिश्रम करती है। क्योंकि सचमुच मनुष्य भगवान् है और उसने अपनी ही इच्छा से अपने-आपको मायाविनी के काल्पनिक जाल में बांध रखा है; उसी तरह अपनी इच्छा से ही वह बंधनों को तोड़कर उसपर शासन कर सकता है। माया के साथ आत्मा का खेल प्रेमी और प्रेमिका के खेल जैसा है जिसमें एक दूसरे का दास होने का स्वांग भरता है, उसकी कृपा में आनंद लेता है या उसके क्रुद्ध होने पर उसके चरणों में रोता है और फिर स्वामी और अधिपति के रूप में अपना उचित स्थान ले लेता है। हां, जब मरजी हो तो उसकी ओर से किसी अधिक सुंदर और अद्‌भुत मुखड़े की ओर मुड़ जाता है। अभी कृष्ण नीलांबर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और चमकदार आभूषण पहने होता है और अभी राधा पीतांबर और हरित वन को सुगंधित मालाओं और चमकदार मयूर पंख में दिखायी देती है क्योंकि कृष्ण ही राधा हैं और राधा ही कृष्ण हैं। वे केवल भेद की लीला कर रहे हैं क्योंकि वास्तविक सत्य तो यह है कि राधा और कृष्ण सदा एक रहे हैं और शाश्वत कालतक एक रहेंगे।

शिष्य—तो ऐसा लगता है कि उपनिषद् का पहला भाग यहांपर समाप्त हो गया और अब कुछ धुंधले और असंबद्ध वचन आ रहे हैं।

गुरु—उपनिषद् के वचन कभी असंबद्ध नहीं होते लेकिन बहुधा उनका संबंध ऊपरी तल के नीचे होता है। सुस्पष्ट वक्तव्य या व्याकरण-मूलक वाक्य-विन्यास द्वारा उनकी खुले आम घोषणा नहीं की जाती। उपनिषद् ने कहा है कि शाश्वत ने विश्व की सभी वस्तुओं को शाश्वत काल से पूर्णतया व्यवस्थित कर रखा है। अतः माया शाश्वत है, अविद्या शाश्वत है। इसपर झट यह प्रश्न किया जायेगा कि विद्या और अविद्या के बारे में, शाश्वत और क्षणभंगुर के बारे में क्या? अस्ति और प्रतीति के बारे में क्या? अगर अविद्या शाश्वत है तो चलो हम उसके विस्मय और उसकी महानताओं में रस लें और उसके बंधनों से छूटने की कभी कोशिश न करें। लेकिन अगर केवल विद्या ही शाश्वत है और अविद्या एक अभिशाप और बंधन है तो हमें उससे क्या मतलब, जितनी जल्दी हो सके हम उसे घृणा से झाड़ फेंकें? ये जड़वादी और नास्तिक, चार्वाक और शून्यवादी की पराकाष्ठाएं हैं लेकिन वेदांत इनमें से किसीको स्वीकार नहीं करता। असीम ब्रह्म है लेकिन ससीम के लिये भी हम यह नहीं कह सकते कि वह नहीं है और ससीम ब्रह्म को ही हम माया कहते हैं। ब्रह्म शाश्वत है अतः माया भी शाश्वत है; लेकिन ससीम ब्रह्म स्पष्टतः असीम पर आश्रित है और उसके अंदर निवास करने की जगह और कहीं वह रह ही नहीं सकता। जैसे किसी सिक्के के चित और पट होते हैं उसी तरह असीम और ससीम हैं और ज्ञान की अभीप्सा करनेवाले को दोनों को जानना चाहिये, केवल एक को नहीं अन्यथा वह शाश्वत की सच्ची प्रकृति के बारे में वस्तुतः कुछ न जान पायेगा।

शिष्य—अद्वैतवाद के अनुयायी इसे नितांत नास्तिकता कहेंगे। माया भ्रांति और अवास्तविकता है और ज्ञान उसकी हत्या करता है, अतः वह शाश्वत नहीं हो सकती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरु—तुम माया का हनन नहीं कर सकते। तुम केवल मोह, माया की भ्रांति का हनन कर सकते हो। उसे तो तुम केवल जीतकर अपने पैरों तले रख सकते हो। तुम्हें याद है कि शंकर ने उभय-भारती को हराकर उसके जीवित शरीर को ध्यान के लिये अपना आसन बनाया था। यह योगी का प्रतीक और शाश्वत की दोहरी अद्‌भुत माया है। उसने माया को जीतकर अपने आधीन रख लिया, फिर भी वह शाश्वत के साथ एक होकर और माया के बारे में अचेत होकर भी आसन उसीपर जमाता है। अगर ऐसा न होता तो किसी मनुष्य के बुद्ध बनकर निर्वाण में जाते ही सारा आयासी जगत् समाप्त हो जाता क्योंकि वह और शाश्वत एक हैं। इसलिये अगर परब्रह्म विद्या या अविद्यातक ही सीमित होता तो स्पष्टतः विद्या के आरंभ के साथ-ही-साथ अविद्या समाप्त हो जाती और एक जीवात्मा की मुक्ति सबके लिये जगत् का अंत ले आती। वैसे ही जैसे ईसाई मानते हैं कि ईसा के सलीब पर चढ़ने से सारे जगत् का निस्तार हो गया। लेकिन बात ऐसी नहीं है। ब्रह्म की शक्ति की सामर्थ्य दोहरी और युगपत् है। वह विद्या और अविद्या दोनों का उपयोग एक ही समय कर सकता है। वह सदा-सर्वदा अपनी परात्पर प्रकृति का अनुभव करता है और साथ-ही-साथ अपनी कल्पना के इस अद्‌भुत जगत् को कार्यान्वित करता है। वह एक महाकवि की तरह है जो अपनी ही सृष्टि के एक जगत् को प्रतिबिंबित करता है जिसे उसने स्वयं अपने में से और अपने अंदर रचा है और फिर भी यह जानता है कि वह उससे भिन्न और स्वतंत्र है। इसी कारण किसी एक जीवात्मा की मुक्ति जगत् का अंत नहीं कर देती। स्वयं शंकर भी इससे भिन्न कुछ नहीं कहते क्योंकि वे यह प्रतिपादित नहीं करते कि माया अवास्तविक है। वे कहते हैं कि यह कोई रहस्यमय वस्तु है जिसके लिये तुम यह नहीं कह सकते कि यह है और यह भी नहीं कह सकते कि वह नहीं है। असीम, परम, अज्ञेय ब्रह्म की इस रहस्यमय शक्ति की ससीम मन बस यही व्याख्या कर सकता है। अपने रूपों में माया अवास्तविक और क्षणिक हो सकती है लेकिन तत्त्वतः माया शाश्वत की शक्ति है और उसे भी शाश्वत होना चाहिये—पुरा काल से और सदा के लिये।[1]

[1] ईशावास्योपनिषद् का यह लेख श्रीअरविंद के बहुत पुराने लेखों में मिला था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

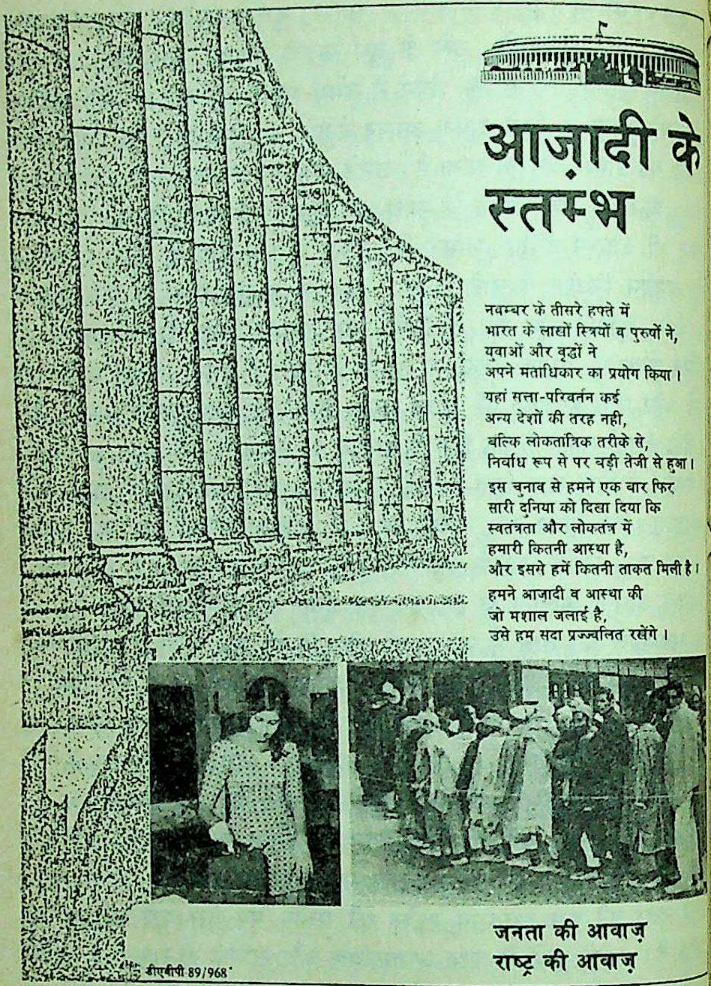

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"The constant remembrance of the Divine is indispensable for transformation."

— THE MOTHER

With Best Wishes from:

MRS. KOYAL DEORAH CHARITABLE TRUST

28, VARSHA, 69/B, NEPEANSEA ROAD

BOMBAY - 4000 006

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Registered with the Registrar of Newspapers for India
No. R. N. 18135/70

REGD. No. M. 8731

Statement about ownership and other particulars about Newspaper (Agnishikha) to be published in the first issue every year after the last day of February.

FORM IV (See Rule 8)

1. Place of Publication	Sri Aurobindo Ashram, Pondicherry - 605 002
2. Periodicity of its publication	Monthly
3. Printer's Name	Amiyo Ranjan Ganguli
Nationality	Indian
Address	Sri Aurobindo Ashram Press, Pondicherry-605 002
4. Publisher's Name	Kishorilal Dhandhania,
Nationality	Indian
Address	Sri Aurobindo Society, Pondicherry-605 002
5. Editor's Name	Ravindra, Anuben
Nationality	Indian
Address	Sri Aurobindo Ashram, Pondicherry-605 002
6. Names and addresses of individuals who own the newspaper and partners or shareholders holding more than one per cent of the total capital	Sri Aurobindo Society, Pondicherry-605 002

I, Kishorilal Dhandhania *hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.*

(Sd) Kishorilal Dhandhania,
Signature of Publisher

March 1990

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

42081
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

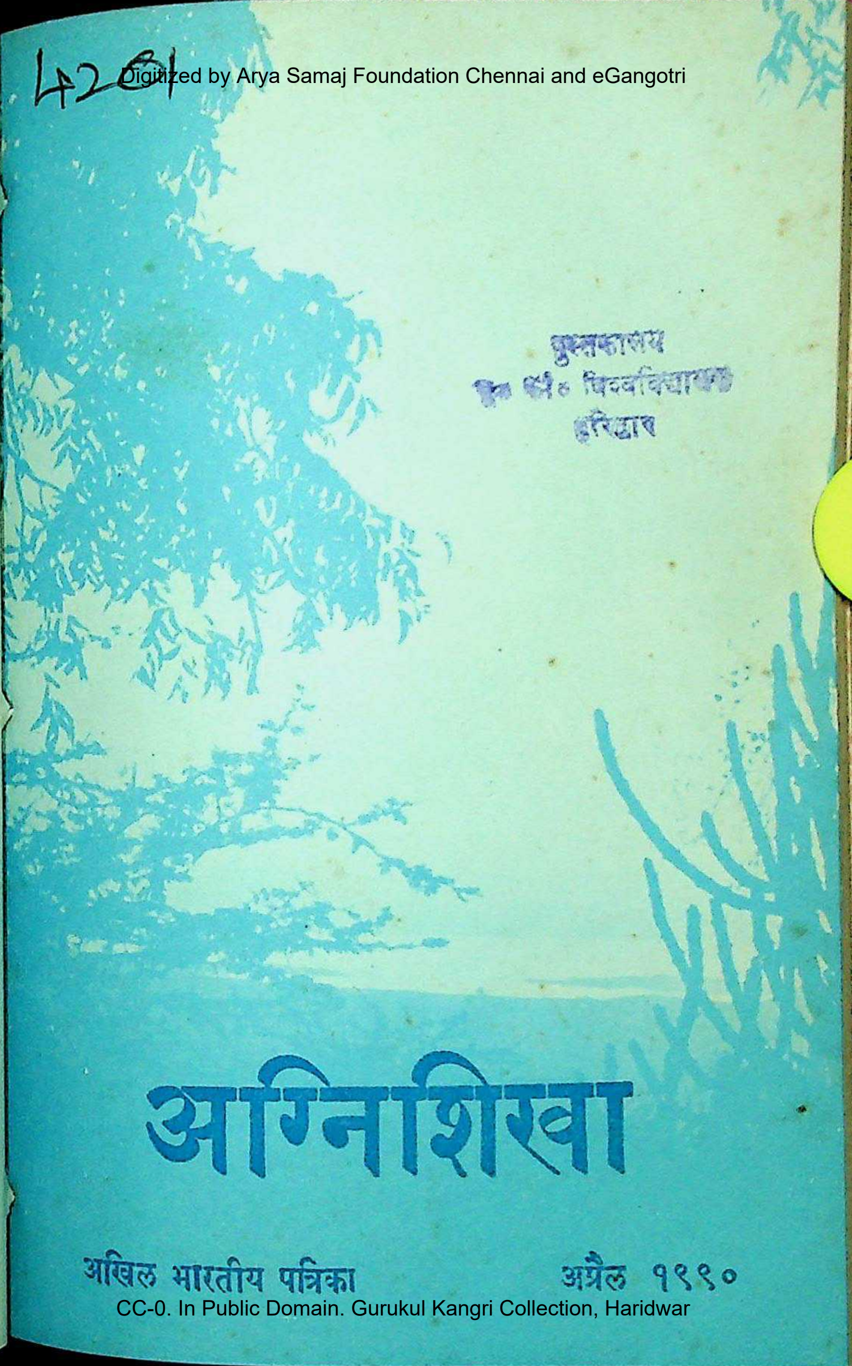

पुस्तकालय
गु० कां० विश्वविद्यालय
हरिद्वार

अग्निशिखा

अखिल भारतीय पत्रिका

अप्रैल १९९०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अप्रैल १९९० वर्ष २०, अंक ९, पूर्णांक २३७

विषय-सूची

सन्देश		१
'संपादकीय': रक्षक कौन ?	अनुबेन	२
दैनन्दिनी		४
सूत्रों में उपनिषद्		७
ईश का रहस्य		१७
ईशावास्यम्		२०
कर्मयोगी (ईशोपनिषद् पर भाष्य)		२४
सोसायटी समाचार		३७

आपका अग्निशिखा/पुरोधा का चंदा ... में समाप्त हो रहा है। कृपया अग्निशिखा के १० और पुरोधा के १४ शीघ्र भेजें अन्यथा अगला अंक वी. पी. पी. से जायगा। वी. पी. पी. लौट आने से हमें बहुत हानि होती है। अलग अनुस्मारक नहीं भेजा जायगा। कृपया चेक न भेजें। चाहें तो २२५ और २७५ एक साथ या किस्तों में देकर अग्निशिखा और पुरोधा के या ५०० देकर दोनों के आजीवन सदस्य बन सकते हैं।

अग्निशिखा वार्षिक १०.०० आजीवन २२५.००

श्रीअरविंद सोसायटी की मासिक पत्रिका

संपादक : रवींद्र, अनुबेन

प्रकाशक : श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी–६०५००२

मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी–६०५००२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि

संदेश

श्रीअरविंद अपनी मातृभूमि से प्रगाढ़ प्रेम करते थे। लेकिन वे चाहते थे कि वह महान् हो, उदात्त, शुद्ध और संसार में अपने महान् लक्ष्य के योग्य हो। वे उसे अंधे स्वार्थों और अज्ञानभरे पूर्वाग्रहों, गंदे और गंवारू स्तरतक डूबने से रोकना चाहते थे। इसी कारण उनकी इच्छा के पूर्ण समर्थन में हम सत्य, प्रगति और मानवजाति के रूपांतर की पताका को, उन लोगों की परवाह किये बिना जो अज्ञान, मूर्खता, ईर्ष्या या दुर्भावना से उसे गंदा करना और कीचड़ में नीचे घसीटना चाहते हैं, उसे ऊंचा उठाते हैं। हम उसे बहुत ऊंचा ले जाते हैं ताकि वे सभी जिनमें आत्मा है उसे देख सकें और उसके चारों ओर इकट्ठे हो सकें।

२५ अप्रैल १९५४ —माताजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संपादकीय :

रक्षक कौन ?

एक था जंगल।

एक दिन तीन नये पशु उसमें आ गये। एक भालू, एक बंदर और एक तोता। तीनों ने ऐसी अजीब-अजीब बातें बतायीं कि जंगलवासी आंखें फाड़े, मुंह बाये उनकी बातें सुनते रहे। उन्होंने कहा, "एक दोपाया होता है, कुछ-कुछ बंदर के जैसा, लेकिन बेहद बुद्धिमान्! हमें पकड़कर न जाने क्या-क्या करवाया उसने!" भालू बोला, "पता नहीं क्या बजाता था, उसपर मुझे पांव उठाने पड़ते और चक्कर लगाने पड़ते थे, दूसरे दोपाये यह करतब देखकर खुश होते थे। सारे दिन ऐसा उल्लूपना करूं तो मेरा मालिक मुझे खाना देता। हाय, मैंने कितने कष्ट झेले!" बंदर ने भी अपनी ठुड्डी सहलाते हुए कहा, "हां, मेरे साथ भी कुछ ऐसा ही होता था लेकिन मुझे झूम-झूम कर घूमने में मजा आता था।" जंगलवासियों ने पूछा, "फिर तुम यहां कैसे आये?"

बंदर बोला, "एक दिन बड़ा शोर मचा। दोपाये आदमी कहलाते हैं, तो एक आदमी मेरे मालिक के पास आया, कुछ कागज दिखाकर, . . . ओह! तुम्हें कागज नहीं मालूम? एक बड़ा सफेद सूखा पत्ता समझ लो, तो वह उसे लेकर आया, मालिक को बदबूदार शीशी दी। अब देखो मजा! मालिक ने उस शीशी का पानी पिया और एकदम से पगला गया। उसने मुझे प्यार किया फिर जोर-जोर से कुछ शब्द चिल्लाकर बोले और मेरी जंजीर खोल दी। बस मैं भाग आया।"

भालू बोला, "हां, मेरे मालिक को भी एक आदमी ने आकर बहुत सारे पैसे दिये, उसने मालिक से कहा, "अगर तुमने मुझे चुना तो तुम्हारे भालू का नाच हर नुक्कड़ पर करवाऊंगा।" मालिक पैसे लेकर भाग गये, मुझे जंजीर से बांधना भूल गये, मौका देखकर मैं भी भाग निकला।"

तोता चीखकर बोला, "मेरा भी कुछ ऐसा ही हाल था। बच्चे पिंजरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खोलकर मुझे खिला रहे थे, सड़क से नारे सुनाई दिये। एक बच्चा बोला, "अरे, जुलूस आ रहा है, देखो हमारे नेता भी आये हैं।" सब दौड़े नेता-दर्शन को, और मैं दौड़ पड़ा जंगल-दर्शन को।" भारी कहकहे लगे। कई छोटे-छोटे पशु उछले, "चलो, हम अपना राजा चुनें।" बंदर बोला, "अरे, इतना देखने-सुनने के बाद भी राजा चुनोगे?" खरगोश फुदक कर बोला, "क्यों नहीं? क्या पता मैं ही राजा बन जाऊं?" इसपर भालू हंसा, "अरे, तू इतना छोटा है, पेड़ की खोह में दिखाई तक न देगा, रहने दे।" अबतक चुप बैठा हाथी चिंघाड़ा, "तुम सब बुद्धि के कोरे हो। इतना सुनने के बाद भी राजा का चुनाव करोगे! बलिहारी है तुम्हारी बुद्धि की!! देखा; नहीं, नहीं, तुमने सुना नहीं, बड़ा चालाक, चतुर दोपाया भी राजा बनने के इस चक्कर में पगला जाता है, मैं कहता हूं जो पशु या पक्षी सबकी भलाई के लिये काम करेगा वही राजा बन जायेगा। चलो सब जुट जाओ अपने भाई-बहन की रक्षा करने में!" जंगल स्तब्ध था। तब से अबतक सब जंगलवासी अपने-आपको अधिक-से-अधिक उपयोगी सिद्ध करने में व्यस्त हैं। किसीको राजा बनने की फुरसत नहीं।

आप समझे न?

—अनुबेन

— — — —

चूंकि तुझे सर्वप्रथम भगवान् के विषय में अपूर्ण धारणाएं दी गयी थीं इसलिये अब तू नाराज हो रहा है और उन्हें अस्वीकार कर रहा है। ऐ मनुष्य! क्या तू अपने शिक्षक पर संदेह करता है क्योंकि उसने तुझे आरंभ में ही सारा ज्ञान नहीं दे दिया था? तू उस अपूर्ण सत्य का अध्ययन कर और उसे यथास्थान रख दे ताकि तू सुरक्षित रूप में उस विशालतर ज्ञानतक जा सके जो अब तेरे सम्मुख उद्घाटित हो रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दैनन्दिनी

अप्रैल

१. एक बार भगवान् को देख लेने के बाद मनुष्य के जीवन का इसके सिवा कोई और उद्देश्य नहीं हो सकता कि वह भगवान्‌तक पहुंच सके और उनको पा सके।

२. श्रीअरविंद के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिये हम इससे अच्छा कुछ नहीं कर सकते कि उनकी शिक्षा के जीते-जागते प्रदर्शन बनें।

३. उनकी कृपा हमेशा उन लोगों के साथ रहती है जो प्रगति करना और आगामी कल के सत्य को चरितार्थ करना चाहते हैं।

४. पूरी तरह सच्चे बनो, वे तुम्हारी पुकार का उत्तर देंगे।

५. तुम्हें यह अनुभव करना चाहिये कि श्रीअरविंद तुम्हें देख रहे हैं।

६. आओ, हम इस बात का प्रयास करें कि उन्होंने हमारे लिये जीवन का जो आदर्श अंकित कर दिया है उसे चरितार्थ करें।

७. भगवान् के लिये कुछ करने के लिये, हमारे पास जो कुछ है, हम जो कुछ करते हैं, या हम जो कुछ हैं उसका कुछ अंश उन्हें अर्पित करें।

८. . . . अपने-आपको पूरी तरह उन्हें अर्पित कर दें ताकि वे हमारी प्रकृति को अपना लें और उसे रूपांतरित करके दिव्य बना दें।

९. हे मेरे प्रभो, मेरे नाथ, तुम मुझे वही बना दो जो तुम मुझे बनाना चाहते हो, तुम मुझसे जो करवाना चाहो मैं वही करूं।

१०. हे प्रभो, मेरी सारी सत्ता को जगा दो ताकि वह तुम्हारे लिये जरूरी यंत्र, एक पूर्ण सेवक बन सके।

११. हे मेरे मधुर स्वामी, परम सत्य, मैं अभीप्सा करती हूं कि मैं जो भोजन ले रही हूं वह मेरे शरीर के कोषाणुओं में तेरा समस्त ज्ञान, तेरी समस्त शक्ति, तेरी समस्त उत्तमता अनुप्राणित कर दे।

१२. वर दे कि हर चीज सच्ची, पूरी तरह सच्ची और ग्रहणशील बन जाये, जो कुछ अभिव्यक्ति में बाधा दे उससे मुक्त हो जाये, संक्षेप में, मेरे शरीर के उन सब अंगों को जो अभीतक तेरे नहीं हैं, अपनी ओर खोल।

१३. अपने जीवन को उपयोगी बनाओ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१४. यहां एक चेतना कार्य कर रही है। हर व्यक्ति जो इस दिव्य चेतना के विरुद्ध जाता है, ऐसा करते समय हर बार इस चेतना का कुछ अंश खो देता है।

१५. व्यक्ति जब कभी दिव्य चेतना के अनुसार काम करता है, तो अपनी चेतना में कुछ पाता है।

१६. चेतना केवल पूर्ण अचंचलता और नीरवता में, सभी अभिरुचियों और पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर ही सत्य का दर्शन कर सकती है।

१७. नीरवता में ही बड़ी-से-बड़ी शक्ति है।

१८. बहुत अचंचल और स्थिर होओ तो तुम मेरी सहायता का अनुभव कर सकोगे।

१९. प्रेम और आनंद में, ऊंची और अधिक ऊंची उठती हुई शांति में हमेशा आगे बढ़ते रहो।

२०. सरल बनो, खुश रहो और शांत रहो।

२१. तुम अपना काम जितनी अच्छी तरह कर सकते हो करो, अपने-आपको हमेशा मेरी ओर खुला रखो—तुमसे बस यही मांग की जाती है।

२२. केवल वही करो जो तुम मेरे सामने परेशानी का अनुभव किये बिना कर सकते हो, वही करो जो तुम मेरे आगे बिना कठिनाई के दोहरा सको।

२३. बहुत सच्चे और सीधे बनो, अपने अंदर ऐसी किसी चीज को स्थान न दो जिसे तुम डरे बिना मुझे दिखा न सको, ऐसी कोई चीज न करो जिसके बारे में तुम्हें मेरे आगे लज्जा आये।

२४. मेरे साथ अपने संबंधों में एक बालक की तरह सहज और सरल बनो। यह तुम्हें बहुत-सी कठिनाइयों से बचायेगा।

२५. सच्चे और प्रभावकारी रूप से सदा मेरे निकट होने के लिये, तुम्हें अधिकाधिक सच्चा, मेरे प्रति खुला हुआ और निष्कपट होना चाहिये। सारे कपट को उठा फेंको और ऐसी कोई चीज न करो जिसे तुम तुरंत मुझसे न कह सको।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२६. वास्तव में भगवान् हर व्यक्ति को ठीक वही देते हैं जिसकी वह उनसे आशा करता है।

२७. अगर तुम यह मानते हो कि भगवान् बहुत दूर और क्रूर हैं तो वे तुमसे दूर और क्रूर होंगे। क्योंकि तुम्हारी चरम भलाई के लिये यह जरूरी होगा कि तुम भगवान् के कोप का अनुभव करो।

२८. वे भाई की तरह और निकट होंगे, हमेशा निष्ठावान् मित्र, हमेशा सहायता देने के लिये तत्पर होंगे उन लोगों के लिये जो हर क्षण, हर गति में आंतरिक पथ-प्रदर्शक के रूप में उन्हें अनुभव करेंगे।

२९. और अगर तुम यह विश्वास करो कि वे हर चीज को मिटा सकते हैं तो वे तुम्हारे सभी दोषों को, तुम्हारी सभी भूलों को हर क्षण अनन्य रूप से मिटाते रहेंगे और तुम हर क्षण उनकी अंनत कृपा का अनुभव कर सकोगे।

३०. इस भांति मनोवृत्ति, बाह्य मनोवृत्ति तक बहुत महत्त्वपूर्ण है। लोग नहीं जानते कि श्रद्धा कितनी महत्त्वपूर्ण है, श्रद्धा स्वयं कितनी चमत्कारपूर्ण और चमत्कारों की जननी है।

अगर तुम हर क्षण यह आशा रखो कि तुम्हें ऊपर उठाया और भगवान् की ओर खींचा जायेगा तो वे तुम्हें ऊपर उठाने के लिये आयेंगे, वे तुम्हारे निकट, अधिक निकट और अधिक निकट होंगे।

— — — —

मैंने देखा है कि भगवान् ने मुझे जो कुछ नहीं दिया वह उन्होंने अपने प्रेम तथा ज्ञान के वश ही रोक रखा है। यदि मैंने उस समय उसे पा लिया होता तो मैं किसी महान् अमृत को एक महान् विष में बदल देता। फिर भी कभी-कभी, जब हम हठ करते हैं तो, भगवान् हमें विष पीने के लिये दे देते हैं ताकि हम उससे मुंह मोड़ना सीख सकें तथा ज्ञानपूर्वक उनकी दिव्य सुधा और अमृतरस का आस्वादन कर सकें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूत्रों में उपनिषद्

ईश उपनिषद्

जो कुछ गति करता है और जो गति नहीं करता वह सब ईश के लिये आवास है।

तू यह क्यों कहता है कि एक जगत् है ? कोई जगत् नहीं है। केवल एकमेव है जो गति करता है।

जिसे तू जगत् कहता है वह काली की गति है; इस भांति अपनी सत्ता का आलिंगन कर। अपनी सर्वालिंगनकारी दृष्टि की नीरवता में तू पुरुष है और वह है जो निवास करता है; अपनी बाहरी गति और क्रिया में तू प्रकृति और आवास का रचयिता है। अपनी सत्ता को इस तरह से देख।

इस गति की बहुत-सी ग्रंथियां हैं और तेरी आंखें हर ग्रंथि को एक विषय के रूप में देखती हैं, बहुत-सी लहरें हैं और तेरा मन हर लहर को शक्ति और प्रवृत्ति के रूप में देखता है। शक्तियां और विषय काली के रूप हैं।

हम उसके हर रूप को एक नाम देते हैं। यह नाम क्या है ? वह शब्द है, वह ध्वनि है, वह सत्ता का स्पंदन है, अनंतता का बालक और मानसिक भाव का पिता है। रूप के होने से पहले, नाम और भाव का अस्तित्व रहा होगा।

अर्द्ध-प्रबुद्ध कहते हैं, "जो भी रूप बनाया जाता है, ईश उसमें निवास करने के लिये प्रवेश करता है;" परंतु द्रष्टा जानता है कि ईश अपनी सत्ता में जो भी देखता है वही भाव बन जाता है और एक रूप तथा आवास की खोज करता है।

विश्व अनंत सत्ता में लयबद्ध स्पंदन है जो अपने-आपको बहुत-से सामंजस्यों में गुणित करता है और उन्हें गति के मूल प्रारूप में सुव्यवस्थित रखता है।

तू एक पत्थर को देखता और कहता है "यह स्थिर है।" वह ऐसा ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, परंतु केवल इंद्रिय-अनुभव के लिये। देखनेवाली आंख के लिये वह गति में से बना और गति से ही रचित है। उसे रचनेवाली आणविक गतियों की व्यवस्थित पुनरावृत्तियों में उसकी नीरवता का आभास छिपा है।

समस्त स्थिरता लय का निर्धारित संतुलन है। लय को क्षुब्ध कर दो तो स्थिरता विलीन होकर अस्थिर बन जायेगी।

कोई-सी भी लय हमेशा स्थिर नहीं रह सकती; अतः विश्व हमेशा ठाठें मारता हुआ सागर है और उसमें हर चीज परिवर्तनशील और क्षणभंगुर है। प्रकृति में हर चीज तबतक बनी रहती है जबतक उसमें काली का प्रयोजन पूरा न हो जाये; और तब वह विघटित हो जाती है तथा किसी और सामंजस्य के घटक में बदल जाती है।

प्रकृति शाश्वत है परंतु हर विश्व चलायमान है। विश्व का तथ्य हमेशा बना रहता है, लेकिन वस्तुओं का कोई विशेष जगत् हमेशा नहीं रहता क्योंकि प्रत्येक विश्व अनंत संभव गतियों में से एक लय मात्र है। प्रकृति के अंदर या प्रकृति की जो भी पद्धति पूरी तरह क्रियान्वित हो चुके उसे एक नये सामंजस्य को स्थान देना पड़ता है।

फिर भी अपनी तात्त्विक सत्ता में सारा जगत् और जगत् की हर चीज शाश्वत है क्योंकि सारी तात्त्विक सत्ता ब्रह्म है जिसका कोई आदि-अंत नहीं।

नाम और रूप भी ब्रह्म और शाश्वत हैं लेकिन जगत् में उनकी अनंतता अविच्छिन्न अचलता की नहीं, पुनरावृत्ति की अनंतता है। हर रूप और हर भाव जो एक बार हो चुका है, उसका अब भी अस्तित्व है और वह फिर से आ सकता है। हर होनेवाला रूप या भाव अब भी अस्तित्व रखता है और आदि से चला आ रहा है। काल अस्तित्व की स्थिति नहीं, गति की परिपाटी है।

जो काली के रूपों में निवास करता है वह आत्मा और गति का ईश है। पुरुष प्रकृति का स्वामी है, उसकी प्रजा नहीं है। आत्मा रूप और क्रिया का निर्धारण करती है, उनके द्वारा निर्धारित नहीं होती। आत्मा अपने ज्ञान में प्रकृति की क्रियाशीलता को प्रतिबिंबित करती है, लेकिन केवल उन क्रियाशीलताओं को जिन्हें शुरू करने के लिये स्वयं उसने प्रकृति को बाधित किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीरस्थ आत्मा शरीर की स्वामिनी है। उसके विधानों के आधीन या उसकी अनुभूतियों से सीमित नहीं है।

आत्मा मन और उसकी क्रियाओं से नहीं बनी है, क्योंकि ये भी प्रकृति के अंग और गतियां मात्र हैं।

मन और शरीर हमारे अंदर स्थित प्रच्छन्न और सर्वज्ञ शक्तिमान् आत्मा के उपकरण हैं।

शरीरस्थ आत्मा देश में शरीर से सीमित या मन में अनुभूति से सीमित नहीं है। समस्त विश्व उसका आवास है।

वस्तुओं की केवल एक ही आत्मा है, विभिन्न रूपों में केवल एक अंतरात्मा। शरीर और मन द्वारा मैं अपने भाई या प्रेमी से भी अलग हूं लेकिन शरीर और मन का अतिक्रमण करके मैं सत्ता और अनुभव में सभी चीजों के साथ एक हो सकता हूं, पत्थर और पेड़ के साथ भी।

मेरी वैश्व आत्मा को मेरे व्यष्टिगत मन और शरीर से सीमित होने की उसी तरह जरूरत नहीं है जैसे मेरी व्यष्टिगत चेतना मेरे शरीर के एक कोषाणु के अनुभव से सीमित नहीं रहती। हमें कारागस्त करनेवाली दीवारों को प्रकृति ने अपनी गति में बनाया है और उनका अस्तित्व केवल उसके निचले राज्यों में है। जैसे-जैसे तुम ऊपर उठते हो वे केवल परंपरागत सीमाएं रह जाती हैं जिन्हें तुम हमेशा लांघ सकते हो और शिखर पर वे हमारी वैश्व चेतना में केवल कक्षों के चिह्न लगाती हैं।

अंतरात्मा हिलती-डुलती नहीं है, परंतु प्रकृति की गति पूर्ण नीरवता में होती है।

प्रकृति की गति वास्तविक या भौतिक गति नहीं है, अपितु वह है अंतरात्मा की आत्म-चेतना का स्पंदन।

प्रकृति चित्-शक्ति है, ईश की आत्म-अभिज्ञता प्रकट करनेवाली शक्ति है जिसके द्वारा वह अपने अंदर जो कुछ भी देखे वह चेतना का रूप बन जाता है।

प्रकृति में हर चीज एक ही आत्मा की संभूति है जो एकमात्र सत् है। हम और प्रकृति में सभी चीजें भगवान् की संभूतियां—*सर्वभूतानि*—हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद्यपि जगत्-अनुभव के लिये विश्व में बहुत-सी आत्माएं (पुरुष) हैं लेकिन ये सब एक ही पुरुष हैं जो उसकी चेतना के अनेक रूपों में आच्छादित है।

हर एक अंतरात्मा अपने-आपमें पूर्णतया भगवान् है। अंतरात्माओं का हर दल सामुदायिक भगवान् है। प्रकृति की गतिविधि की रूपात्मकताएं उनमें विभाजन और बाहरी भेद पैदा करती हैं।

भगवान् जगत् का अतिक्रमण करते हैं और प्रकृति के किसी विधान से बंधे हुए नहीं हैं। वे विधानों का उपयोग करते हैं, विधान उनका उपयोग नहीं करते।

भगवान् जगत् का अतिक्रमण करते हैं और जगत् में चेतना की किसी स्थिति-विशेष से बंधे हुए नहीं हैं। न वे ऐक्य-चेतना हैं न बहुल-चेतना, न व्यक्तित्व हैं न निर्वैयक्तित्व, न स्थिरता न गति, परंतु युगपत् रूप से अपनी परम सत्ता की इन सभी आत्माभिव्यक्तियों को अपने अंदर समाविष्ट किये हुए हैं।

भगवान् युगपत् रूप से जगत् का अतिक्रमण करते हैं, उसे समाविष्ट करते और अनुप्राणित करते हैं। शरीरस्थ आत्मा भागवत चेतनातक पहुंच सकती और एक ही साथ उसके विश्व को पार करती, धारण करती और अनुप्राणित करती है।

भागवत चेतना जगत्-चेतना से अलग नहीं है, प्रकृति आत्मा के लिये अस्पृश्य नहीं है बल्कि उसका बिंब है। जगत् एक मिथ्यात्व नहीं है जो ब्रह्म का प्रतिवाद हो, बल्कि वह दिव्य अस्तित्व का प्रतीक है।

भगवान् प्रकृति का पट हैं और प्रकृति भगवान् की चित् दिशा है।

चूंकि शरीरस्थ आत्मा शाश्वत और अविच्छेद्य रूप से मुक्त है अतः उसके अहंकार की दासता, शारीरिक प्रकृति के विधान, मानसिक प्रकृति के विधान, सुख-दुःख के विधान, जीवन-मृत्यु के विधान वास्तविक बंधन न होकर आभासी बंधन ही हो सकते हैं। हमारी जंजीरें या तो लीला हैं या आभास या फिर लीला और आभास दोनों।

हमारी आभासी दासता का रहस्य है आत्मा की लीला जिससे वह प्रकृति की गतिविधि में तन्मय होकर भागवत चेतना को भूल जाना स्वीकार करती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृति की गतिविधि सप्तधा प्रवाह है, प्रत्येक सरिता गति के अपने ही विधान के अधीन है परंतु प्रत्येक के अंदर बाकी छः बहनें या सखियां प्रच्छन्न, प्रकट या अर्ध-प्रकट रूप से समायी हुई हैं।

प्रकृति बनी है सत्, चित् या तपस्, आनंद, विज्ञान, मानस, प्राण और अन्न से।

अंतरात्मा या पुरुष अपने-आपको इनमें से किसी भी तत्त्व में आसीन कर सकता है और स्थिति के अनुसार उसका दृष्टिकोण बदलता है और वह एक भिन्न जगत् को देखता है। समस्त जगत् केवल आत्मा की व्यवस्थित और सुसंगत दृष्टि है।

भगवान् जिसे देखते हैं, उसका अस्तित्व है, जिसे वे व्यवस्था और सामंजस्य के साथ देखते हैं वह जगत् बन जाता है।

सात लोक हैं; सत्य—शुद्ध सत्ता का, तपस्—शुद्ध इच्छा या शक्ति का, जन—शुद्ध आनंद का, महस्—शुद्ध भाव का, स्वर्—शुद्ध मानसिकता का, भुवर्—शुद्ध प्राण का, भूर्—शुद्ध जड़तत्त्व का।

सत् में आत्मा है सत्ता का शुद्ध सत्य और वह अपने-आपको जगत् की बहुलता में एक के रूप में देखती है।

तपस् में आत्मा है भागवत इच्छा और ज्ञान की शुद्ध शक्ति और वह विश्व पर सर्वज्ञता तथा सर्वशक्तिमत्ता से अपने ही प्रसारित स्व के रूप में अधिकार रखती है।

आनंद में आत्मा शुद्ध आनंद है और वह अपने-आपको वैश्व आत्म-सृजन और अमिश्र सत्ता के आनंद में वर्धित करती है।

महस् में आत्मा शुद्ध भाव होती है, वह अपने-आपको बहुलता में व्यापक ऐक्य की व्यवस्था और सुसंगति में देखती है, सभी चीजें अपने ऐक्य में, हर चीज अपने उचित स्थान, समय और परिस्थिति में होती है। वह संस्कारों के अत्याचार के आधीन नहीं होती। वह जिन विषयों को जानती है उन्हें अपने अंदर धारण करती और समझती है।

मानस में आत्मा शुद्ध मानसिकता होती है और पृथक् विषयों के शुद्ध संस्कार को ग्रहण करती और उनके कुलयोग से समग्रता का संस्कार पाती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। मानस ही नापता, सीमित करता और विभक्त करता है।

प्राण में आत्मा शुद्ध प्राण होती है और अपने-आपको विभिन्न प्राण-ऊर्जा में उंडेलती है।

अन्न में आत्मा शुद्ध जड़-तत्त्व होती है और चेतना के रूप में चेतना की शक्ति को भूल जाती है।

जड़ पदार्थ सोपान की सबसे निचली सीढ़ी है और जो आत्मा जड़ पदार्थ में उतर आती है वह अपनी गुप्त प्रकृति और अनिवार्य आत्म-प्रेरणा द्वारा फिर से रूप में से शुद्ध वैश्व सत्ता की मुक्ति की ओर प्रवृत्त होती है। ये ही दो गतियां हैं जो जगत्-सत्ता पर शासन करती हैं; एक है अधोगति, यानी जड़ पदार्थ या केवल रूप की ओर उतार और एक ऊर्ध्वगति, यानी आत्मा और भगवान् की ओर आरोहण।

मनुष्य मानसिक सत्ता है, मनु या मनोमय पुरुष, जो प्राणिक भावापन्न भौतिक शरीर में प्रविष्ट हुआ है और वह उसे अनंत मानसिकता, अनंत आदर्शवादिता के योग्य बनाने की कोशिश में है ताकि वह अभिव्यक्त सच्चिदानंद का पूर्ण यंत्र, आसन और मंदिर बन सके।

जड़ भौतिक जगत् में मन दो प्रकार के ज्ञान की ओर ध्यान देता है—बाहर से आनेवाले आघात, शारीरिक या मानसिक, जिन्हें व्यक्तिगत मानसिकता में ग्रहण करके मानसिक मूल्यों में अनूदित किया जाता है और भीतर से, आध्यात्मिक, आदर्शात्मक या मानसिक आघात, जो इसी तरह अनूदित किये जाते हैं।

जड़ भौतिक शरीर उन सभी आघातों को पाते हैं जिन्हें मन प्राप्त करता है, लेकिन व्यवस्थित मानसिकता से वंचित होने के कारण वे उन्हें केवल जड़ भौतिक में अंतर्लीन मन के अंदर धारण करते हैं और उन्हें मानसिक प्रतीकों में अनूदित करने में अक्षम होते हैं।

हमारे शरीर स्वभावतः प्राण और मन द्वारा चालित जड़ भौतिक शरीर होते हैं। वे भी सभी आघात तो पाते हैं पर उनमें से सभी मानसिक मूल्यों में अनूदित नहीं होते। जो अनूदित होते हैं उनमें से कुछ पूरी तरह और कुछ अधूरी तरह, कुछ तुरंत और कुछ जड़ में अंतःस्थ मन के अंदर कम या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक परिपाक काल के बाद। आंतरिक ज्ञान के साथ भी ऐसी ही बदलती हुई स्थितियां आती हैं। इस प्रकार वह समस्त ज्ञान जो इस तरह यहां मानसिक मूल्यों में अनूदित होता है, हमारी जाग्रत् चेतना के पदार्थ की रचना करता है। मनोमय पुरुष जब इस जाग्रत् चेतना को अपने ही रूप में स्वीकार कर लेता और एक केंद्रीय अहं-भाव के चारों ओर व्यवस्थित करता है, तो वही जाग्रत् अहंकार बन जाता है।

जीव या शरीरस्थ मनोमय पुरुष अपनी चेतना में जाग्रत् अहंकार से बहुत अधिक विस्तृत होता है। उसके पास भूत, भविष्य और वर्तमान के ज्ञान और अनुभव का विस्तृत क्षेत्र होता है। दूर और नजदीक, इस जीवन और अन्य जीवन, इस लोक और अन्य लोकों का ऐसा ज्ञान होता है जो जाग्रत् अहं को प्राप्त नहीं होता। जाग्रत् अहं बहुत-सी चीजें देखने में असफल रहता है और बहुत-सी देखी हुई चीजें भूल जाता है। जीव सभी अनुभूतियों को देखता और याद रखता है।

जो कुछ हमारे जाग्रत् मन के स्तर से नीचे हमारी प्राणिक ऊर्जा और शरीरों में चलता रहता है वह जगत् में हमारी अवचेतन आत्मा है, जो कुछ हमारे जाग्रत् मन के स्तर के ऊपर हमारे मन तथा उच्चतर तत्त्वों में चलता रहता है वह हमारी अतिचेतन आत्मा है। प्रायः जाग्रत् अहं को इन दोनों स्थानों से न्यूनाधिक रूप से धुंधली सूचनाएं मिलती रहती हैं जिनके मूल को वह नहीं खोज पाता।

मनुष्य उसी अनुपात में प्रगति करता है जिस अनुपात में वह अपनी चेतना को विस्तृत करता है और जाग्रत् चेतना के आनंद और दर्शन के लिये प्राप्य सूक्ष्मतर अनुभूतियों को विस्तार देता है और उस अनुपात में जिसमें वह मन के उच्चतर विस्तारों तक और मन के परे आदर्शत्व और आत्मातक चढ़ पाता है।

मनुष्य की प्रगति और आत्म-परिपूर्ति का सबसे तेज और प्रभावकारी तरीका है अपने जाग्रत् अहंकार को अनंत चेतना के आनंद में विलीन कर देना, पहले वैश्व मनोमय पुरुष के मन में, लेकिन बाद में उच्च विज्ञान और उच्चतम सच्चिदानंद के आदर्श और आध्यात्म में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः सारे व्यावहारिक वेदांत का पहला लक्ष्य है शरीर में जाग्रत् मानसिक अहंकार का अतिक्रमण और विलोपन।

इस अतिक्रमण और विलोपन का परिणाम या तो जाग्रत् स्व की हानि या किसी स्वप्निल तत्त्व में लौट जाना हो सकता है—समरूप प्रकृति, सुषुप्त पुरुष, शून्यं-ब्रह्म (निहिल) आदि में या फिर आत्मा के लोक का परब्रह्म में विलय होने में या जाग्रत् आत्मा और भगवान् की दिव्य सत्ता के आनंद का जगत् के अंदर और उसके बाहर—*अमृतम्*—में वैश्वभावापन्न होनेमें। ईश उपनिषद् इस अंतिम को ही मनुष्य के लक्ष्य के रूप में प्रस्तावित करता है।

जाग्रत् अहं जीव को अपने शरीर, प्राण और मन की अनुभूतियों के साथ तदात्म करता है यद्यपि ये प्रकृति की धारा की गति के भाग और प्रकृति के अधीन और उसकी गति की प्रक्रियाएं हैं। जाग्रत् अहं भूल से आत्मा को प्रकृति के आधीन मानता है जो ईश नहीं अनीश है। यह बंधन की भ्रांति है जिसे मनोमय पुरुष या तो स्वीकार कर लेता है या नष्ट करना चाहता है। जो उसे स्वीकार कर लेते हैं वे बद्ध जीव और जो उसे नष्ट करना चाहते हैं वे मुमुक्षु जीव और जो उसे नष्ट कर लें वे मुक्त जीव या ऐसी आत्माएं कहलाते हैं जो भ्रांति और सीमाओं से मुक्त हैं।

वास्तव में कोई भी आत्मा बद्ध नहीं है अतः कोई भी मुक्ति की चाह करता हुआ या बंधन-मुक्त नहीं है। ये सब जाग्रत् मन की अवस्थाएं हैं, आत्मा या स्व की नहीं जो शाश्वत ईश और मुक्त है।

बंधन का सारतत्त्व है सीमा और सीमा की मुख्य स्थितियां हैं मृत्यु, दुःख और अज्ञान।

मृत्यु, दुःख और अज्ञान प्राण से अभिभूत शरीर में मन की परिस्थितियां हैं और विज्ञान, आनंद सत् और चित् में आत्मा की चेतना को छूतीतक नहीं। तीन निचले अंगों—मन, प्राण और शरीर का मेल इसीलिये अपरार्द्ध कहलाता है, इसे ईसाई भाषा में निचला, मृत्यु और पाप का राज्य कहते हैं। चार ऊपरी अंग परार्द्ध कहलाते हैं जो उच्चतर राज्य या ईसाई भाषा में स्वर्ग का राज्य है। ईश उपनिषद् में द्रष्टा, ऋषि का उद्देश्य है मनुष्य को मृत्यु, दुःख और अज्ञान से मुक्त करना और उसपर उच्चतर राज्य की सर्वानंदमयी और ज्योतिर्मयी प्रकृति को आरोपित करना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाग्रत् अहं को ईश की दिव्य सत्ता में मिला देने और अन्य सभी सत्ताओं के साथ तथा उसके साथ जो भगवान्, आत्मा और ब्रह्म है, पूर्ण एकत्व का अनुभव करके ही इस मुक्ति को संपन्न किया जा सकता है।

सभी व्यक्तिगत सत्ताएं जगती में जगत् हैं, गतिविधि की धारा में गति के विषय हैं और वे उस गति के नियमों तथा उसकी पद्धतियों का पालन करती हैं।

जड़ भौतिक चेतना की सरिता में शरीर गति का एक विषय है जिसका मुख्य विधान है जीवन और मरण। अतः सभी शरीर रचना और विघटन के आधीन हैं।

जीवन शाश्वत प्राण-ऊर्जा से बनी प्राणिक चेतना की धारा में गति की एक लहर है। जीवन अपने-आप मृत्यु के आधीन नहीं है—क्योंकि मृत्यु प्राण-ऊर्जा का विधान नहीं है—वह उस रूप में से निष्कासन के आधीन है जिसपर वह कब्जा किये हुए है, अतः शरीर की मृत्यु के भौतिक अनुभव के आधीन है।

यहां समस्त जड़तत्त्व क्रिया की न्यूनाधिक तीव्रतावाली प्राण-ऊर्जा से भरा है, लेकिन व्यक्तिगत सजीवता में जीवन की व्यवस्था बाद में जड़ भौतिक जगत् की प्रक्रिया में पहले वनस्पति फिर पशु के प्रकट होने से शुरू होती है। प्राण का यह विकास भूर्लोक के प्राणमय जगत् पर भुवर् लोक के देवों के दबाव की वजह से शुरू होता और उन्हींसे सहारा पाता है।

शरीर में प्रवेश करता हुआ जीवन अंशतः शरीर के विधानों के आधीन होता है; अतः वह अपने रूपों को अपनी पूर्ण और अविच्छिन्न ऊर्जा दे सकने में असमर्थ होता है। परिणाम-स्वरूप भौतिक अमरता नहीं होती।

व्यक्तिगत सजीव प्राण की व्यवस्था एक ऐसी शक्ति के आघातों की तीव्रता को लाकर विघटन के काल को द्रुततर बना देती है जो शक्ति जड़-तत्त्व के लिये विजातीय होती है, जो भौतिक रूप को क्रिया से क्षीण कर देती है। इसी कारण पौधा विलुप्त हो जाता है जब कि पत्थर और धातु अपने संतुलन में बने रहते हैं।

प्राणिक-भावापन्न शरीर में प्रवेश करता हुआ मन शरीर पर अपने स्पंदनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की उच्चतर मांगों द्वारा विलय के काल को और भी जल्दी लाने के लिये प्रवृत्त होता है।

मन मानसिक चेतना की धारा में एक ग्रंथि है। प्राण की तरह वह स्वयं भी मृत्यु के आधीन नहीं है बल्कि वह जिस प्राणिक शरीरमें निवास करता है उससे केवल निष्कासित हो सकता है। लेकिन चूंकि मानसिक अहंकार अपने-आपको शरीर के साथ तदात्म कर लेता है और अपने जीवन का अर्थ इस वर्तमान मर्त्य, स्थूल दैहिक शरीर में निवास ही समझता है, इसीलिये उसे शारीरिक मृत्यु का मानसिक अनुभव होता है।

अतः मृत्यु का अनुभव बाह्य मर्त्य मन के अपनी सच्ची अमर प्रकृति के बारे में अज्ञान और शरीर में ऊर्जा की सीमा के मेल से होता है जिसके कारण हम जिस रूप में निवास करते हैं वह स्पंदित होती हुई प्राण-ऊर्जा और स्पंदित होती हुई मानसिकता के आघातों से क्षीण होता जाता है। मृत्यु से हमारा मतलब प्राण या मन से नहीं बल्कि शरीर और रूप के विघटन से होता है।

मनुष्य कहानेवाले मनोमय पुरुष के लिये शरीर का विघटन सचमुच मृत्यु नहीं होता। यह केवल चेतना के पर्यावरण और परिवेश का परिवर्तन होता है। शरीर का जड़-पदार्थ अपने घटक और समूहन बदलता है, मानसिक सत्ता अपने तत्त्व तथा व्यक्तित्व दोनों में बनी रहती है तथा अन्य रूपों तथा परिसरों में चली जाती है।

—श्रीअरविंद

— — — —

मैं भगवान् से, अपने पथ-प्रदर्शक और गुरु से, प्रश्न कर सकता हूं और पूछ सकता हूं कि 'क्या मैं सही हूं अथवा अपने प्रेम और ज्ञान के वश तूने मेरे मन को मुझे धोखा देने का मौका दिया है ?' तू चाहे तो अपने मन पर संदेह कर, पर इस बात पर संदेह न कर कि भगवान् तुझे पथ दिखा रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश का रहस्य

अब हजारों वर्ष बीत चुके हैं कि मनुष्यों ने वेद और उपनिषद् के लिये वेद और उपनिषद् का अध्ययन बंद कर दिया है। जबसे भारतवर्ष का मानव मन अधिकाधिक बौद्धिक होता गया, तर्क और बौद्धिक तर्कणा की गौण प्रक्रिया के व्यसन में पड़ गया, वह अनुभव और प्रत्यक्ष दर्शन द्वारा ज्ञान की सच्ची और आदि प्रक्रिया से दूर खिंचता गया, तबसे वह प्राचीन वैदिक सत्य के बहुमुखी सामंजस्य को विभाजित और अव्यवस्थित करके, उसमें से विचार के अनेक संप्रदाय और तत्त्वमीमांसा के सिद्धांत तराशने लगा। वह शास्त्रों के प्राचीन सत्य की जगह बाद के सूत्रों और भाष्यों में ज्यादा व्यस्त रहा। वेद और वेदांत ज्ञान के पथ-प्रदर्शक नहीं रहे, वे केवल ऐसी खानें और खदान बनकर रह गये जिनमें से प्रसंग की परवाह किये बिना सुविधाजनक उद्धरण खोजे जा सकें ताकि वे तत्त्वमीमांसा के शास्त्रार्थों में अस्त्र की तरह काम में आ सकें। जो सुविधाजनक थे ऐसे पाठों की अवहेलना कर दी गयी या उनके भाव को विकृत करके, उनका अवमूल्यन करके जैसे-तैसे समझा दिया गया। जो पद भाष्यकारों के शास्त्रार्थ में न तो सहायक थे न बाधक, उनका संक्षेप में भाष्य कर दिया गया था, फिर उन्हें झुटपुटे अंधेरे में छोड़ दिया गया। वेदांत के लेखकों की भाषा अबोध हो गयी; उनके रूपक, विचार के प्रतीक, अभिव्यक्ति की अर्थ-छटाएं पुरानी और दुरूह हो गयीं। अतः ऐसे परिच्छेद, जो कभी ज्ञान की गहराई नापते और सूक्ष्म विचार की मृदुता प्रकट करते और अपनी समृद्धि और अपने गुण में चमत्कारिक मालूम होते थे, वे आज के असावधान पाठक के लिये बचकानी, अंधेरी, अज्ञानभरी, मनमानी कल्पना का ढेर बन गये जो अनगढ़ और अपरिपक्व विचार की विशिष्टता है। एक प्रख्यात पाश्चात्य विद्वान् ने उन्हें अपरिपक्व मानवजाति का कूड़ा-करकट और तुतलाहट कहा है। वह यह न देख पाये कि शास्त्र कूड़ा-करकट या तुतलाहट नहीं है, स्वयं उनकी समझ कूड़ा-करकट और अज्ञान की तुतलाहट है। सबसे बुरी बात तो यह है कि वेदांती जिज्ञासुओं की मनोवैज्ञानिक अनुभूतियों को भारत बड़े भाग में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खो बैठा क्योंकि कलि-काल का धुंधलापन उसपर छा गया, उसका ज्ञान संकुचित हो गया, उसके गुण कम होते गये और उसकी प्राचीन आध्यात्मिक वीरता अपना साहस और तेज खो बैठी। पूरी तरह नहीं खो बैठी क्योंकि गुफाओं और मठों में उसके ज्ञान के पार्श्व और अभ्यास अब भी जीवित हैं, अनुभूति और संवेदन के उसके पार्श्व अधिक ऐकांतिक और आत्म-परित्यक्त उत्साह के कारण संकीर्ण होकर बने रहे जो भक्ति-मार्ग की धड़कन की तीव्रता में और असंख्य भक्तों के उत्कंठित आंतरिक हर्ष में तेज हो गये। लेकिन यहां भी वे मंद और धुंधले, अपनी पूर्णता से वंचित, अपनी प्राचीन और कांतिमय शुद्धि से मंद हो गये। फिर भी हम सोचते हैं कि हम आधे वेद को ही सही, किसी-न-किसी तरह समझ तथा हस्तगत कर चुके हैं। और उपनिषद् ! हमने कुछ मुख्य अनुच्छेद समझे हैं और उन्हें भी अधूरी तरह से; परंतु उपनिषद् के समूह में हम उससे भी कम समझते हैं जितना हम मिस्र की चित्र-भित्तियों से समझते हैं। इन महान् रचनाओं में जो ज्ञान श्रद्धा से सुरक्षित है उसपर तो हमारा उससे भी कम अधिकार है जितना मिस्र की प्राचीन प्रज्ञा पर है।

मैंने कहा है कि भारतीय मन का बढ़ता हुआ बुद्धिवाद इस महान् राष्ट्रीय क्षति के लिये उत्तरदायी है। हमारे जिन पुरखों ने वैदिक सत्य की खोज की, या उसे पाया, वे उसतक बौद्धिक चिंतन या तर्क-बुद्धि से नहीं पहुंचे थे। उन्होंने उसे आत्मा में वास्तविक और हम कह सकते हैं, सुनिश्चित अनुभूति, आध्यात्मिक और चैत्य अवलोकन से पाया था। उन्होंने इस तरह जो अनुभव किया उसे अंतर्भासात्मक बुद्धि के साधन से समझा। लेकिन एक समय आया जब लोगों को यह आवश्यक मालूम हुआ कि वे वेद के इस परम और अमर सत्य का विवरण अपने-आपको और औरों को न्याय-शास्त्र की परिभाषा में, बौद्धिक तर्कणा की भाषा में दे सकें। अंतर्भासात्मक बुद्धि को ज्ञान का साधारण उपकरण बनाने के लिये आधार के रूप में लौह नैतिक और बौद्धिक अनुशासन, विचार की बृहत् निःस्वार्थता की जरूरत होती है—अन्यथा कल्पना और कामनाएं उसके कर्म की शुद्धि को भ्रष्ट कर देती हैं, उसे अपदस्थ करके, तड़क-भड़क के साथ उसका नाम और मुखौटा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहन लेती हैं, वैदिक ज्ञान गुम होने लगता है और उसपर आधारित जीवन के अभ्यास और प्रतीक का स्थान शीघ्र ही औपचारिक कर्म और अमेधावी रीति-रिवाज और अनुष्ठान ले लेते हैं। तपस्या के बिना वेद नहीं हो सकते। हमारी प्राचीन परिपाटी के अनुसार विचारधारा इसी मार्ग का अनुसरण करती थी। तपस्या की क्षमता मनुष्य के प्रथम पौरुष के स्वर्णकाल की चीज है; जैसे-जैसे मानवजाति काल-प्रभावित होने लगती है और युग लौह-काल की ओर का मार्ग पकड़ता है वैसे-वैसे तपस्या के साथ-ही-साथ आधार, दिव्य ज्ञान, अधिरचना भी ढह जाते या क्षीण हो जाते हैं। तब सत्य का स्थान ले लेता है अंध-विश्वास, जहां सत्य खड़ा होता है वहां अविवेकी भ्रांति आ खड़ी होती है और वहां छिपी हुई, अर्पित नींव पर अपना सुख का तड़क-भड़कवाला अनोखा महल खड़ा करती है। यहांतक कि प्राचीन सत्य के खंडहर उसकी अनियमित इमारत के लिये पत्थरों का काम देते हैं। लेकिन ऐसा अपहरण कभी टिकाऊ नहीं हो सकता। चूंकि मानव सत्ता की आवश्यकता है सत्य और ज्योति तथा दिव्य विधान, जिसका मुख्य दृष्टिकोण यह है कि आत्मा की कोई उचित मांग संतुष्ट हुए बिना न रहेगी, यह चीज तर्क-बुद्धि को उठाती है ताकि वह अंध-विश्वास को साफ कर दे। तर्क-बुद्धि ईश के देवदूत की तरह दोहरे निषेध की अपनी तलवार से लैस होकर आती है (क्योंकि बौद्धिक तर्क का स्वभाव है कि वह विषयनिष्ठ आभास के सत्य के परे किसी चीज को विश्वास और बल के साथ प्रतिपादित नहीं कर सकता, बल्कि उसे तो हमेशा आधारभूत सत्य के बारे में नास्तिक और संदेहास्पद रहना चाहिये, समर्थन का उसका ऊंचे-से-ऊंचा शब्द है "संभवतः" और नीचे-से-नीचा है "शायद"), वह आकर जो कुछ काट सके उसे काट देती है और बहुधा निषेध की उत्तेजना में अपने-आपको भी खो बैठती है, सचमुच अंध-विश्वास का निषेध करती है लेकिन सत्य पर भी संदेह करती और उसे अस्वीकार करती है, क्योंकि वह अंध-विश्वास की नींव रह चुका है या अपने कुछ पत्थरों के साथ इमारत का भाग बना था। बहरहाल, वह अधिक गंभीर कार्य के लिये मैदान साफ कर देती है, ज्यादा स्पष्ट लिखाई के लिये सिलेट को साफ कर देती है। प्राचीन भारतीय मानस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहजवृत्ति से अनुभव करता था—मैं यह नहीं कहता कि उसने उपलब्ध किया या सचेतन रूप से प्रमाणित किया—कि इस निषेध के शासन से बचने के लिये एक मार्ग है; वेद के उतने सत्य को, जो अभीतक पकड़ में आ सकता था, उसे बौद्धिक तर्क के साथ प्रस्तुत करना और तार्किक रूप से उचित सिद्ध करना। इस महान् श्रम का परिणाम थे षट् दर्शन। बौद्ध धर्म निषेध की बाढ़ के रूप में आया जरूर लेकिन उसे आध्यात्मिकता को नष्ट करने से रोक दिया गया; जैसे अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोपीय निषेध ने उसे कुछ समय के लिये नष्ट कर दिया था . . .

—श्रीअरविंद

(अपूर्ण)

ईशावास्यम्

प्रारंभ में ही ईश उपनिषद् सीधा उस समस्या की जड़तक जा पहुंचता है जिसे द्रष्टा ने समाधान करने के लिये अपने सामने रखा है। वह उन दो चरम परिभाषाओं से शुरू करता है जिनसे हमारा अस्तित्व बना हुआ मालूम होता है और एक चिरस्थायी वाक्यांश से, जो आठ संक्षिप्त परंतु पर्याप्त कांस्य शब्दों का है, उनका सामना करता और अपने उचित और शाश्वत संबंध में बिठा देता है। "*ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किञ्च जगत्यां जगत्*"। ईश और जगत्, भगवान् और प्रकृति, आत्मा और जगत्, सत्ता के दो छोर हैं जिनके बीच में हमारी चेतना घूमती है। यह दोहरी वास्तविकता है अस्तित्व, जीवन और मनुष्य। अपनी सारी सृष्टि में एकाकी विराजमान शाश्वत, हमेशा गति करते हुए विश्व में और उसकी गति के अनगिनत चक्करों और गांठों में, जिनमें से हर एक को हम विषय या वस्तु कहते हैं, उन सब में, एक ही ईश बहु के रूप में निवास करता है। आलोकमय सूर्यों से लेकर गुलाब और धूलिकणतक, अपने आलोकमय या अंधेरे जगतों में देवों और दानवों से लेकर मनुष्य और उस कीटतक, जिसे वह सोचे-विचारे बिना अपने पैरों तले रौंद देता है, हर चीज उसका मंदिर है, उसका प्रासाद है। मंदिर में उसीकी अवगुंठित मूर्ति है, प्रासाद में वही गृहस्थ है। सभीका सृजन उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये और उसकी सत्ता के एक और बहु के रसास्वादन के लिये किया गया, उन सबके जीवन का इसके सिवा कोई और कारण नहीं है। यह सब ईश के निवास के लिये है। हर चीज, वह चाहे कुछ क्यों न हो, हर गति करनेवाली चीज के अंदर जो चीज गति कर रही है, वही है।

पृथ्वी पर पूर्ण जीवन की समस्या, एक ऐसे जीवन की जो उन रोगों से मुक्त हो, मानवता जिनकी शाश्वत और अनुद्धार्य बंदी और शिकार मालूम होती है, वेदांतियों की मान्यता के अनुसार उसका समाधान तभी हो सकता है यदि हम अस्तित्व की आधारभूत प्रकृति की ओर लौट चलें; क्योंकि वहींपर हम अशुभ की जड़ और उपचार का सत्य पा सकते हैं। वे यहांपर ईश और जगत्, इन दो शब्दों में हैं। निवासी ईश है, इस सत्य में, हमारे मन द्वारा उसके ज्ञान में, अपनी पूरी प्रकृति और सत्ता द्वारा उसकी सिद्धि ही अशुभ के शिकार, सीमा और मृत्यु के बंदी के बच निकलने का रास्ता है। दूसरी ओर प्रकृति क्षणभंगुर और असंगत गति है जिसे उन विधानों की सामंजस्यपूर्ण स्थिरता सुरक्षित रखती है जो उसकी किसी गति-विशेष पर शासन करते हैं। प्रकृति की यह अधीनता और अस्थिरता हमारे बंधन, मृत्यु, सीमाबद्धता और दुःख का रहस्य है। हम जो अपने-आपको प्रकृति की रूपात्मकताओं में फंसा लेते हैं, हमें यह जानना चाहिये कि अगर हम उसकी चकरानेवाली भ्रांति से बचना चाहें तो हमें अपने जीवन के दूसरे छोर, निर्गुण आत्मा या भगवान् को प्राप्त करना चाहिये। अपने अंदर स्थित भगवान्तक उठने से हम मुक्त हो जाते हैं और जगत् के बंधनों से और मृत्यु के जाल से छूट जाते हैं। भगवान् मुक्ति हैं, भगवान् अमरता हैं। "*मृत्युं तीर्त्वा अमृतम् अश्नुते*।" मृत्यु को पार करके हम अमरता का रस लेते हैं।

प्रकृति और आत्मा, जगत् और भगवान् का यह संबंध, जिसपर ऋषि भवन-निर्माण करते हैं, जिसमें प्रकृति भवन और भगवान् निवासी हैं, यह उनका व्यावहारिक संबंध है, तात्त्विक नहीं। सचेतन सत् ब्रह्म है, एक और अविभाज्य। आत्मा और प्रकृति, जगत् और भगवान् एक हैं। "*अनेजदेकम् मनसो जवीयो*'—वे एक अगतिशील परंतु मन से भी अधिक तेज हैं। परंतु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन के लिये, वह चाहे बद्ध हो या मुक्त और बद्धता से मुक्ति की ओर गति के लिये, हमें इस एक की धारणा हमेशा दो या द्वित्त के रूप में करनी चाहिये जिसमें भगवान् प्रकृति का उल्टा पक्ष हैं और प्रकृति भगवान् का सीधा पक्ष जो हमारा सचेतन जीवन है। यह भेद स्वयं आत्मा ने अपनी सत्ता में किया है, उस उद्देश्य के लिये जिसे ऋषि ने एक शब्द "*वास्यम्*" में प्रकट किया है। भगवान् ने स्वयं अपनी सत्ता को विश्व की स्थानिक और कालिक गति में फेंक दिया है, अपनी गतिशील, प्रसारित आत्म-चेतना में रूप बनाते हुए, जिसे वह अपनी स्थिर और शाश्वत आत्म-चेतना में निवास करनेवाले और उसमें रस लेनेवाले से भिन्न समझता है, ताकि आत्मा के रूप में वह कर्ता के एक विषयगत अस्तित्व की तरह रह सके और जिसे वह आत्म-प्रसाद के गृहस्थ, आत्म-मंदिर के भगवान् को अपने साम्राज्य के राजा की तरह देख सके, उसपर अधिकार कर सके और उसमें रस ले सके। प्रकृति के साथ आत्मा के इस सार्वभौम संबंध में ईश शब्द का अर्थ होता है पूर्ण और निरपेक्ष स्वाधीनता, जिसका कभी अतिक्रमण नहीं किया जा सकता, जिससे आत्मा वस्तु या विषय को आमने-सामने देखती है और अपने राज्य पर अधिकार कर लेती है। जगत् कोई जड़ घोंघा नहीं है जिसमें आत्मा बंद है, आत्मा जाल में फंसी हुई वस्तुओं का कोई घूमता-फिरता श्वास नहीं है जिसमें वह वस्तु, जिसे आत्मा प्रेरणा देती है, बंदी है। अंतर्यामी भगवान् अपनी सृष्टियों का ईश है, उनका सेवक या बंदी नहीं। गृहपति के रूप में आत्मा अपने निवास-स्थानों और अपनी इच्छा के अनुसार उन गृहों में प्रवेश करने या उनमें से निकल जाने के लिये स्वतंत्र है। उसने जिनका निर्माण किया है वे उसे संतुष्ट न कर पायें या उसकी आवश्यकताओं को पूरा न कर सकें तो उन्हें ढा देने के लिये भी स्वतंत्र है। आत्मा अपने शरीरों में प्रवेश करने या उनसे निकल जाने के लिये स्वतंत्र है। इस विश्व में आत्मा को जो पसंद आये उसे बनाने, नष्ट करने और फिर से बनाने की उसमें शक्ति है। वह स्वयं विश्वतक को किसी भी समय नष्ट करने या फिर से बनाने के लिये स्वतंत्र है। भगवान् बद्ध नहीं हैं; वे अपनी सृष्टियों के संपूर्ण, स्वतंत्र और निर्विरोध स्वामी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदांतिक विचार की इस महान् लय के शुरू में जान-बूझकर यह शब्द 'ईश' रखा गया है, इससे वह उसके सारे आवर्तन पर उत्कृष्ट ताल की तरह शासन कर सकता है। इस उपनिषद् के अठारह मंत्रों में जो कुछ कहा गया है उसकी यह चाबी है। यह केवल विश्व के बारे में समस्त यांत्रिक सिद्धांतों का विरोध ही नहीं करता और वस्तुओं के अंदर स्थित परात्पर आत्मा के पूर्व-अस्तित्व, सर्वशक्तिमत्ता, गौरव और स्वाधीनता को प्रतिपादित ही नहीं करता बल्कि विश्व के ईश को सभी शरीरों में स्थित आत्मा के साथ तदात्म करके वह मनुष्य की उस आत्मा की महानता, स्वाधीनता और प्रच्छन्न सर्वशक्तिमत्ता का प्रतिपादन करता है जो यहां दुःख के जाल में फंसी और चकरायी हुई और भटकती-सी प्रतीत होती है। उसकी प्रकृति के सभी पर्दों के पीछे मनुष्य की आत्मा भी दास नहीं, स्वामी, बद्ध नहीं मुक्त है। दुःख, मृत्यु और सीमाबंधन किसी ऐसी क्रियाशीलता के यंत्र हैं जिसे वह अपने ही आनंद के लिये परिपूर्ण करता है। मनुष्य अपने यंत्रों के साथ बंधा हुआ नहीं है। वह उनमें हेर-फेर कर सकता है, उन्हें अस्वीकार कर सकता है और उन्हें बदल सकता है। तो अगर हम अपने मन और शरीर की निश्चित प्रकृति, दृश्य विश्व की प्रकृति, सुख, दुःख के द्वित्तों, दुःख और आनंद, कार्य-कारण शृंखला या किसी अन्य शृंखला, बेड़ी या गांठ द्वारा बंधे हुए दीखते हैं तो यह बंधन एक आभास है, उससे बढ़कर कुछ नहीं। यह माया है, स्वेच्छापूर्वक स्वीकार किया गया बंधन है या फिर लीला है—अपने-आप चुना हुआ बंधन का खेल। एक बच्चे की तरह जो इस या उस पात्र का अभिनय करता है और अपने-आपको पात्र के साथ एकात्म कर लेता है, भीतर निवास करनेवाला यह पुरुष अपनी स्वाधीनता को भूलता हुआ प्रतीत हो सकता है लेकिन जब वह भूलता है तब भी स्वतंत्रता उपस्थित होती है, स्वयंभू और अविच्छेद्य। वह आभास के सिवा और कभी गुम नहीं होता और आभास में भी फिर से प्राप्त हो सकता है। जगत्-सत्ता का खेल केवल बंधन का नहीं बल्कि समान रूप से बंधन-मुक्ति का खेल भी है।

—श्रीअरविंद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्मयोगी

(ईशोपनिषद् पर भाष्य)

अध्याय एक

त्याग का विधान

१—सब कुछ ईश, सब जगह ईश :

गुरु—उस शाश्वत को नमन जो देश, काल, कारण और सीमारहित है। नमस्कार है उसे जो विश्व पर शासन करता है, मायापति और बहुविध जीवन का स्वामी है। मेरे अंतर में स्थित आत्मा को नमन, जो सभी प्राणियों की आत्मा है। नमस्कार है उस ब्रह्म, ईश, आत्मा को, वह चाहे जिस रूप में अपने-आपको प्रकट करे या न भी करे, नमस्कार है उस एक को, उस एकमेव सच्चिदानंद को।

उपनिषद् आरंभ होता है :—

"इस विश्व में सब कुछ, वह सब भी जो इस चलायमान विश्व में जगत् है, प्रभु से कपड़े की न्याई वेष्टित होना चाहिये। जगत् को त्याग दे ताकि तू उसका भोग कर सके। किसी अन्य के धन के लिये लोलुप न हो।"

उपनिषद् ने पहले-पहल हमारे आगे परम सत्ता के वैश्व भाव को प्रस्तुत किया है क्योंकि हम जो कुछ देखते, सुनते या जो कुछ हम हैं या जिसका किसी तरह से अनुभव करते हैं हमें उसे घेरे हुए प्रभु की उपस्थिति का अनुभव करना चाहिये। मैं जिस पेड़ के नीचे बैठा हूं उसे मुझे इतने सारे पत्ते, छाल, गूदा और रस, धरती और वायु के खोल में बंद जड़ें न समझ लेना चाहिये। मुझे यह अनुभव करना चाहिये कि यह सब उस परम प्रभु के अंदर अभिव्यक्ति है जो एकमात्र सद्वस्तु है। यह शब्द जिसे मैं उच्चारित कर रहा हूं, दिव्य सद्वस्तु के वातावरण में स्पंदित होता है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केवल इसीलिये कि वह उसमें स्पंदित होता है वह ध्वनि, उच्चारण और अर्थ के योग्य है। जो भी क्रिया मैं करता हूं या औरों को करते देखता हूं वह ऐसी नहीं है जिसे प्रभु घेरे हुए या सहारा दिये हुए नहीं हैं, अन्यथा वह हो ही न सकती। मैं जो कुछ देखता हूं, मैं भगवान् को देखता हूं, मैं जो कुछ सुनता हूं, भगवान् को सुनता हूं, मैं जो कुछ करता हूं उसमें भगवान् की शक्ति ही मेरी क्रियाओं पर शासन करती है। यह पहली चीज है जिसे कर्मयोगी को अनुभव करना चाहिये और जबतक वह अपने मन को इस उपलब्धि पर स्थिर न कर ले, कर्मयोग असंभव है। प्रभु सब जगह हैं, प्रभु हर चीज को अपनी उपस्थिति से घेरे हुए हैं, प्रभु सब कुछ हैं, "*वासुदेवः सर्वमिति*।" मैं जो कर्म करता हूं उसे ईश में ही करता हूं। यह कर्ता अहं जो कर्म करता है केवल ईश में ही विद्यमान है, यह कर्म जो नर हो या नारी या जड़ वस्तु हो जिसपर क्रिया की जाती है, केवल ईश में ही विद्यमान है। सबसे पहले परम पुरुष की सर्वव्यापकता का अनुभव करना चाहिये। जब योगी इस सर्वव्यापकता का आध्यात्मिक अनुभव कर ले तभी वह कर्मयोग का अधिकारी हो सकता है; क्योंकि तबतक वह मैं, तू और वह की सतत अनुभूति को एक उच्चतर और बृहत्तर अस्तित्व में नहीं डुबा सकता और न ही तबतक आभासी आत्मा से निकलकर सच्ची आत्मा में प्रवेश कर सकता है। और इसके बिना कर्मयोग सचमुच शुरू नहीं हो सकता। सभी चीजों को परम प्रभु में वेष्टित करना, तुम जो कुछ कहो, सोचो, करो, अनुभव करो या जिसके बारे में संवेदन प्राप्त करो, उसमें उनके बारे में सचेतन होना कर्मयोग का आरंभ है। इस अनुभूति का अंतरात्मा की अभ्यासगत स्थिति में रूपांतरित होना कर्मयोग की निष्पत्ति है क्योंकि यह सीधी ब्रह्म के ज्ञान और उनके साथ ऐक्य के आनंद की ओर ले जाती है। कर्म पिघलकर ज्ञान और भक्ति के साथ एक हो जाता है। कर्म, भक्ति और ज्ञान के तीन मार्ग हैं जो प्रपंचात्मक अस्तित्व से शाश्वत परमार्थ की ओर ले जाते हैं और जहां ये तीनों मिलकर एक हो जाते हैं, वह इस महान् यात्रा का अंत और विष्णु का परम पद है जिसकी ओर ले जाना उपनिषद् का उद्देश्य है। ईशोपनिषद् कर्मयोग का शास्त्र है। तीन मार्गों में से वह कर्म की शिक्षा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देता है अतः वह भगवान् की ओर उन्मुख कर्म की पहली अपरिहार्य स्थिति से आरंभ करता है। सभी वस्तुओं, प्राणियों, कारणों, कार्यों, परिवर्तनों और विकासों को इतने सारे अस्थायी प्रपंचों के रूप में देखना, जो परम सत्ता की उपस्थिति से ढके हुए हैं, वे उसके अंदर और उसीके द्वारा अस्तित्व धारण करते हैं। मैं नहीं वह, क्योंकि वह मेरी सच्ची आत्मा है और जिसे मैं अहं कहता हूं वह केवल ढक्कन और आभास है—यह वेदांत है। इस सत्य की पहली अनुभूति ज्ञान का आरंभ है, भक्ति का आरंभ है, कर्म का आरंभ है, *सोऽहम्*, वही सत्य और एकमात्र अहं है।

२ —ईश :

अब हम बारीकी से शास्त्र की भाषा को देखें क्योंकि उपनिषद् में हर शब्द का अनंत महत्त्व है और उसे अन्य शब्दों को छोड़कर किसी गहन और सारगर्भित कारण से चुना जाता है। इस उपनिषद् का पहला शब्द है ईश। हमें इस विश्व की सभी चीजों को प्रभु द्वारा वेष्टित करना चाहिये। हम जो कुछ सोचें, करें, देखें या अनुभव करें उसमें हमें प्रभु की ही उपस्थिति, इच्छा और शक्ति को अनुभव करना चाहिये। दूसरे शब्दों में वह ऐसी परम सत्ता है जो अचल, अज्ञेय परब्रह्म, परात्पर नहीं है, जो इंद्रियों, मन और वाणी की पहुंच के बाहर है। वह आत्म-केंद्रित सच्चिदानंद भी नहीं है जिसके साथ ज्ञान-योगी समाधि में एक होना चाहता है। वह विश्व के स्वामी के रूप में शाश्वत है जो प्रपंच के चक्र को चलाता और उसकी गतिविधियों का मार्ग-दर्शन करता रहता है, जैसे कोई यांत्रिक अपने यंत्र पर नियंत्रण रखता है। कर्मयोगी का लक्ष्य होता है निर्भ्रांत होकर जीना, फिर भी माया की भ्रांतियों का अपने योग की सामग्री के रूप में उपयोग करना; वह प्रपंच के बीच रहते हुए अपने-आपको आभासों से मुक्त करना चाहता है, अतः ईश, महेश्वर, मायापति, बहुमुखी प्रपंचात्मक जीवन के स्वामी की उसे खोज होती है जिसके अंदर उसे अपने निम्नतर स्व को खो देना होता है। चूंकि वह कर्म के द्वारा कार्य करता है अतः उसे कर्मों के स्वामी की निःस्वार्थ जीवन के फूलों और अगरू से पूजा करनी होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकिन क्या परब्रह्म और ईश में कोई भेद है ? क्या एक नहीं दो परम सत्ताएं हैं ? कोई फर्क नहीं। वस्तुतः फर्क केवल आभास और सादृश्य का है। परब्रह्म, निरपेक्ष, परात्पर, शाश्वत सद्वस्तु मानव बुद्धि के लिये अज्ञेय है; मनुष्य के अंदर जो तर्क-बुद्धि से ऊपर है वह परब्रह्मतक पहुंच सकता है और उसका अनुभव कर सकता है क्योंकि वह परब्रह्म है, लेकिन यह समाधि की अवस्था में होता है। और मानव समझ समाधि की अवस्था से ऐसा कोई आलेख नहीं ला सकती जो तर्क-बुद्धि के लिये बुद्धिगम्य हो या जिसे वाणी की परिभाषा में समझाया जा सके। अपने सार-तत्त्व में परब्रह्म अनुभवगम्य है पर बुद्धिगम्य नहीं; उनका अनुभव किया जा सकता है परंतु उनकी व्याख्या नहीं की जा सकती, उन्हें समझा नहीं जा सकता। फिर भी परब्रह्म हमारी समझ के आगे दो आभास या दो पक्ष रखते हैं जिनके द्वारा उन्हें पूरी तरह तो नहीं, सापेक्ष रूप में समझा जा सकता है। ये दो पक्ष परब्रह्म के आत्म-ज्ञाता रूप में निहित विद्या और अविद्या की शक्तियों, जानने की शक्ति और न जानने की शक्ति के अनुरूप हैं। ये ज्ञान और भ्रांति की क्षमताएं हैं। परब्रह्म अपने-आपको उस रूप में जान सकते हैं जो वह वास्तव में हैं; यह है विद्या। वे अपनी उस रूप में कल्पना भी कर सकते हैं जो वे नहीं हैं; यह अविद्या है। अपने पहले रूप में वे सच्चिदानंद हैं। उनका अस्तित्व केवल अपने लिये है क्योंकि स्वयं उनके अतिरिक्त और कोई सत्ता है ही नहीं। वे केवल अपनी सत्ता के बारे में सचेतन हैं क्योंकि ऐसी कोई और सत्ता नहीं है जिसके बारे में सचेतन हुआ जाये। वे अपनी आत्म-सचेतन सत्ता के आनंद हैं क्योंकि उनके बाहर या उनके अतिरिक्त कोई ऐसी सत्ता है ही नहीं जो उन्हें बाहरी आनंद दे सके। यही शाश्वत सद्वस्तु है। सत्य-ज्ञान या विद्या के लिये उनका यही रूप है। लेकिन एक शाश्वत असद्वस्तु भी है, मिथ्या ज्ञान या अविद्या के लिये उनका रूप। तब वे एक महान् इच्छा, शक्ति या सामर्थ्य हैं जो अपने-आपको करोड़ों नाम-रूपों में प्रकट करती है और प्रपंचात्मक विकास के शाश्वत चक्र को सदा गतिशील रखती है। वह उसपर शासन करता और उसका मार्गदर्शन करता है। तब वह ईश, स्वामी या शासक होता है। अगर हम मानव समरूप का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यवहार करें तो, मानों शेक्सपीयर अपने-आपको डेस्डेमोना, ऑथेलो, इआगो, वियोला रोज़ालिण्ड, मेकबेथ, हेमलेट, लीअर, सिम्बलीन आदि सैंकड़ों नाम-रूपों में उंडेलते हुए अद्‌भुत काल्पनिक जगत् का स्वामी और शासक बनने के लिये अपनी अविद्या की शक्ति का उपयोग करता है। जब कि शेक्सपीयर का अपनी सभी कृतियों को एक ओर रखकर अपने एकमात्र और पर्याप्त अस्तित्व की ओर लौटना, अपनी निजी सतत एकमात्र सद्वस्तु को प्राप्त करने के लिये अपनी विद्या-शक्ति का उपयोग करना है। लेकिन शेक्सपीयर एक है, दो नहीं। कर्मयोगी को इस महान् बहुमुखी प्रपंचात्मक विश्व के साथ व्यवहार करना पड़ता है और जब वह शाश्वत की उपस्थिति को उसके अंदर स्थित हर चीज के इर्द-गिर्द खोजने की कोशिश करता है तो निश्चय ही भगवान् के, सच्चिदानंद के अननुकूलित, अप्रपंचात्मक पक्ष में नहीं बल्कि विश्व के स्वामी, ईश के अनुकूलित और प्रपंचात्मक रूप में खोजता है। ईश के रूप में कर्मयोगी उनकी कई अवर स्थितियों में पूजा कर सकता है। ईश पुरुष और प्रकृति के रूप में दोहरी सत्ता है। पुरुष है वह आध्यात्मिक शक्ति का महान् पुंजातीय सागर जो प्रकृति को सृजन करने के लिये प्रवृत्त करता और उसकी क्रियावली का निरीक्षण करता है, दूसरी है प्रकृति, वह शक्तिशाली नारी-जातीय ऊर्जा जो सृजन करती और पुरुष के सुख के लिये अथक कर्म करती रहती है। वह तिहरी सत्ता है प्रज्ञा, हिरण्यगर्भ और विराट्; प्रज्ञा—सुषुप्ति-जीवन की स्वामिनी, वह मेधावी शक्ति जो अन्यथा जड़, निर्जीव जीवन प्रतीत होनेवाली सत्ता में जीती और जागती है या जो यांत्रिक शक्तियों का अंधा खेल है। हिरण्यगर्भ—स्वप्न-जगत् का स्वामी जो इस अवचेतन रूप से मेधावी आध्यात्मिक सत्ता के सागर में से उन सचेतन चैत्य शक्तियों को लेता है जिन्हें वह मूर्त्त रूप देता है अथवा स्थूल सजीव पदार्थ के विभिन्न रूपों में मढ़ता है; फिर विराट्—जाग्रत् जीवन का स्वामी, वह उस संवेदनशील सृष्टि पर शासन करता है, उसका पालन-पोषण और उसकी देख-रेख करता है जिसे हिरण्यगर्भ ने आकार प्रदान किया है। वह फिर से शिव, ब्रह्मा और विष्णु के रूप में एक और त्रयी है शिव संहारक, योगी, पशुपति, समाधि का स्वामी, श्मशानपति और अशरण-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरण है। ब्रह्मा—स्रष्टा, जो जीवन को प्रस्तुत करता है और अपने हाथ को क्षण भर के लिये भी नहीं रोकता; विष्णु—परिरक्षक, त्राता, शक्ति और प्रेम, जीवन, ज्योति और मधुरता का स्वामी। ईश या प्रभु के इन सब रूपों के साथ हिंदू पूजा-अर्चना ने कुछ नाम और रूप जोड़ दिये हैं और ईश भी अपने-आपको अपने पुजारियों के आगे उन्हीं नाम-रूपों में प्रकट करता है। ज्ञानयोगी ईश को शिव के उच्चतम समाधि के स्वामी के रूप में पूजना पसंद करता है। भक्त के आगे वह उसके आध्यात्मिक भावों के अनुकूल उसको लुभानेवाले रूप में प्रकट होता है, लेकिन कर्मयोगी को अपने-आपको परम पुरुष के उन रूपों के अर्पण करना चाहिये जिनमें उसकी महान् शक्ति, जीने और सृजन करने की इच्छा ने अपने-आपको अपने उच्चतम, शुद्धतम, अधिक-से-अधिक प्रेरणादायक ओजस्वी पौरुष में प्रकट किया है क्योंकि कर्म केवल गतिशील शक्ति है और कर्मयोगी को जगत् में दिव्य ऊर्जा का शुद्ध वाहक, निःस्वार्थ वीर और स्रष्टा होना चाहिये। स्वयं ईश ने अपने अवतारों, बुद्ध, राम, श्रीकृष्ण में हमें अपनी उच्चतम निःस्वार्थ दिव्य ऊर्जा के प्रारूप दिये हैं अतः कर्मयोगी को अपनी पूजा-आराधना इन महान् आत्माओं, भागवत पुरुषों की ओर प्रेरित करनी चाहिये। या फिर वह ईश की पूजा उसकी शक्ति में, अभीतक मानव मन ने उच्चतम वैश्व शक्ति के जिस सबसे प्रबल रूप को देखा है, उस दुर्गा-काली के रूप में कर सकता है। अगर वह रूपों को छोड़ सकता है तो वह स्वयं ईश के, उस सर्वशक्तिमान् प्रभु के विचार को पूज सकता है जिसकी आराधना हिंदू हरि के, ईसाई गॉड के और मुसलमान अल्लाह के रूप में करता है। और नास्तिक भी, यदि वह समस्त जीवन और अस्तित्व में काम करनेवाली महाशक्ति को पहचानता या स्वीकार करता है और अपने स्व और अपने कर्म को उस शक्ति की इच्छा और उसके उद्देश्यों को अर्पित करता है, अगर वह मनुष्यों में उस देव को स्वीकार करता है जिसे वह विश्व में स्वीकार करने से इंकार करता है और अपने-आपको अपनी जाति की निःस्वार्थ सेवा में लगा देता है तो उसने भी अपने चरण कर्मयोग के मार्ग पर रख दिये हैं और वह उस प्रभुतक पहुंचे बिना नहीं रह सकता जिसे वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्वीकार करता है। इस बात का कोई महत्त्व नहीं है कि कर्मयोगी किसी विशेष नाम या रूप को माने, उसे अपनी बृहत्तर आत्मा के रूप में स्वीकार करे जिसे जीत लेने के लिये उसे अपनी लघुतर आत्मा को खोना पड़ेगा। लेकिन जरूरी और महत्त्वपूर्ण यह है कि वह अपने अंदर और अपने बाहर एक शक्ति की उपस्थिति को स्वीकार करे जिसकी इच्छा और क्रियावली के विधान पर वह प्राकृतिक मनुष्य की अपनी इच्छा और अपनी आराधना को न्योछावर कर सके। वह इस शक्ति को जो नाम चाहे दे ले, वह उसे नाम दे या न दे, वह ईश ही है जिसकी उपस्थिति का अनुभव उसे इस विश्व की हर वस्तु और हर क्रिया के चारों ओर करना चाहिये।

३ —ईश और उसका विश्व :

इसके बाद हम '*वास्यम्*' शब्द को लें। इस सारे विश्व को ईश से वेष्टित होना चाहिये। हमें ईश की उपस्थिति के भाव को विश्व की हर वस्तु के चारों ओर लपेटना और ईश से घेर लेना चाहिये जैसा चोगा पहननेवाले के चारों ओर खिंचा होता है और उसे घेर लेता है। क्योंकि ईश अपने विश्व से बड़ा है। यह वृक्ष ईश नहीं है, वह ईश के अंदर है। हमें जड़वादी सर्वेश्वरवाद से बचना चाहिये जो दृश्य विश्व को परम सत्ता के साथ एक मानता है। यह सच है कि वह विश्व का अंतिम और भौतिक दोनों कारण है और एक अर्थ में वह अपना विश्व है और उसका विश्व स्वयं वह है। जैसे शेक्सपीयर के सृजन स्वयं शेक्सपीयर हैं, जिन्हें उसने अपनी चैत्य-सामग्री में से बुना है लेकिन फिर भी यह स्पष्ट है कि अगर हम इआगो को शेक्सपीयर से अभिन्न मानें तो यह भूल होगी। यह वृक्ष मूल आकाश में से विकसित हुआ है, आकाश में व्याप्त है और उसे चारों ओर से घेरे हुए है लेकिन पेड़ को आकाश नहीं कहा जा सकता और न ही आकाश को पेड़ ही कहा जा सकता है। अतः जरा गहराई में जाकर हम देखते हैं कि वह उस ईश के अस्तित्व से विकसित हुआ है जो उसे अपनी उपस्थिति से भरे हुए और घेरे हुए है, लेकिन वृक्ष ईश नहीं है, न ईश ही वृक्ष है। हिंदू मूर्त्तिपूजक नहीं है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह खम्भों या पत्थरों को नहीं पूजता, वृक्ष की वृक्ष के रूप में, पत्थर की पत्थर की रूप में या मूर्त्ति की एक जड़ वस्तु के रूप में पूजा नहीं करता। वस्तुतः वह भगवान् की उस उपस्थिति को पूजता है जो पेड़, पत्थर या मूर्त्ति को भरे हुए और घेरे हुए है या जिसकी पेड़, पत्थर और मूर्त्ति केवल अभिव्यक्तियां या दृश्यमान पात्र हैं। हम भाषा की और मानसिक उपलब्धि की सुविधा के लिये कहते हैं कि भगवान् अपनी सृष्टि में हैं परंतु सचमुच सृष्टि भगवान् के अंदर है, '*न त्वहं तेषु ते मयि,*' मैं उनमें नहीं हूं, वे मेरे अंदर हैं।

हम देखते हैं कि यूरोपीय विद्वानों का जब श्रुति के रूपकों से पाला पड़ता है तो वे एक विशेष कठिनाई से टकराते हैं, यदि हम अपने शास्त्रों को समझना चाहें तो हमें उस भूल से सावधानी के साथ बचना चाहिये। उनकी कठोर, तर्कसंगत, अनमनीय बुद्धि रूपक को उसके शाब्दिक अर्थों में जड़ देना चाहती है और इस तरह उपनिषद् के भाव के साथ उग्रतापूर्ण व्यवहार करके परिणामस्वरूप विजयोल्लास के साथ वे हमारी अपौरुषेन कृतियों की असंगतियों और असंबद्धताओं की ओर इशारा करके चिल्लाते हैं, "ये मानवजाति की बाल्यावस्था के कभी-कभी उदात्त परंतु साधारणतः बचकाने अनुमान हैं।" परंतु श्रुति के रूपक अधिक स्पष्ट रूप से समझने में केवल सहायक होते हैं, आशा की जाती है कि तुम उनके भाव को लोगे, शब्दों को पकड़कर न बैठ जाओगे। वे ऊपर चढ़ते समय हाथ को सहायता देनेवाली सुविधाएं हैं, ऐसे खूंटे नहीं जिनपर तुम अपना पूरा भार लटका सको। यहां एक रूपक है '*वास्यम्*', वस्त्र की तरह पहना दो। लेकिन वस्त्र पहननेवाले से भिन्न होता है और उतने स्थानतक सीमित होता है जहां वह समाता है। तो क्या ईश अपनी सृष्टि से भिन्न और अपनी सत्तातक सीमित है? शब्द तो यही है पर भाव इससे भिन्न है। हमें यह मानना चाहिये कि ईश की उपस्थिति जो अनंत है, वह प्रत्येक वस्तु को घेरे हुए है और उस वस्तु की सीमाओंतक सीमित नहीं है। वास्यम् की यही शक्ति है, इससे बढ़कर नहीं। जब हम पेड़ को देखते हैं तो यह नहीं कहते कि "यही ईश है", बल्कि कहते हैं, "यह है ईश।" पेड़ केवल उनके अंदर और उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा अस्तित्व धारण करता है। वे आकाश की तरह उसके अंदर और उसके चारों ओर हैं।

श्रुति कहती है कि इस सबके लिये यही मानो कि इसे ईश की उपस्थिति घेरे हुए है, '*सर्वमिदम्*'[1], वह सब जो हमारी इंद्रियों के आगे उपस्थित है वस्तुतः वह सब जिसे हम विश्व कहते हैं; लेकिन गलतफहमी से बचने के लिये उपनिषद् इस बात की ओर भी इशारा करता है कि केवल समूचा विश्व ही नहीं बल्कि विश्व में स्थित प्रत्येक वस्तु के लिये हमें यही अनुभव करना चाहिये कि वह दिव्य उपस्थिति से घिरी है, "*यत्किञ्च जगत्यां जगत्*",[2] सभी चीजें और हर चीज जो उसमें गति करती है, जो गति देती है। '*जगति*', वह जो गति करती है, प्राचीन संस्कृत में एक ऐसा शब्द था जो सारे विश्व के लिये चलता था, उसके बाद उसका अर्थ हो गया यह गतिशील पृथ्वी[3] विश्व का वह भाग जिसके साथ हम मानव प्राणियों का विशेष संबंध है और नपुंसकलिंग जगत्, 'वह जो गति करता है,' संसार और विश्व के लिये साधारण उपयोग का शब्द बन गया। लेकिन विश्व को "वह जो गति करता है" क्यों कहा गया? क्योंकि वह प्रकृति की क्रिया का परिणाम है, प्रकृति का दृश्यमान रूप है। ईश की महान् नारी-जातीय भौतिक शक्ति और प्रकृति का सारतत्त्व है गति, क्योंकि इस गति के द्वारा ही वह इस जड़ भौतिक जगत् का निर्माण करती है। वस्तुतः समस्त विषयगत सामग्री केवल एक रूप है अर्थात् गति का दृश्यमान, श्रव्य और इंद्रियगोचर परिणाम है। हर एक जड़ विषय-वस्तु वह है जिसे यहांपर जगत् कहा गया है; ठीकरी, पत्थर सब अनंत गति का जगत् है। हमारी इंद्रियां कहती हैं कि जड़ जगत् ही एकमात्र वास्तविकता है, एकमात्र स्थायी वस्तु जिसके नियम और जिसकी व्यवस्था के बारे में हम विश्वास कर सकते और उसके अनुसार चल सकते

[1] *सर्वं इदम्*—यह सब, जो कुछ यहां है। उपनिषद् में विश्व की गतिशीलता में लिये समस्त प्रपंच के लिये सामान्य प्रयोग है।

[2] *यत्किञ्च जगत्यां जगत्*—वैश्व गतिविधि में जो कुछ गति का व्यष्टिगत विश्व है।

[3] प्राचीन ऋषि जानते थे कि पृथ्वी गति करती है—चला पृथ्वी स्थिरा भाति—पृथ्वी चलती है परंतु स्थिर प्रतीत होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। लेकिन हमारी इंद्रियां भूल करती हैं और उपनिषद् हमें उनकी मिथ्या साक्षी के बारे में सावधान करता है। जड़ जगत् आध्यात्मिक सत् के महान् सागर, ब्रह्म की सतह पर एक क्षणिक और परिवर्तनशील भंवर है, केवल ब्रह्म ही है, वह अपनी गहराइयों में शाश्वत सद्वस्तु और स्थायी है। ईश के रूप में वही आज्ञा देता, शासन करता और उस अनंत गति को स्थायित्व प्रदान करता है जिसे हम विश्व कहते हैं। और अगर हम सद्वस्तु के साथ संपर्क में रहना चाहें तो हमें अपनी अंतरात्माओं को उसकी उपस्थिति के बारे में अभिज्ञ होने के लिये प्रशिक्षित करना चाहिये जो इस चलायमान प्रकृति का और साथ ही हर उस विषयगत रूप का, जिसे उसके स्पंदनों की बदलती हुई गतियां रूप देती हैं—पोषण करती है, उसमें व्यापक है और उसे घेरे हुए है। इस भांति सद्वस्तु के साथ सतत संपर्क में आकर कर्मयोगी प्रकृति के मिथ्या आभासों और भ्रांतियों से बच जायेगा; कर्म भी, जो प्रकृति की गति मात्र या क्रियाशील ऊर्जा है, उसपर अधिकार न कर पायेगा या जैसे तूफान जहाज को चक्कर खिलाता है उस तरह न कर पायेगा, बल्कि वह कर्मयोगी स्वयं अपने तथा औरों के कर्मों का स्वामी होगा। क्योंकि केवल क्रियात्मक रूप में किसी वस्तु की वास्तविकता और उसकी क्रिया के विधान को समझ कर ही व्यक्ति उसका स्वामी बन सकता है और स्वयं अपने प्रयोजन के लिये उसका उपयोग कर सकता है।

४—मनुष्यों और सभी प्राणियों में भगवान् :

लेकिन जब कर्मयोगी देख लेता है कि ईश सभी वस्तुओं को अपनी उपस्थिति से घेरे रहता है और सभी वस्तुएं इस दिव्य सद्वस्तु के अंदर केवल क्षणिक अभिव्यक्तियों, मूर्त्तियों या बिम्बों के रूप में रहती हैं तब इसके बाद? इसके बाद यह कि जैसे यह पेड़, वह पहाड़ दिव्य सद्वस्तु में केवल बिम्बों या अभिव्यक्तियों के रूप में अस्तित्व धारण करते हैं उसी तरह सभी प्राणी, जिनमें मनुष्यों की भी गिनती हो जाती है, उस एक दिव्य सद्वस्तु के अंदर केवल बिंब या अभिव्यक्तियां हैं। दूसरे शब्दों में मेरे और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हारे अंदर जो कुछ वास्तविक, जीवित और शाश्वत है वह हमारा शरीर नहीं, हमारा प्राण और उसकी कामनाएं नहीं, हमारा मन, हमारी तर्कबुद्धि और समझ नहीं, केवल भागवत उपस्थिति है जो मेरे, तुम्हारे अंदर उसी तरह व्यापक है जैसे पेड़ और पर्वत में। और हमारे अंदर ईश की उपस्थिति को शरीर, प्राण, मन, बुद्धि या समझ संस्थापित नहीं करते क्योंकि मेरा शरीर तुम्हारे शरीर से भिन्न है, मेरा प्राण तुम्हारे प्राण से भिन्न है, मेरा मन तुम्हारे मन से भिन्न है, मेरी बुद्धि और समझ तुमसे भिन्न है, काल और परिस्थितियों के अनुसार वे चीजें अपने-आपमें भी बदलती रहती हैं परंतु ईश एक और अपरिवर्तनशील है। अतः हमारे अंदर इनमें से भी किसी भी चीज की अपेक्षा कोई अधिक गहरी चीज होनी चाहिये, ऐसी कोई एकमात्र चीज होनी चाहिये जो वास्तविक, जीवंत और शाश्वत है। वेदांत में इस चीज को आत्मा कहते हैं, अपने समस्त प्राणियों में हर एक के भीतर यही ब्रह्म या ईश है। आत्मा अणु में वही है जो सच्चिदानंद विभु में है, महान्, शुद्ध, प्रकाशमान सत् है जो आत्म-सचेतन और आत्मानंदमय है, जो न तो कर्म करता है न कामना, केवल प्रकृति द्वारा अनुप्राणित किये हुए सृष्टि के जीवन में प्रकृति की अनंत लीला का अवलोकन करता है। और जैसे अविद्या की शक्ति में सच्चिदानंद महान् इच्छा या शक्ति की आकृति धारण करता है, ईश जगतों की अनंत बहुलता का निर्माण करता, उनपर शासन करता, उनका पथ-प्रदर्शन करता और उन जगतों की पारस्परिक लीला में आनंद लेता है; तो उसी शक्ति द्वारा मानव में वह आत्मा या साक्षी सर्वोच्च इच्छा का सादृश्य ग्रहण करता है, अपने लिये कर्म और अकर्म, हर्ष और पीड़ा, सुख, दुःख, विजय, पराजय का सादृश्य ग्रहण करता है, अपने अनुप्राणित किये हुए आभासी प्राणी का पथ-प्रदर्शन करता, उसपर शासन करता, उसकी क्रिया में आनंद लेता है परंतु वह अपने कर्मों से न तो प्रभावित होता है न बंधता है। यह इच्छा, जिसे वेदांत इच्छा नहीं, आनंद कहता है, इसे संकल्प-शक्ति या कामना न समझ बैठना चाहिये क्योंकि संकल्प-शक्ति बाह्य और आभासी मनुष्य की चीज है, आंतरिक और वास्तविक की नहीं। यह आत्मा मेरे अंदर है और तुम्हारे अंदर भी वही है और हर सत्ता के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंदर वही है और सबके अंदर एक वही आत्मा है, बस फर्क इतना ही है कि इच्छा या शक्ति अलग-अलग मात्राओं में अलग-अलग तीव्रता में, काम करने के अलग-अलग ढंग में प्रकट होती है और इस कारण हर प्राणी में भिन्न गुणों और भिन्न क्रिया में प्रकट होती है। इसी कारण वस्तुतः एक तथा अविभाज्य में भिन्नता और विभाज्यता दिखायी देती है।

अविभाज्य की यह विभाज्यता वैदांतिक विचार के उन गहरे विरोधाभासों में से है जो बढ़ते हुए ज्ञान के साथ गहरे और व्यापक सत्य दिखायी देंगे। पहले इस बात पर पूरा विश्वास किया जाता था कि मानव व्यक्तित्व एक और अविभाज्य है; लेकिन अभी हाल में मनोवैज्ञानिकों का एक संप्रदाय उठ खड़ा हुआ है जो मानता है कि मनुष्य विभिन्न प्रकार के व्यक्तित्वों की पोटली है, एक, समजातीय और अविभाज्य चेतना नहीं है। क्योंकि यह पता चला है कि एक व्यक्ति अपने-आपको विभिन्न व्यक्तित्वों में विभाजित कर सकता है, यह हो सकता है कि हर एक अपना-अपना ही जीवन जिये और दूसरों के बारे में अनभिज्ञ रहे। और इसके अतिरिक्त उसमें एक और ऐसा व्यक्तित्व भी पैदा हो सकता है जो और सबसे अलग होते हुए भी उनसे सचेतन हो। यह सच है। फिर भी मनुष्य हमेशा केवल शरीर में ही नहीं बल्कि अपनी चैत्य सत्ता में भी एक और समान बना रहता है। क्योंकि उसके अंदर एक गभीरतर अधःस्तर होता है जो इन सब विभक्त व्यक्तित्वों के नीचे फैला रहता है और उन सबसे अधिक विस्तृत होता है। सच्ची बात तो यह है कि जाग्रत् व्यक्तित्व वास्तविक नहीं, आभासी मनुष्य है। व्यक्तित्व स्मृति की रचना है क्योंकि स्मृति ही उसका आधार और उसकी पीठिका है। तो अगर पीठिका को विभाजित करके अलग-अलग कर दिया जाये तो अधिरचना को भी उसी क्रिया द्वारा विभाजित करके अलग-अलग किया जाना चाहिये। लेकिन जाग्रत् स्मृति एक विशालतर और प्रच्छन्न स्मृति का एक भाग, उसका एक चयन मात्र है जिसने मनुष्य के वर्तमान ही नहीं बल्कि उसके भूतकाल की समस्त घटनाओं का सही-सही अंकन किया है। वह व्यक्तित्व जो उस प्रच्छन्न निर्भ्रान्त स्मृति के साथ मेल खाता है वही मनुष्य का सच्चा व्यक्तित्व है; यह उसकी अंतरात्मा है, अनंत और अविभाज्य, और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके आभासी विभाजन केवल जाग्रत् स्मृति के त्रुटिपूर्ण कर्म के कारण अविद्या, मिथ्या-ज्ञान के परिणाम हैं। तो दिव्य आत्मा का अनेक मानव आत्माओं में विभाजन, अविभाज्य परमात्मा का अनेक जीवात्माओं में विभाजन केवल अविद्या या ईश द्वारा स्वयं अपने ऊपर आरोपित भ्रम की क्रिया का परिणाम है। ईश वह महान् शक्ति है जिसने इच्छा की कि "एक" इस माया की शक्ति से प्रतीयमान रूप में बहुमुखी हो जाये। वास्तव में कोई विभाजन नहीं है, मेरे अंदर जो आत्मा है वह वही आत्मा है जो तुम्हारे अंदर है और उधर सूर्य में भी है। आध्यात्मिक जीवन का ऐक्य सभी सच्चे धर्मों और सच्ची नैतिकता का आधार है। निश्चय ही हम जानते हैं कि जैसे भगवान् अपनी सृष्टि में समाये हुए नहीं हैं बल्कि सृष्टि उनके अंदर समाई हुई है उसी तरह भगवान् मनुष्य के अंदर समाये हुए नहीं हैं। जब श्रुति किसी और स्थल पर कहती है कि पुरुष हमारी सत्ता के हृदय में सोया हुआ है और अंगुष्ठ मात्र से बड़ा नहीं है तो इसका मतलब केवल यह होता है कि अविद्या के अधीनस्थ व्यक्ति के मन के लिये उसका शरीर, उसका प्राण, मन, बुद्धि इतने अधिक बड़े हैं कि आत्मा एक छोटी, अविभेद्य चीज मालूम होती है जो बहुत-से कोषों और आवरणों में छिपी है। लेकिन वस्तुतः प्रतीयमान मनुष्य को रूप देनेवाले शरीर, प्राण, मन और बुद्धि तुच्छ और नगण्य से हैं और आत्मा या सच्चा मनुष्य महान्, विशाल और प्रबल है। यथार्थ प्रतीयमान मनुष्य में नहीं बल्कि प्रतीयमान मनुष्य यथार्थ के अंदर तथा उसके द्वारा अस्तित्व रखता है; शरीर अंतरात्मा के अंदर है, अंतरात्मा शरीर के अंदर नहीं। फिर भी भाषा की सुविधा और अपनी सीमित समझ के लिये हम यह कहने के लिये बाधित हैं कि आत्मा शरीर में है और भगवान् मनुष्य के अंदर; क्योंकि इसी तरह वह अपने-आपको हमारे आगे—जो मानसिक दृष्टिबिंदु और सांत समझकर उपयोग करते हैं—प्रस्तुत करते हैं। हमारे दृष्टिकोण से ईश अपने सभी प्राणियों के अंदर निवास करते हैं और वे ही अपने सभी प्राणियों की सत्य-आत्मा हैं। मेरी आत्मा और तुम्हारी आत्मा सचमुच दो नहीं, एक ही हैं। यह दूसरा सत्य है जो युक्तियुक्त रूप से पहले से आता है जिसे कर्म-योगी को मजबूती से पकड़े रखना चाहिये।

(क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोसायटी समाचार

२१ फरवरी १९९० को माताजी का ११२वां जन्म-दिन था। आश्रमवासियों और दर्शनार्थियों ने सवेरे ही सवेरे माताजी को श्रद्धांजलि अर्पित की। १० से १०.३० तक ध्यान हुआ। कृष्णलाल के एक चित्र के साथ माताजी का यह संदेश बांटा गया, "काल की परवाह किये बिना, देश के भय के बिना, अग्नि-परीक्षा की ज्वालाओं में से शुद्ध होकर निकलते हुए हम अपने लक्ष्य, अतिमानसिक विजय की ओर रुके बिना उठते चलेंगे।"

इस अवसर पर सोसायटी की बहुत-सी शाखाओं में विशेष कार्यक्रम किये गये।

दण्डेली (कर्णाटक) में श्रीअरविंद तथा माताजी केन्द्र—सोसायटी की एक शाखा—ने १६, १७ दिसम्बर को अपनी रजत जयन्ती मनायी जिसमें बहुत-से लोगों ने भाग लिया। श्रीअरविंद और माताजी के बारे में स्थानीय दूरदर्शन पर वीडियो दिखाये गये।

श्रीअरविंद के पवित्र अवशेष २५ दिसम्बर को हनमकुण्डा (आन्ध्र प्रदेश) की सोसायटी में पधराये गये। माताजी के अनुसार २५ दिसम्बर प्रकाश का जन्म-दिन है। इस अवसर पर आन्ध्र प्रदेश के बहुत-से केन्द्रों के प्रतिनिधि उपस्थित थे। पांडिचेरी से अश्विन भाई महादेविया गये थे।

हमारी बंगलोर शाखा की ओर से ३३ सदस्य पांडिचेरी आश्रम की यात्रा करने गये थे।

सोसायटी के प्रधान सचिव श्री किशोरीलाल ढांढणिया गोआ के अनेक स्थानों में सोसायटी का काम देखने गये थे। वहां की सरकार ने हमारी पानाजी शाखा के पुस्तकालय के लिये बारह हजार रूपये का अनुदान दिया।

श्री गोपाल भट्टाचार्य ने अगरतला, त्रिपुरा आदि का भ्रमण किया और वहां के लोगों को आश्रम तथा यहां की शिक्षा-प्रणाली की जानकारी दी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैदराबाद शाखा ने पहली जनवरी को 'आदर्श बालक' की प्रतियां बांटी। तेनाली शाखा ने मोमबत्तियां जलाकर और फूल वितरित करके उच्चतर जीवन के लिये अभीप्सा व्यक्त की।

मद्रास के अन्तर्राष्ट्रीय नारी संघ के तत्त्वाधान में ११ जनवरी को श्री शंकर नारायण ने 'भावी विकास में नारी का स्थान' और 'दैनिक जीवन में योग' विषयों पर भाषण दिये।

घोषणाएं

अध्यापकों, शिक्षकों, माता-पिता आदि के लिये २२ मई से २ जून, १९९० तक एक शिक्षा शिविर का आयोजन होगा जिसमें माताजी और श्रीअरविंद के प्रकाश में शिक्षा के विषय में भाषण, स्पष्टीकरण और बातचीत का कार्यक्रम होगा। जो लोग इसमें भाग लेना चाहें उन्हें रहने-खाने का खर्च तो अपने-आप करना होगा, जो लोग अपनी स्थानीय सोसायटी की सिफारिश लेकर आयेंगे उनके लिये कुछ सुविधा देना संभव हो सकेगा। जो इसमें भाग लेना चाहें उन्हें १५ मई से पहले अपना आवेदन-पत्र, पेशगी ५० रुपये के साथ भेजना चाहिये। पत्र-व्यवहार श्री अश्विनी महादेविया, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२ से किया जाये।

आन्ध्रप्रदेश की सोसायटी का द्विवार्षिक शिविर पंजेन्द्र; कृष्णा जिले में ८ से १० अप्रैल तक होगा।

उत्तरप्रदेश में दो नये केन्द्र खुले हैं: एक, ज्ञान ज्योति विद्या मन्दिर आगरे में, दूसरा, रायपुर भसरौल, जिला फतेहपुर में।

पुरुलिया (बंगाल) में कुछ ऐसे अध्यापकों की जरूरत है जिन्हें माताजी की शिक्षा-पद्धति में रस हो। उन्हें रहने-खाने का खर्च और कुछ जेब-खर्च मिल सकेगा। इच्छा रखनेवाले अध्यापक अपने आवेदन-पत्र सचिव, श्रीअरविंद सोसायटी, बी० टी० सरकार रोड, पुरुलिया-७२३१०२ के पास भेजें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तपेदिक के विरुद्ध अभियान

1. यदि आपको लगातार दो हफ्तों से भी अधिक समय से खांसी है या थूक में खून आता है, तो हो सकता है, आपको फेफड़ों की तपेदिक हो।

2. अपने नजदीकी प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, औषधालय या तपेदिक केन्द्र पर स्वयं की, विशेष कर अपने थूक की, जांच कराए।

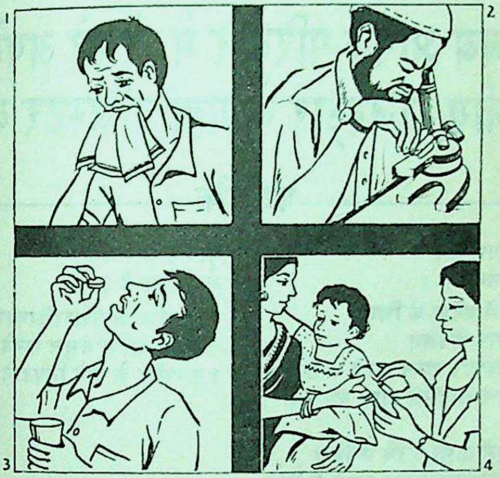

3. तपेदिक का इलाज किया जा सकता है, बशर्ते डाक्टर द्वारा बताई गई दवाइयां नियमित रूप से निर्धारित अवधि तक ली जाएं।

4. बचाव हमेशा इलाज से बेहतर है। इसलिए अपने बच्चे को बी.सी.जी. का टीका लगवाएं।

केन्द्रीय स्वास्थ्य शिक्षा ब्यूरो (स्वास्थ्य सेवा महानिदेशालय)
स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय,
कोटला रोड, नई दिल्ली- 110002

davp 89/1023 HINDI

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म या मृत्यु

जब आपके परिवार में हो तो अपने स्थानीय रजिस्ट्रार के यहां रजिस्टर कराएं

क्योंकि

जन्म प्रमाण-पत्र
उम्र का सबूत है :

* स्कूल में प्रवेश के लिए
* रोजगार के लिए
* मताधिकार प्राप्त करने के लिए
* ड्राईविंग लाइसेंस प्राप्त करने के लिए
* पासपोर्ट प्राप्त करने के लिए
* बीमा पालिसी प्राप्त करने के लिए

मृत्यु प्रमाण-पत्र
आवश्यक है :

* सम्पत्ति के उत्तराधिकार के लिये
* बीमा राशि वसूल करने के लिए
* सम्पत्ति के दावे निपटाने के लिए

समय पर रजिस्टर कराएं और प्रमाण-पत्र निःशुल्क प्राप्त करें

जन्म और मृत्यु रजिस्ट्रीकरण कानूनन जरूरी है ।
विलम्ब रजिस्ट्रीकरण की भी अनुमति है ।

महारजिस्ट्रार, भारत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबसे पहली चीज होनी चाहिये 'शांति'। तुम जो कुछ करो उसे शांतिपूर्ण तरीके से करना चाहिये।

सहारनपुर सर्विस स्टेशन

पैट्रोल पम्प, देहरादून रोड

सहारनपुर–२४७००१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
Registered with the Registrar of Newspapers for India
No. R. N. 18135/70

REGD. No. M. 8731

"The constant remembrance of the Divine is indispensable for transformation."

— THE MOTHER

With Best Wishes from:

MRS. KOYAL DEORAH CHARITABLE TRUST

28, VARSHA, 69/B, NEPEANSEA ROAD

BOMBAY - 4000 006

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्निशिखा

अखिल भारतीय पत्रिका

मई १९९०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मई १९९० वर्ष २०, अंक १०, पूर्णांक २३८

विषय-सूची

सन्देश		१
'संपादकीय': बुद्धि की बलिहारी	अनुबेन	२
एक पाठक के नाम पत्र	अनुबेन	३
दैनन्दिनी		५
कर्मयोगी (ईशोपनिषद् पर भाष्य)	श्रीअरविन्द	८
स्फुट वचन		३८
सोसायटी समाचार		३९

आपका अग्निशिखा/पुरोधा का चंदा ... में समाप्त हो रहा है। कृपया अग्निशिखा के १० और पुरोधा के १४ शीघ्र भेजें अन्यथा अगला अंक वी. पी. पी. से जायगा। वी. पी. पी. लौट आने से हमें बहुत हानि होती है। अलग अनुस्मारक नहीं भेजा जायगा। कृपया चेक न भेजें। चाहें तो २२५ और २७५ एक साथ या किस्तों में देकर अग्निशिखा और पुरोधा के या ५०० देकर दोनों के आजीवन सदस्य बन सकते हैं।

अग्निशिखा वार्षिक १०.०० आजीवन २२५.००

श्रीअरविंद सोसायटी की मासिक पत्रिका

संपादक: रवींद्र, अनुबेन

प्रकाशक: श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी–६०५००२

मुद्रक: अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी–६०५००२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि

संदेश

Sri Aurobindo has come on earth not to bring a teaching or a creed in competition with previous creeds or teachings, but to show the way to overpass the past and to open concretely the route towards an imminent and inevitable future.

22 February 1967

The Mother

श्रीअरविन्द पुराने मतों या शिक्षाओं के साथ प्रतियोगिता करने के लिये कोई शिक्षा या मत लाने के लिये धरती पर नहीं आये हैं, बल्कि वे अतीत का अतिक्रमण करने का रास्ता दिखाने और सन्निकट और अनिवार्य भविष्य की ओर ठोस रूप में मार्ग खोलने आये हैं।

२२ फरवरी १९६७

—श्रीमां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संपादकीय

बुद्धि की बलिहारी

गुजरात के जाने-माने कवि ने अपनी एक कविता में मनुष्य को सृष्टि के सब प्राणियों में श्रेष्ठ बताते हुए उसे "सृष्टि के बगीचे का सर्वश्रेष्ठ पुष्प गुलाब", कहा है। "हुं मनुष्य, सृष्टि बागनुं गुलाब . . . " मनुष्य कुछ मायनों में, खासकर बुद्धि-कौशल में अन्य प्राणियों से आगे तो है लेकिन उसकी झलक हमें अभी दक्षिण भारत के एक त्यौहार में मिल गयी।

फसल काटने के बाद जनवरी की चौदह तारीख को लोग आंगन में गन्ने के रस और पानी में चावल पकाते हैं, नये वस्त्र पहनकर मंदिर जाते हैं और भगवान् को अच्छी फसल के लिये धन्यवाद देते हैं। दूसरे दिन गाय, बैल को बढ़िया खाना देते हैं, सींगों को रंगते हैं, गले में घण्टी और फूलों की माला पहनाकर उन्हें घुमाते हैं, उस दिन पशुओं से कोई काम नहीं करवाया जाता। इस त्यौहार के साथ एक कहानी जुड़ी है।

कहा जाता है कि हर रोज रात को गाय और बैल परम शिव के पास जाकर आंसू बहाते थे, वे कहते थे कि उनका मालिक मनुष्य उन्हें पीटता है, उनसे बहुत काम करवाता है और प्रायः भूखा रखता है। इन पशुओं की रोज-रोज की शिकायत सुन शिवजी उनको आश्वासन देते और कहते, "धैर्य धरो, मैं एक दिन आकर देखूंगा।" धूर्त मनुष्य ने सुन लिया कि कल शिवजी पशुओं की स्थिति देखने आ रहे हैं। झट उसने अपने पशुओं का सिंगार किया, अच्छा-अच्छा चारा दिया और काम कुछ नहीं करवाया। शिवजी ने दूसरे दिन गाय, बैल से कहा, "मनुष्य तो तुमको बहुत अच्छी तरह रख रहा है। बेकार शिकायत क्यों करते हो?" उस दिन से यह त्यौहार चल पड़ा।

यही है मनुष्य की बुद्धि की बलिहारी। आज भी वह बुद्धि का ऐसा ही उपयोग करता है न?

—अनुबेन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक पाठक के नाम पत्र

प्रिय राजू,

आपका पत्र पढ़कर प्रसन्नता और दुःख दोनों हुए। प्रसन्नता इस बात की कि 'पुरोधा' और 'अग्निशिखा' ध्यान से पढ़नेवाले एक पाठक से परिचय हुआ और दुःख इसलिए कि आपका जीवन बिना कारण व्यर्थ बन रहा है।

आपने लिखा है, "मनुष्य कुछ भी नहीं केवल 'उसके' इशारे पर नाचनेवाली कठपुतलियां है।" साधारणतः मनुष्य यही मानता है कि वह भगवान् के नचाये नाचता है, वास्तव में भगवान् ने मनुष्य को वह क्या करेगा और क्या न करेगा उसका अधिकार दिया है। लेकिन चूंकि मनुष्य सजग नहीं होता और जानता तक नहीं कि उसका पूरा नहीं किंतु कम-से-कम आंशिक रूप से अपने जीवन को बनाने का अधिकार है, वह अपनी इच्छा और आवेगों के वश में आकर कभी इधर तो कभी उधर दौड़ता रहता है। प्रत्येक मनुष्य के चारों ओर सच्चे जीवन की ओर ले जानेवाली शक्तियां और भटकानेवाली शक्तियां मंडराती रहती हैं। और मनुष्य के अपने अंदर सोचने की क्षमता और चुनने की क्षमता है। दुःख की बात यह है कि अधिकतर मनुष्य अपने इस विवेक से काम लेने की जगह आवेगों और इच्छाओं के पीछे अंधाधुंध दौड़ते रहते हैं। परिणाम यह होता है कि अधिकतर मनुष्य बहुत देर में जागते हैं और पछताते हैं।

दुःखी होने और पछताने की जगह जैसे माताजी ने कहा है, "It is never too late to start" याद रखकर हम नये सिरे से जिन्दगी को शुरू कर सकते हैं।

भगवान् ने हर मनुष्य को कुछ न कुछ काम करने के लिये धरती पर भेजा है, फिर वह काम भले झाड़ू लगाना या पत्थर उठाना हो।

आपके लिये सबसे अच्छा उपाय यही है कि प्रत्येक दिन अपने-आपको याद दिलायें कि आप भगवान् को समर्पित एक मनुष्य हैं। आप जो भी काम करें यही सोचकर करें कि इस काम के द्वारा मैं भगवान् की सेवा कर रहा हूं; यहांतक कि जब स्नान या भोजन करें तब भी यही सोचें कि यह भगवान् की दी हुई एक मशीन है जिसे मैं साफ रखता हूं और पोषण देता हूं। आप जो कुछ भी करें यही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुभव करें कि भगवान् आपको देख रहे हैं और तब आप देखेंगे कि कई काम आप कर ही न पायेंगे क्योंकि ऐसे काम के लिये भगवान् अनुमति नहीं देंगे। इससे आप बहुत-से अनावश्यक और बुरे कामों से बच जायेंगे।

आपने लिखा कि आपका एक लक्ष्य है, परम पिता को खोजना। उसके लिये हमारा सुझाव है कि रोज निश्चित समय पर कहीं खुले स्थान में बैठकर अपने मन को शांत कर ध्यान करें। इससे आपके मन को बल और शांति मिलेगी और धीरे-धीरे आप अपने-आपको पहचानने लगेंगे। कोई भी काम करने से पहले रुक कर अपने-आपसे पूछिए, "यह काम मुझे भगवान् के पास जाने में सहायता देगा ?" हमारा अनुभव यह कहता है कि हर काम के द्वारा भगवान् तक पहुंचा जा सकता है। आपको शबरी की कहानी तो मालूम ही होगी, उसने मातंग ऋषि के आश्रम में झाड़ू लगाते हुए यही अभीप्सा की कि किसी दिन उसे भगवान् के दर्शन हों। वर्षों बाद उसकी इच्छा पूरी हुई। तो कोई भी काम और हर काम भगवान् को पाने में सहायक हो सकता है। आप अध्यापक हैं, पढ़ाते समय अच्छे-से-अच्छी तरह पढ़ाइये, हरएक बच्चे को अपना परिजन समझिये और क्या पता इसी के द्वारा भगवान् मिल जायें।

हम लोगों ने अनुभव से पाया है कि—(१) सबसे पहले अंदर शांति को स्थापित करना चाहिये। (२) हर रोज भगवान् से प्रार्थना करनी चाहिये कि वे हमें बालक के रूप में स्वीकार करें अर्थात् हम अपने-आपको और अपने कार्यों को समर्पित करते रहें। (३) हर समय जाग्रत् रहें और कुछ भी करने से पहले अपने-आपसे पूछें, इस कार्य से भगवान् प्रसन्न होंगे या वे मुझे प्राप्त होंगे ? और सचाई से अगर पूछा जाये तो हमेशा सही उत्तर मिलता है। फिर हमें उस उत्तर के अनुसार ही कार्य करना चाहिये। लेकिन यह इतना आसान नहीं है। सच्चा मार्ग जानने के बाद भी उसपर चलना कठिन है। (४) रात को सोने से पहले सारे दिन के कार्यों पर एक नजर डालें और देखें कि कब आप गिरे और कब आपने सफलता पायी। सोने से पहले भगवान् से प्रार्थना करें कि दूसरे दिन आपको अधिक सफलता प्राप्त हो। आपके लिये अब इस समय इतना ही काफी है।

भवदीया—
अनुबेन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दैनन्दिनी

मई

१. प्रत्येक साधक को यह याद रखना चाहिये कि वह अकेला नहीं है।

२. लोग क्या हैं और उन्हें क्या होना और करना चाहिये इसके बीच बहुत अन्तर है। चेतना इसके बारे में पूरी तरह अभिज्ञ है और वह सदा ठीक करने और बदलने के लिये काम करती रहती है।

३. महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हम जिस आदर्श को चरितार्थ करना चाहते हैं उसे कभी नजर से ओझल न होने दें और इस आदर्श की दृष्टि से प्रत्येक परिस्थिति का लाभ उठायें।

४. तुम्हें हर समय समस्त सहायता मिलती रहती है, लेकिन तुम्हें उसे अपने हृदय की नीरवता में ग्रहण करना सीखना चाहिये।

५. तुम्हारे हृदय की नीरवता में ही भगवान् तुम्हारे साथ बोलेंगे, तुम्हें रास्ता दिखायेंगे और तुम्हारे उद्देश्यतक ले जायेंगे।

६. लेकिन उसके लिये तुम्हें भागवत कृपा और प्रेम पर पूरी श्रद्धा होनी चाहिये।

७. मन को विश्राम करने दो ताकि प्रकाश उसमें से गुजर सके।

८. जब हम कटु हो जाते हैं तो अपना दिव्य संपर्क खो बैठते हैं।

९. बहुत सावधान रहो कि कोई भी प्रभाव मुझपर तुम्हारे विश्वास को कम न कर पाये और किसी चीज या किसी व्यक्ति को अपने-आपको मुझसे अलग न करने दो।

१०. योग के लिये पहली शर्त है निश्चल और स्थिर रहना।

११. हमारे लिये यहां बस एक ही चीज की गिनती है, हम भगवान् के लिये अभीप्सा करें, भगवान् के लिये जियें और भगवान् के लिये ही कर्म करें।

१२. पूर्ण समर्पण बाहर से नहीं लादा जाता लेकिन वह उन लोगों के लिये अनिवार्य है जो डटे रहना चाहते हैं, लेकिन बहुत-सी चीजें समर्पण की सचाई की कसौटी करने के लिये आती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१३. फिर भी भागवत कृपा और सहायता हमेशा उन लोगों के लिये उपस्थित रहती है जो उनके लिये अभीप्सा करते हैं, और अगर उन्हें श्रद्धा और विश्वास के साथ ग्रहण किया जाये तो उनकी शक्ति असीम होती है।

१४. भगवान् केवल उन्हींकी रक्षा कर सकते हैं जो पूरे हृदय से भगवान् के प्रति निष्ठावान् हैं।

१५. जो सचमुच साधना-भाव में रहते हैं और अपनी चेतना और तल्लीनता को भगवान् और भगवान् की सेवा में लगाये रहते हैं उन्हींको भगवान् की रक्षा प्राप्त होती है।

१६. आध्यात्मिक जीवन की मांग है कि तुम पूरी तरह भगवान् में और भगवान् ही में लगे रहो।

१७. तुम जो कुछ करो भगवान् के लिये ही करो, सभी कार्य, सभी अभीप्साएं, बिना अपवाद के सब कुछ भगवान् की ओर अभिमुख हो और हो सत्ता के समर्पण के साथ।

१८. किन्हीं भौतिक परिस्थितियों की अपेक्षा आदर्श के प्रति निष्ठा और कार्य के प्रति समर्पण आदमी को सच्चा शिष्य बनाता है।

१९. इसके लिये चार गुण अनिवार्य हैं, सचाई, निष्ठा, विनय और कृतज्ञता। इनके बिना प्रगति अनिश्चित रहती है और बार-बार बाधाएं आती रहती हैं और कष्ट आते रहते हैं, आदमी पहले अवसर पर ही गिर जाता है।

२०. अगर तुम दिव्य शक्ति के योग्य यंत्र बनना चाहो तो तुम्हें अपने-आपको पूर्णतया शुद्ध बनाना होगा।

२१. दिव्य शक्ति केवल पूर्णतया दिव्यभावापन्न यंत्र में ही अपनी पूरी शक्ति और पूरा प्रभाव प्रकट कर सकती है।

२२. हमारे योग के अनिवार्य आधार हैं, सचाई, ईमानदारी, निःस्वार्थ भाव, चरित्र की उदारता और निष्कपटता, जो कार्य हमें करना है उसके प्रति अनासक्त समर्पण।

२३. हमारा पथ सरल नहीं है, इसमें बहुत साहस और अनथक सहज शक्ति की जरूरत होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभी व्यस्तताओं के बीच परमेश्वर को साथी के रूप में रखकर स्वतंत्र रहना जानना चाहिये।

२४. परिणाम पाने के लिये तुम्हें कड़ी मेहनत करनी पड़ती है और शांत स्थिरता के साथ प्रयास करना होता है और कई बार परिणाम बाहरी दृष्टि से मुश्किल से दिखायी देते हैं।

मुसीबतों को जीतने के लिये उनसे भागना कोई हल नहीं है।

२५. ऐसे बहुत-से मनुष्य होते हैं जिन्हें अपने-आपको साफ करने की जरूरत अनुभव करने के लिये दलदल में लोटना पड़ता है।

२६. अग्रगामी होने के लिये तुम्हारे अंदर शूरता होनी चाहिये क्योंकि सामान्यतः मनुष्यों को उसीपर विश्वास होता है जिसे वे पहले ही प्राप्त कर चुके हों, जो स्पष्ट और दिखायी देनेवाली हो।

२७. मैं नहीं चाहती कि कोई हथियार डाले, मैं चाहती हूं कि हर एक अपना अतिक्रमण करे।

२८. एकमात्र सहायता है श्रद्धा।

२९. मैं श्रीअरविंद की तरह कहूंगी कि चेतना को बदले बिना वास्तव में कुछ भी नहीं हो सकता।

३०. मैं हर एक से आशा करती हूं कि वह अपनी अधिक-से-अधिक क्षमता के अनुसार अच्छे-से-अच्छा प्रयास करे।

३१. और भगवान् के काम के महत्त्व पर आंखें जमाये रखनी चाहियें जिससे व्यक्ति को निजी कठिनाइयों में निश्चित रूप से सहायता मिल सके।

*
**

जिस प्रकार पारस पर सोने और पीतल को रगड़कर धातु का गुण परखा जाता है, उसी प्रकार विपत्ति और अत्याचार के पारस पर रगड़े जाने पर सच्चे साधु और पाखंडियों के फर्क का पता लग जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्मयोगी

(गतांक से आगे)

५—निःस्वार्थता, कर्मयोग का आधारभूत नियम

एकमात्र दिव्य परमार्थ तत्त्व के आधारभूत सत्य से, जो समस्त दृश्य वस्तुओं में व्यापक और उसको घेरे हुए है, तथा इसके अन्तर्निहित परिणाम यानी मेरी और तुम्हारी आत्मा के तादात्म्य से उपनिषद् कर्म का एक ऐसा नियम बनाता है जो सभी कर्मयोगियों के लिये उपयोगी है। "जगत् का त्याग कर दो ताकि तुम उसे भोग सको, किसी और के धन के लिये लोभ न करो।" जो अपनी अन्तरात्मा की रक्षा करना चाहता है उसे पहले उसे खोना होगा, जो जगत् का भोग करना चाहता है उसे पहले उसे त्यागना होगा। इस तरह उपनिषद् एक बौद्धिक विरोधाभास से नैतिक विरोधाभास की ओर जाता है, लेकिन फिर भी दोनों गहरे और यथार्थ सत्य के निरूपण हैं। पहले तर्क-बुद्धि ऐसी आत्म-विरोधी स्थापना के विरुद्ध विद्रोह करती है, अगर मैं अपने भोजन को अपने से दूर रख दूं तो मैं उसका भोग कैसे कर सकता हूं? अगर मैं अपने हाथ की अशर्फी को फेंक दूं तो कोई और तो उसे पाने का आनन्द पा सकता है पर मैं कैसे पा सकता हूं? मुझ देवदत्त से कहा जाता है कि सारे जगत् का भोग करूं, हां, जगत् में जो कुछ है उस सबका भोग करूं लेकिन मैं देखता हूं कि मेरे पास भोगने लायक है ही बहुत कम जब कि मेरे पड़ोसी हरिश्चन्द्र के पास अनगिनत संपदा है। अगर मुझे जगत् को भोगना है तो मैं अपने उद्देश्य की ओर कैसे बढ़ूं? निश्चय ही उस थोड़े-बहुत को भी त्याग कर नहीं जो मेरे पास है, बल्कि उसे अच्छी तरह कब्जे में रखकर जो मेरे पास है और उसमें वह जोड़कर जो हरिश्चन्द्र के पास है। प्राकृतिक मनुष्य यही युक्ति देगा और उसकी दृष्टि से यह है भी तर्क-संगत, लेकिन कर्मयोगी यह युक्ति न देगा। वह किसी की धन-संपदा पर लालचभरी दृष्टि न डालेगा क्योंकि वह जानता है कि उसे जो गुप्त तथा महान् सत्य हस्तगत हुआ है उसके प्रकाश में संपदा, मेरी, तेरी आदि गलत तथा भ्रामक परिभाषाएं हैं। उसने पाया है कि सारे संसार में कोई भी यथार्थ, वांछनीय आनन्द के नाम से पुकारे जाने योग्य वस्तु नहीं है—अपवाद है एक ब्रह्म, वस्तुओं की शाश्वत परमार्थता। आत्म-तुष्टि और संपदा पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिकार करना और उसे भोगना क्षणिक और भ्रामक है और उनके साथ अनिवार्य दुःख और कष्ट रहते हैं, परन्तु ब्रह्म के साथ तादात्म्य का रस लेना और उसे प्राप्त करना शुद्ध, कभी क्षुब्ध न होनेवाला आनन्द है। मैं उसे जितना अधिक प्राप्त कर सकूं उतना ही अधिक और पूर्णता के निकट होगा मेरा आनन्द। तो ब्रह्म ही एकमात्र संपदा है जिसके लिये कर्मयोगी लालसा करेगा, लेकिन हम ब्रह्म पर अधिकार कैसे कर सकते हैं? दुनियाभर की सभी चीजों को 'उससे' घेर कर, सभी चीजों में उसका अनुभव कर के। अगर मैं धनवान् हूं तो मेरे ईश उस धन में विद्यमान हैं, लेकिन अगर मैं गरीब हूं तो ईश मेरी गरीबी में भी हैं। उनकी उपस्थिति के कारण मैं अपनी गरीबी में भी वही रस ले सकता हूं जो मैंने धन-संपदा में लिया था, क्योंकि धन-संपदा या शक्ति का मूल्य नहीं है, वे वास्तविक नहीं हैं परन्तु मूल्य है सभी वस्तुओं में ईश की उपस्थिति अनुभव करने का। यह एक तरीका है जिससे मैं जगत् को त्याग कर उसका भोग कर सकता हूं; क्योंकि जगत् ब्रह्म है, जगत् ईश है और जिसने इसका अनुभव कर लिया है उसके लिये सभी चीजें आनन्द हैं, सभी चीजें भोग हैं। तब फिर दूसरों की धन-संपदा पर लोभभरी नजर डालने का कारण ही क्या रह गया? हरिश्चन्द्र के पास इतना अधिक सोना, इतने मकान इतनी जमीन-जायदाद और सरकारी कागज हैं लेकिन मैं देवदत्त अपनी कुटिया में सारे विश्व के स्वामी से युक्त हूं और सारे जगत् का स्वामी और भोक्ता हूं। सचमुच मैं समृद्ध हूं, हरिश्चन्द्र नहीं। कर्मयोगी के लिये उसकी साधना की यही परिपूर्त्ति है।

अब हम जरा निचली सीढ़ियों पर उतरें। मैं अभीतक जीने के ऊपर नहीं चढ़ा हूं, चढ़ रहा हूं। मैंने अभीतक सभी वस्तुओं को घेरे हुए ईश की उपस्थिति को एकमात्र सद्वस्तु माननेवाली अभ्यासगत चेतना प्राप्त नहीं की है जिसके हेतु ही सभी क्षणिक प्रपञ्च मूल्यवान् या वांछनीय हैं। विकास की इस अधकचरी स्थिति में कर्मयोगी अन्यों की धन-संपदा के लिये लोभ और कामना से कैसे बच सकता है? निःस्वार्थ कर्म और निःस्वार्थ मन की आदत के परम आनन्द को अधिकाधिक चरितार्थ कर के। उसके लक्ष्य का यही रास्ता है, यही उसकी सीढ़ी है। साधारणतः यह कल्पना की जाती है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निःस्वार्थता आत्मा का त्याग, एक कष्टकर कर्तव्य, एक आत्मपीड़न है जो कुछ नकारात्मक, कष्टप्रद और क्लेशकर चीज है। यह यूरोपीय मनोवृत्ति है, हिन्दू वृत्ति नहीं। यूरोपीय स्वभाव पर शरीर और प्राणिक आवेगों का आधिपत्य होता है। वह परोपकार को एक कर्तव्य, बाहर से आरोपित किया गया कानून, आचार-संहिता और अनुशासन का मानक मानता है; इस प्रकाश में वह मनुष्य की प्रकृति के विपरीत कोई ऐसी चीज है जिसके विरुद्ध मनुष्य की सारी सत्ता विद्रोह करती है। उसे देखने का यह सही तरीका नहीं है। निःस्वार्थता प्रकृति से बाहर की कोई चीज नहीं है, वह नकारात्मक नहीं सकारात्मक चीज है। वह आत्म-पीड़न और आत्म-त्याग न होकर आत्म-वृद्धि और आत्म-परिपूर्त्ति है। वह कर्तव्य का नियम न होकर आत्म-विकास का नियम है जो कष्टकर न होकर सुखद है। वह प्रकृति के अंदर है पर है प्रच्छन्न जिसे भीतर से विकसित करना होता है। ऊपर से टांकना नहीं होता। कहानी में जो सिंह-शावक भेड़ों के बीच पला था, मांस सामने रखे जानेपर उससे कतराने लगा, लेकिन एक बार उसका रस ले लेने पर उसमें सिंह की वृत्तियां जाग पड़ीं और भेड़ की आदतों में उसे रस न रहा। मनुष्य के साथ भी ऐसा ही होता है। निःस्वार्थता उसका सच्चा स्वभाव है लेकिन शरीर और प्राणिक आवेगों की तुष्टि उसकी आदत बन गयी है। यह उसकी दूसरी या मिथ्या प्रकृति है; क्योंकि उसे शरीर और प्राणिक आवेगों को अपना स्व मान लेने की आदत हो गयी है। सिंह होते हुए उसे अपने-आपको भेड़ मानने की आदत डलवा दी गयी है। वह है तो देव लेकिन उसे सिखाया गया है पशु होना। एक बार वह अपने सच्चे भोजन का स्वाद पा ले और उसमें दिव्य तत्त्व जाग उठे तो फिर पाशविक आदतें उसे संतुष्ट नहीं करतीं और उसमें निःस्वार्थता और निःस्वार्थ कर्म की क्षुधा जाग उठती है, उसी तरह जैसे सिंह अपने स्वाभाविक भोजन के लिये लालायित होता है। हां, यह भावना उसके अंदर, उसकी प्रकृति के खण्डन या उल्लंघन के रूप में न जगायी जाये बल्कि इसे उसकी प्रकृति की परिपूर्त्ति के रूप में विकसित किया जाये। जो मनुष्य निःस्वार्थता को कर्तव्य के रूप में देखता है उसने अभीतक सच्चे परोपकार का ककहरा तक नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीखा; जो मनुष्य उसे आनन्द के रूप में, स्वाभाविक लालसा के रूप में अनुभव करता है उसीने सीखने का सच्चा मार्ग अपनाया है। इस मामले में हिन्दू दृष्टिकोण ही सच्चा दृष्टिकोण है। हिन्दू उस आदमी को निःस्वार्थ मनुष्य नहीं कहता जो कामना की तुष्टि से ऊपर उठ गया हो, उसे तो आत्मवान् कहा जाता है, दूसरा आदमी अनात्मवान् है,—ऐसा आदमी जिसने अपने-आपको नहीं पाया है—जो अब भी अपने शरीर और प्राण के आवेगों की तुष्टि से चिपटा रहता है। उस महान् आत्म-त्याग में नाटक, नागानन्द, को पढ़ो तो तुम्हें पता लगेगा कि हिन्दू दृष्टिकोण पाश्चात्य दृष्टिकोण से कितना भिन्न है; यहां आत्म-त्याग कोई पीड़ादायक भयकर संघर्ष न होकर प्रकृति का भव्य उद्‌गार, भावपूर्ण आनन्द है। हम स्वार्थपरता के किसी कार्य के बारे में दयापूर्ण भाव से कह देते हैं, "यह तो मानव स्वभाव है", यह एक भूल और बहुत बड़ी भूल है। यह मानव स्वभाव नहीं, पशु स्वभाव है। मानव स्वभाव दिव्य और निःस्वार्थपूर्ण होता है और औसत स्वार्थी मनुष्य इसलिये स्वार्थी नहीं होता कि वह मानव है बल्कि उसकी मानवता अभीतक अविकसित और अपूर्ण है। ईसा और बुद्ध पूर्ण मानव हैं, राम, श्याम, जदु केवल पशु हैं जो धीरे-धीरे मनुष्य का रूप धारण कर रहे हैं।

६—परहितवाद का दार्शनिक औचित्य

इस दृष्टिकोण का दार्शनिक औचित्य वेदान्त के आधारभूत सूत्र '*सोऽहम्*' से मिलता है। मैं वह हूं, तू भी वह है अतः कोई और तू नहीं है। केवल वही है। वह, ब्रह्म, ईश ही मेरी सच्ची आत्मा है, वही सच्चा देवदत्त है; ब्रह्म, ईश ही मेरे पड़ोसी की सच्ची आत्मा है। सच्चा हरिश्चन्द्र है। अतः वास्तव में कोई देवदत्त या हरिश्चन्द्र नहीं है बल्कि मेरी आत्मा ही देवदत्त कहलानेवाली मानसिक और शारीरिक मंजूषा में है और हरिश्चन्द्र कहलानेवाली शारीरिक और मानसिक मंजूषा में भी मेरी ही आत्मा है; तो अगर हरिश्चन्द्र असीम धन-दौलत का भोग करता है तो मैं उसका भोग कर रहा हूं क्योंकि हरिश्चन्द्र मेरी ही आत्मा है—मेरा वह शरीर नहीं जिसमें मैं बंदी हूं, मेरी वे कामनाएं नहीं जिनके द्वारा मेरा शरीर दुःखी और दयनीय बन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है, बल्कि मेरी सच्ची आत्मा, मेरे अंदर पुरुष या वास्तविक मनुष्य है जो इस समस्त मधुर, कटु, कोमल, विशाल, सुंदर, भयंकर, सुखद, भयानक, पूर्णतया अद्भुत और जगत् के आनन्दप्रद नाटक का साक्षी और भोक्ता है, उस नाटक का जिसका अभिनय प्रकृति उसके सुख के लिये करती है। एक बार मैं इस सत्य का अनुभव कर लूं तो मैं हरिश्चन्द्र की सम्पत्ति का वैसे ही मजा ले सकता हूं मानो मैं स्वयं उसका भोग कर रहा हूं क्योंकि उसके बाद मैं अपनी आत्मा में से निकलकर हरिश्चन्द्र की आत्मा में इस तरह प्रवेश कर सकता हूं कि उसका सुख मेरा अपना सुख हो जाता है। यह करने के लिये मुझे केवल संबंधों के उस काल्पनिक अवरोध को तोड़ना होगा जो मेरे अहं के भाव को मेरे शरीर, प्राण और मनतक ही सीमित रखता है। मानवजाति का यह सामान्य अनुभव है कि ऐसा किया जा सकता है जिसे प्रेम का नाम दिया गया है। मानव-विकास प्रेम द्वारा और प्रेम की ओर उठता है, इस सत्य को सभी महान् धर्म सहज रूप से स्वीकार करते हैं, चाहे वे उसके लिये कोई दार्शनिक औचित्य न प्रदान कर सकें, फिर भी वे इस सिद्धांत को उच्चतम महत्त्व देते हैं। ईसाई धर्म का एकमात्र विधान जो अन्य सभी आदेशों का स्थान ले लेता है वह है अपने पड़ोसी से अपनी ही तरह प्रेम करो। बौद्ध धर्म का नैतिक आदर्श है अन्यों की निःस्वार्थ शुभ-चिन्ता और परोपकार; हिन्दू धर्म का नैतिक आदर्श है ऐसा पूर्ण साधु जिसे औरों का भला करने में ही आनन्द आता है, जिसे बस इसी की चिन्ता रहती है—'*सर्वभूतहितरतः*'। आदर्श हमेशा वही रहता है, जोर अलग-अलग स्थानों पर दिया जाता है। लेकिन धर्म प्रेम शब्द को जो अर्थ देता है वह निर्भर है अपनी आत्मा को औरों के अंदर चरितार्थ करने पर। यदि, जैसा कि ईसाइयत और सांख्य का मत है, करोड़ों विभिन्न पुरुष हैं, अगर मेरे अंदर का वास्तविक मनुष्य, किसी और के अंदर के वास्तविक पुरुष से भिन्न है, जाति में एक होते हुए भी सारतत्त्व में एक नहीं है तब तो तादात्म्य की कोई अनुभूति नहीं हो सकती, केवल मानसिक या भौतिक संपर्क हो सकता है। जड़ भौतिक संपर्क में आवेग और घृणा की पाशविक भावनाओं के सिवाय और कोई चीज नहीं उठ सकती। मानसिक संपर्क से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे आकर्षण के उठने की संभावना है उसी तरह विकर्षण या जुगुप्सा की भी। एक पृथक् व्यक्तिगत आत्मा अपना ही जीवन जियेगी, अपनी ही तुष्टि या अपनी ही मुक्ति का अनुसरण करेगी। उसके पास किसी और के साथ अपनी ही तरह प्रेम करने के लिये कोई आवेश या कोई कारण न होगा क्योंकि वह यह अनुभव नहीं कर सकती कि दूसरा व्यक्ति भी वह स्वयं है। इस उच्चतर या आध्यात्मिक प्रेम की व्याख्या वेदान्त ही दे सकता है, इस अनुभूति के साथ कि आत्मा एक ही है और समस्त विभाजन काल्पनिक है। इस गहन अभिव्यक्तिकारी सत्य के प्रकाश में परोपकार स्वाभाविक, उचित और अनिवार्य बन जाता है। वह स्वाभाविक होता है क्योंकि मैं वास्तव में अपनी अपेक्षा किसी और को अधिक पसंद नहीं कर रहा हूं बल्कि अपनी विशालतर, सत्यतर आत्मा को अपने अधिक संकीर्ण और मिथ्या स्व के स्थान पर पसंद कर रहा हूं, भगवान् को पसंद कर रहा हूं जो मेरे एकाकी शरीर और मन के लिये सब में हैं, वह भगवान् जो देवदत्त और हरिश्चन्द्र दोनों में मैं ही हूं और जो केवल देवदत्त में भी मैं ही हूं। यह ठीक है क्योंकि हरिश्चन्द्र के भोग को अपने भोग के साथ जोड़कर, अपनी भावनाओं के क्षेत्र में उनका आलिंगन करके मैं ब्रह्म की विश्वव्यापकता के अपने ज्ञान को एक अनुभूति बना लूंगा, केवल एक मानसिक कल्पना या स्वीकृति नहीं, क्योंकि बौद्धिक कल्पना नहीं बल्कि अनुभूति ही सच्चा ज्ञान है। वह अनिवार्य है क्योंकि विकास का मेरा यही तरीका है। जैसे मैं पशु से मनुष्यतक उठा हूं उसी तरह मुझे मनुष्य से भगवान्तक उठना चाहिये। लेकिन परम देवत्व का आधार है सभी चीजों के अंदर अपनी आत्मा की अनुभूति। विकास का सच्चा लक्ष्य और उद्देश्य है वैश्व ब्रह्म की विशाल और विशालतर उपलब्धि। हम उस लक्ष्य की ओर प्रगति करते हैं, फिर वह चाहे जितनी सुस्ती के साथ, चाहे जितनी भूलों के साथ क्यों न हो लेकिन अनिवार्य रूप से होती है जड़ तत्त्व के मिथ्यात्व से आत्मा के सत्य की ओर प्रगति। हम अपने पीछे पहले तो अकर्मण्यता, पाशविकता, अज्ञान, क्रोध, काम, लोभ, पाशविक हिंसा या जिसे हम अपने दर्शन में तामसिक स्थिति कहते हैं उसे छोड़कर विभिन्न मानव क्रिया-कलाप और ऊर्जा, राजसिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थिति की ओर उठते हैं और फिर उससे हमें सात्विक स्थिततक दिव्य साम्यावस्था, मन की स्पष्टता, अन्तरात्मा की स्वच्छता, उच्च निःस्वार्थता, दया, सभी प्राणियों के लिये प्रेम, सत्य, निष्कपटता और शांति की ओर उठना चाहिये। यह दिव्य उच्चता भी उच्चतम नहीं है। हमें उसे भी पीछे छोड़कर सभी वस्तुओं के शिखरतक चढ़ना चाहिये जहां विराजते हैं उज्ज्वल और आवेगविहीन सबके स्वामी जो अपनी भव्यता की एक किरण से करोड़ों विश्वों को प्रकाशित करते हैं। उस स्तब्ध शिखर पर हम अपनी आत्मा के न केवल अन्यों की आत्मा के साथ बल्कि सर्वात्मा के साथ तादात्म्य का अनुभव करेंगे जो सबका ईश, ब्रह्म है। हमारा विकास ब्रह्म के अंदर अपना बृहत् लक्ष्य और विश्राम पाता है।

७—त्याग का अर्थ

अतः कर्मयोगी जगत् का भोग करने के लिये उसका त्याग करेगा। वह सिकन्दर की तरह भौतिक रूप से सारे जगत् पर प्रभुत्व पाने की कोशिश न करेगा बल्कि देवताओं की तरह उस पर अपनी आत्मा में अधिकार करेगा। वह अपने-आपको अपनी सीमित सत्ता में खो देगा ताकि वह अपने-आपको अन्य सभी की सत्ताओं के अंदर अनन्त रूप से पा ले। जगत् के त्याग का अर्थ इससे कुछ कम नहीं होता कि हम अपने तुच्छ आनन्द और सुख को त्याग दें ताकि दूसरों के आनन्द में आंखोंतक नहा सकें। एक मनुष्य का सुख इतना अधिक महान् हो सकता है जितना तुम चाहो, सैंकड़ों का संयुक्त सुख निश्चित रूप से अधिक होगा। भोग को त्याग कर तुम अपने भोग को सौगुना अधिक कर सकते हो। सच्चे प्रेमी का सदा यह विशेषाधिकार रहा है। अगर तुम किसी नारी के सच्चे प्रेमी हो तो अपनी खुशियों की अपेक्षा उसकी खुशियां तुम्हें कहीं अधिक सुखी बनाएंगी; अगर तुम अपने मित्रों के सच्चे प्रेमी हो तो उनकी सुख-समृद्धि और उनके दमकते चेहरे तुम्हें ऐसा आनन्द देंगे जिसे तुम कभी अपने छोटे, सीमित सुखों में न पा सकते; अगर तुम अपने राष्ट्र के सच्चे प्रेमी हो तो उसके लाखों लोगों की खुशी, उनकी महिमा और धन-सम्पदा तुम्हारी होंगी; अगर तुम मानव जाति के सच्चे प्रेमी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो तो धरती के अनगिनत लोगों के सभी आनन्द तुम्हारी आत्मा के द्वारा अमृत-सागर की तरह बहेंगे। तुम कहोगे कि उनके दुःख भी तुम्हारे होंगे; लेकिन क्या जिनसे तुम प्रेम करते हो उनके दुःखों में हिस्सा बंटाना तुम्हारे अपने सुखों की अपेक्षा अधिक सौभाग्य की बात नहीं है ? उन अन्य सुखों की भी गिनती करो जो तुम्हारे लिये दुःख में साझेदारी ला सकते हैं। अगर तुम्हारे अंदर शक्ति है—और योग हमेशा कुछ शक्ति लेकर आता है—तो तुम्हें अपने मित्र या प्रेमी के दुःख-दर्द में सान्त्वना देने या उसे आनन्द में बदलने का अद्वितीय सुख प्राप्त हो सकता है या उस जाति के कष्टों और पतन को बदलने का जिसके लिये तुम अपनी आहुति देते हो या मानवजाति के दुःखों को बदलने का जिसमें तुम भगवान् को चरितार्थ करने की कोशिश कर रहे हो, इससे बढ़कर सुख क्या होगा ? केवल यह करने का लगातार, दृढ़, अध्यवसायी प्रयास भी अकथनीय आनन्द है। ऐसे उद्देश्य के लिये पराजय भी एक कठोर सुख है जो तुम्हें नूतन और अपराजेय प्रयास के लिये मजबूत बनाती है। और अगर तुम्हारे अन्दर कष्ट-मोचन करने या संघर्ष को आगे जारी रखने की शक्ति नहीं है तब भी तुम्हारे लिये दूसरों के लिये कष्ट झेलने या मरने का आनन्द बना रहता है। "अपने मित्र के लिये मरने से बड़ा प्रेम किसी आदमी के अंदर नहीं होता।" हां उस सबसे बड़े प्रेम का मतलब सबसे बड़ा आनन्द भी होता है। "अपने देश के लिये मरना मधुर और उदात्त चीज है।" कितने देश-प्रेमियों ने अपने अंतिम क्षणों में यह अनुभव किया है कि यह खोखला काव्यात्मक उपदेश नहीं है परन्तु अद्भुत, वर्णनातीत वास्तविकता की एक कमजोर-सी न्यूनोक्ति है। लोग कहते हैं कि ईसा ने क्रूस पर यातना पायी ! निस्सन्देह शरीर ने यातना पायी लेकिन क्या सचमुच ईसा ने कष्ट पाया ? क्या उन्होंने अपनी अन्तरात्मा में परम देव के आनन्द का अनुभव नहीं किया ? गेट्समेन की यंत्रणा आनेवाले क्रूसारोपण की यंत्रणा न थी, उन्होंने जिस जहर के प्याले को दूर करने के लिये प्रार्थना की थी वह शारीरिक यंत्रणाओं का प्याला न होकर मानवजाति के पापों का प्याला था जिसे पीने के लिये उन्हें धरती पर भेजा गया था। अगर ऐसी बात न होती तो हमें कहना पड़ता कि यह ईसामसीह, भगवान् का पुत्र या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह अवतार न था जिसने यह कहने का साहस किया था कि "मैं और मेरे पिता एक हैं," बल्कि वह कोई दीन, कमजोर मनुष्य था जो माया के फेर में आकर अपने शरीर को ही अपनी आत्मा मान बैठा था। हमेशा याद रखो कि शाश्वत अपने-आपको पूरी तरह उसे नहीं देते जिसकी आत्मा दुर्बल हो, शक्तिशाली, शूरवीर आत्मा ही भगवान्‌तक पहुंचती है। दूसरे केवल दूर से उनकी छाया का स्पर्श कर सकते हैं—*नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात्तपसो वाप्यलिङ्गात्*—यह आत्मा किसी बलहीन को प्राप्त नहीं होती और न तप में प्रमाद करनेवालों को।

कर्मयोगी से जिस जगत् के त्याग की मांग की जाती है वह आवश्यक रूप से भौतिक त्याग ही नहीं है। तुमसे अपने घर-बार, पुत्र-कलत्र और मित्रों को त्यागने के लिये नहीं कहा जाता। तुम्हें जिस चीज का त्याग करना है वह है उनके लिये स्वार्थभरी कामना और उन्हें अपनी चल, अचल सम्पत्ति मानने की आदत जो तुम्हें सुख देने के लिये तुम्हारे हैं। तुम से यह नहीं कहा जाता कि अपनी कामना के विषयों को फेंक दो बल्कि यह कि उन्हें अपने हृदय से त्याग दो। तुम्हें उस कामना से अलग होना चाहिये, कामना के विषयों से नहीं। अतः तुमसे जिस त्याग की मांग की जाती है वह आध्यात्मिक त्याग है, एक ऐसी शक्ति जिससे तुम अपनी भौतिक सम्पत्ति का ऐसे अनासक्त भाव से भोग कर सको कि तुम उन्हें पाकर आनन्द-विह्वल न हो उठो और न उन्हें खोकर नीचे की ओर लुढ़क जाओ—यह उसकी वास्तविकता की परख है—केवल उनकी उपस्थिति से नौ दो ग्यारह होना नहीं, जो केवल प्रलोभनों से भाग निकलना है। कर्मयोगी को जगत् में रहना और उसे जीतना है, उसे यह अनुमति नहीं है कि वह संघर्ष के दृश्य से भाग निकले या रण को छोड़ भागे। जीवन में उसकी भूमिका शूरवीर की भूमिका है—जो एक गुण उसमें होना ही चाहिये वह है सिंहसदृश साहस जो अपने आध्यात्मिक शत्रुओं को उनके अपने देश में उन्हींके दुर्ग में चुनौती देगा और अपने पैरों तले कुचल देगा। तो केवल आध्यात्मिक त्याग—शरीर तो केवल आत्मा के खोल का काम देता है—कर्मयोगी को अपने सभी प्रयास आत्मा पर ही केन्द्रित करने चाहियें। शरीर को शुद्ध करना अच्छा है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केवल इसलिये कि तब आत्मा को शुद्ध करना ज्यादा आसान होता है, परन्तु अपने-आपमें उसका कोई महत्त्व नहीं; लेकिन अगर आत्मा शुद्ध है तो कोई अशुद्धि शरीर को छूतक नहीं सकती। अगर आत्मा कामना से कलुषित नहीं है तो कामना के विषयों का भौतिक भोग उसपर दाग नहीं लगा सकता; क्योंकि अगर मेरी आत्मा नयी सम्पदा के लिये लालायित नहीं है या जो सम्पदा मेरे पास है उससे चिपकी हुई नहीं है तो मेरी सम्पदा का उपयोग निःसंदेह निस्स्वार्थ और अकलुष होगा और एक बार भाव में उनसे अलग होकर, उन्हें भगवान् के कोष में जमा करके मैं सचमुच उन पर अधिकार का रस ले सकता हूं। वह भोग स्पष्ट, गहन, शाश्वत और स्थिर होता है, भाग्य उसे तोड़ नहीं सकता, डाकू उसे लूट नहीं सकते, शत्रु उसे अभिभूत नहीं कर सकते। स्वामित्व का अन्य सारा उल्लास उतार-चढ़ाववाला, भय, दुःख, कष्ट और आवेश से टूटा-फूटा होता है—उसके बढ़ने के लिये आवेश, उसे सुरक्षित रखने के कष्ट, उसके ह्रास के दुःख, उसके खो जाने के डर से टूटा-फूटा रहता है। आवेगरहित भोग ही शुद्ध और अमिश्रित आनन्द है। अगर वस्तुतः तुम भौतिक रूप से और साथ ही साथ भावना में धन-संपदा का त्याग करना चाहो तो यह भी अच्छा है बशर्ते कि तुम यह ध्यान में रखो कि तुम उनके विचार को अपने मन में नहीं पोस रहे। एक और भी अजीब-सा विधान है जिसका अनुभव बहुत-से ऐसे लोगों को हुआ है जिन्होंने आध्यात्मिक त्याग का मार्ग अपनाया है। वह यह है कि ऐसे त्याग से धन-संपदा में ऐसी विशेष प्रवृत्ति होती है कि वह उसको ढूंढ़ती है जिसने धन-संपदा को ढूंढ़ना छोड़ दिया है। धन के लिये प्रकृति की एक प्रबल और सक्षम इच्छा-शक्ति, जो धन कमाने पर डटी हो, वह निश्चय ही अपनी कामना को पूरा कर लेगी परन्तु लगभग उतनी ही प्रायिकता के साथ धन, ख्याति और सफलता उस आदमी से भागती हैं जो उनका पीछा करता है और उसके पास आती हैं जिसने अपनी लालसाओं को जीत लिया है। उनका प्रेमी बहुधा उन्हें पाये बिना ही नष्ट हो जाता है या पाप की गहरी दलदल या कठिनाइयों के नरक से होकर या परिश्रम के पहाड़ को पार करके उनतक पहुंचता है जब कि जिस आदमी ने उनकी ओर से मुंह मोड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिया है देखता है कि वे उसके चरणों पर गिरने के लिये भीड़ कर रहे हैं। तब वह या तो उनका भोग कर सकता है या उन्हें त्याग सकता है। दूसरा महान् पथ है जिसे अनगिनत साधु-सन्तों ने चुना है। लेकिन कर्मयोगी उन्हें भोग सकता है, निश्चय ही अपने व्यक्तिगत सुख के लिये नहीं, अपने मिथ्या स्व के लिये नहीं क्योंकि वह उस प्रकार के भोग को अपने हृदय से त्याग चुका है, बल्कि वह उनके अंदर भगवान् और भगवान् के अंदर उनका रस ले सकता है। जैसे राजा नजराने को छू भर देता है और फिर सरकारी खजाने को दे देता है उसी तरह कर्मयोगी अपने पास आनेवाली धन-संपत्ति को केवल छू कर अपने चारों ओर के लोगों के लिये, गरीबों के लिये, कार्यकर्ता के लिये, अपने देश और मानव जाति के लिये आगे बढ़ा देता है क्योंकि वह इन सबके अंदर ब्रह्म को देखता है। अगर महिमा उसके पास आती है तो वह उसे अचंचल, स्थिर, विनीत पर्दों में ढक देगा और उससे मिलनेवाले प्रभाव का उपयोग अपने लिये नहीं बल्कि मनुष्यों की अधिक प्रभावशाली ढंग से सहायता करने में, उनकी आवश्यकताएं पूरी करने में या उन्हें भगवान् की ओर उठाने में करेगा। ऐसा आदमी शीघ्र ही सुख, दुःख, सफलता, असफलता, विजय, पराजय से ऊपर उठ जायेगा क्योंकि वह दुःख में और सुख में अपने-आपको भगवान् के नजदीक अनुभव करेगा। वह निकटता सतत साहचर्य में बदल जायेगी और फिर साहचर्य से वह अधिकाधिक भगवान् के आध्यात्मिक बिम्ब में विकसित होता जायेगा। यहांतक कि वह अन्तिम शिखरतक जा पहुंचता है जब मनुष्य यानी वह भगवान् जो अपने देवत्व को भूल गया है, पूरी तरह से याद कर लेता है और शाश्वत बन जाता है। तो निःस्वार्थता ही त्याग का एकमात्र और वास्तविक विधान है। औरों के अन्दर अपनी बृहत्तर आत्मा के प्रेम में उसका उत्थान होता है। सभी पार्थिव वस्तुओं में भागवत उपस्थिति की अनुभूति से ब्रह्म की जड़ें जम जाती हैं और वे हिलाये नहीं हिलतीं। ब्रह्म की सिद्धि ही उसकी पूर्णता और उसका लक्ष्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय २

१–कर्म द्वारा मुक्ति

प्राचीन काल से हिन्दू चेतना को जो गहरी और पेचीदा समस्या तंग करती आयी है उसके समाधानस्वरूप सबसे महान् गुरु श्रीकृष्ण ने केवल भौतिक त्याग की जगह आध्यात्मिक त्याग के विधान की घोषणा की थी। जैसा कि हम जानते हैं, मुक्ति के तीन मार्ग हैं : ज्ञान द्वारा मुक्ति जिसका बौद्ध धर्म में केन्द्रीय स्थान है, श्रद्धा और प्रेम द्वारा मुक्ति जो ईसाइयत में केन्द्रीय है और श्रद्धा तथा कर्म द्वारा मुक्ति जो इस्लाम की केन्द्रीय स्थिति है। हिन्दू अर्थात् सनातन धर्म ने इन तीनों पथों को समान रूप से स्वीकार कर लिया है लेकिन इन तीनों में हिन्दू धर्म की विशिष्ट और केन्द्रीय धार्मिक अनुभूति—आत्मा की यथार्थता और शाश्वतता और बाकी सबकी क्षणभंगुरता और अयथार्थता—पर पथ-प्रदर्शक तत्त्व और अनिवार्य भाव के रूप में जोर दिया जाता है। यह वह सेतु है जो तुम्हें अमरता की ओर ले जाता है, यह मुक्ति का द्वार है। ज्ञानमार्गी केवल एक यथार्थता, ब्रह्म, को मानता है और उस सबसे मुंह मोड़कर जो आभासी है और उसे खोजकर जो अपने-आपमें एकमात्र यथार्थता है, शाश्वत की सत्ता में प्रवेश कर जाता है। भक्त केवल दो यथार्थताओं को देखता है; एक तो भगवान्, दूसरे वह स्वयं, और प्रेम तथा आराधना द्वारा भगवान् के साथ आनन्दमय ऐक्य से शुद्ध और अमिश्र शाश्वत की उपस्थिति में प्रवेश करता है। कर्मयोगी तीन यथार्थताओं को मानता है जो एक ही हैं : अपने-आपमें शाश्वत जो शुद्ध और एक तथा अद्वितीय है, परात्पर इच्छा या शक्ति के रूप में, यथार्थतः नहीं बल्कि प्रपंच रूप में वैश्व कर्म में प्रकट होनेवाले शाश्वत और जीवात्मा में शाश्वत, जो अपने-आपको व्यष्टिगत कार्य में सान्त शरीर में प्रकट करते हैं। और वे भी कामना को त्याग कर और अपने कर्म भगवान् को अर्पित करके शाश्वत के साथ सादृश्य प्राप्त करते हैं और उस द्वार में से शाश्वत के साथ तादात्म्य में प्रवेश करते हैं। एक बात में ये सब सहमत हैं और वह है प्रपंचात्मक जीवन की क्षणभंगुरता और अयथार्थता। लेकिन अगर प्रपंचात्मक जीवन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अयथार्थ है तो फिर जगत् में रहने का लाभ ही क्या है ? चलो, हम घर-बार, धन-धान्य, पुत्र-कलत्र और मित्र-मण्डली त्याग कर वन-पर्वतों के एकान्त में भाग चलें और जितनी जल्दी हो सके ज्ञान-ध्यान द्वारा इस प्रपंचमय जगत् को छोड़ चलें। बौद्ध काल से पहले और उसके पीछे जब हिन्दू चेतना पर ज्ञान-मार्ग की शक्ति का बोल-बाला था तो भारत में यही पुकार उठी थी। भक्त की भाषा भी इससे बहुत भिन्न नहीं होती, 'चलो हम सांसारिक वस्तुओं को त्याग दें, हम केवल हरि का नाम लें, उसी को भजें और सबको भुला दें'। दोनों ने इस बात पर जोर दिया है कि कर्म और जगत् फंदे हैं, बंधन हैं जिनसे भागना ही श्रेयस्कर है। केवल कर्मयोगी ने ही अपने-आपको इस धारा के विरुद्ध खड़ा रखा है और इस वैश्व हलचल के बीच में, प्रपंच की बाढ़ में, प्रवाह में बहे बिना स्थिर रखा है। उसने कहा है कि जो लोग जगत् में रहते हैं उनमें से कम ही हैं जो जगत् से ऊपर उठ कर शाश्वत के सायुज्य में रह सकते हैं, लेकिन वन-पर्वतों में भागनेवालों में भी ऐसे कम ही हैं जो सचमुच 'उन्हें' पाते हैं और जो अपने दिन हरि हरि पुकारने में ही बिता देते हैं उनमें भी ऐसे कम ही हैं जिन्हें वे अपनाते हैं जो उन्हें पुकारते हैं। सदा पुकार बहुतों की होती है लेकिन कुछ ही चुने जाते हैं। और अगर जनक बड़े राजाओं के पूरे ठाठ-बाट, वैभव और शक्ति में रहते हुए सदा भगवान् के साथ रह सकते हैं और यदि राम और श्रीकृष्ण धरती पर रहते हुए, जगत् के कार्य करते हुए भी भगवान् थे तो कौन कह सकता है कि मुक्ति कर्मों के बीच नहीं पायी जा सकती या कर्म को यंत्र बनाकर नहीं पायी जा सकती ? इस विवाद में श्रीकृष्ण का उत्तर एकमात्र समाधान है। एकमात्र आवश्यक वस्तु है अपने अंदर भाव में से कामना का परित्याग। अगर तुम यह न कर सको तो वन-पर्वतों के एकान्त में बैठकर योगाभ्यास करना बेकार है, सवेरे से राततक हरि के गीत गाना और प्रभु, प्रभु चिल्लाना बेकार है, "जगत् में अपने कर्तव्य कर्म करते हुए" सुरक्षा की आशा करना व्यर्थ है। जो मनुष्य कामनाओं से शुद्ध नहीं हुआ वह चाहे जिस मार्ग का अनुसरण करे, वह मुक्ति नहीं पायेगा। लेकिन अगर वह अपने अन्तर को कामना से शुद्ध कर ले तो चाहे वह एकाकी पर्वतों पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे या शेरों से भरे जंगल में, सुन्दर वृन्दावन में रहे या राजा के दरबार में, व्यापारी की दुकान में या किसान की झोंपड़ी में, मुक्ति उसकी पकड़ में होगी। क्योंकि मुक्ति की शर्त है अपने निम्नतर अवास्तविक स्व को छोड़कर अपनी वास्तविक आत्मा की ओर मुड़ना और निम्नतर सत्ता की छाप, उसका दाग है कामना। कामनाओं से पीछा छुड़ा लो और शाश्वत के द्वार तुम्हारी अन्तरात्मा के प्रवेश के लिये पूरी तरह खुले होंगे। उस संन्यासी का मार्ग, जो जगत् को त्यागकर अपने-आपको ज्ञान या भक्ति के अर्पित करता है, एक अच्छा मार्ग है और इससे अच्छा कोई नहीं है; लेकिन उस त्यागी का मार्ग जो इंद्रियों के विषयों और कर्म के भंवरों में रहता है, पहली चीज को पोसता नहीं और दूसरी के वेग के आगे झुक नहीं जाता, यही कर्मयोगी के लिये उचित मार्ग है, उपनिषद् पूरे जोर के साथ इसे कर्मयोगी के दूसरे आचरण के नियम के रूप में स्थापित करना चाहता है।

"वस्तुतः अपने कर्म जगत् में करता चल और सौ वर्ष जीने की इच्छा कर क्योंकि इस तरह, और इसके सिवा तेरे लिये और कोई मार्ग नहीं है, कर्म मनुष्य से चिपकता नहीं है।"

जब मनुष्य अपनी प्रकृति के सभी नियमों का पालन करता है, शुद्ध भोजन, शुद्ध रहन-सहन, शुद्ध विचार और अपनी कामनाओं की वुष्टि में आत्म-संयम रखता है तो उसके जीवन की पूर्ण अवधि होती है सौ वर्ष। यह अवधि प्रायः लापरवाही, पाप, दूषण या अन्य जीवनों में किये गये पिछले कर्मों से छोटी हो जाती है और दूसरी ओर योग द्वारा यह अवधि सैंकड़ों वर्षों तक बढ़ भी सकती है। लेकिन कर्मयोगी न तो अपने जीवन की अवधि को लम्बा करना चाहेगा न छोटा करना। अपने जीवन की अवधि को बढ़ाने का अर्थ होगा अपने बाहरी जीवन को बढ़ाने और उसके साथ चिपके रहने की कामना जो उस त्याग के साथ असंगत है जिसे हमने कर्मयोग के आधारभूत नियम के रूप में देखा है। कुछ महायोगियों ने किसी व्यक्तिगत कामना के बिना अपने जीवन को लम्बा किया है—केवल अपनी उपस्थिति या अपने उदाहरण द्वारा जगत् की सहायता करने के लिये। ये अपवादिक उदाहरण हैं जिन्हें साधारण कर्मयोगी को दृष्टि में रखने की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जरूरत नहीं। दूसरी ओर हमें जीवन से मुंह भी न मोड़ना चाहिये। हमें असमय में अपने शरीर को निकाल फेंकना न चाहिये या अपने शरीर से जल्दी छुटकारा पाने की इच्छा भी न करनी चाहिये; बल्कि खुशी से अपनी अवधि पूरी करनी चाहिये और मनुष्य के जीवन की साधारण अवधि पूरी करने के लिये तैयार रहना चाहिये। और तबतक इस जगत् में अपने कार्य पूरे करते रहना चाहिये। यहां "कुर्वन्" शब्द पर जो जोर दिया गया है और उससे "एव" जोड़ा गया है, उसको ध्यान से देखो, इसकी शक्ति अन्य सब तरह के कर्म, अवस्था, व्यक्ति या वस्तु को अलग कर देती है, रह जाता है केवल वही शब्द जिसके साथ 'एव' लगा हो। वस्तुतः हमें इस जगत् में अपने कार्य करने चाहियें, उनसे बचना न चाहिये। भगवान् को पाने के लिये पर्वतों की ओर भागने की कोई जरूरत नहीं। भगवान् कोई पहाड़ी आदमी या सर्प नहीं हैं कि उनकी खोज गुफाओं और शिखरों पर ही करनी चाहिये, वे कोई हरिण या शेर नहीं हैं कि उनका स्थान केवल जंगलों में ही हो। वे यहां हैं, तुम्हारे अंदर और तुम्हारे चारों ओर। वे इन नर, नारियों में हैं जिन्हें तुम रोज देखते हो, जिनसे तुम बातचीत करते हो, जिनके साथ जीवन बिताते हो। तुम उन्हें शहरों के शोर-शराबे में पा सकते हो और पा सकते हो गांव की चुप्पी में। वे वहां हैं। तुम अगर जीवन के शोर-शराबे से बहरे हो गये हो और ध्यान करने के लिये एकान्त चाहते हो तो तुम कुछ समय के लिये पहाड़ों पर जा सकते हो क्योंकि कर्मयोगी के लिये भी ज्ञान जरूरी है और एकान्त ज्ञान की धाय है। तुम गंगा या नर्मदा के तट पर किसी शांत मंदिर या पवित्र आश्रम में भगवान् की आराधना करने के लिये बैठ सकते हो क्योंकि कर्मयोगी के लिये भक्ति भी जरूरी है और ऐसे स्थान जो महान् सन्तों और आवेगपूर्ण ईश्वर-प्रेमियों की भक्ति से ओतप्रोत हैं, वे अन्तरात्मा के अंदर आराधना के भाव को सबसे अच्छी तरह पुष्ट और संतुष्ट करते हैं। लेकिन अगर तुम्हारा मार्ग कर्मयोग का है तो तुम्हें फिर लौटना, संसार की हलचल में रहना होगा। किसी हालत में डरपोक और कमजोर की तरह एकान्त और निष्क्रियता की ओर न भागो—भगवान् को पाने की आशा में नहीं बल्कि इसलिये कि तुम सोचते हो कि तुम जीवन के उस दुःख-दर्द और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्भाग्य से बच सकते हो जिसका सामना करने के लिये तुम बहुत दुर्बल हो। दुर्बल और भीरु लोग ईश्वर की ओर नहीं चढ़ सकते, केवल बलवान् और साहसी ही उठते हैं। हर व्यष्टिगत जीवात्मा को ब्राह्मण बनने से पहले पूर्ण क्षत्रिय बनना होगा। अन्तरात्मा का अपना वर्ण होता है जो शरीर के वर्ण की अपेक्षा कहीं अधिक सच्चा और गहरा होता है। मनुष्य को पूर्ण होने से पहले चार आत्मिक अवस्थाओं में से गुजरना पड़ता है: पहले शूद्र अवस्था में अपनी सत्ता के अंदर स्थित पशु को सौम्य बनाने के लिये सेवा और आज्ञापालन द्वारा, फिर वैश्य बनकर अपने अंदर के निम्नतर मनुष्य को, अपने से भिन्न दूसरों का भला करने में आनन्द का अनुभव करके अपने अंदर नैतिकता के विधान को तुष्ट करके, फिर क्षत्रिय बनकर उन प्राथमिक गुणों में प्रशिक्षित होना जिनके बिना शाश्वत की खोज असम्भव है—यानी साहस, बल, अपराजेय अध्यवसाय, और किसी महान् कार्य के लिये आत्मोत्सर्ग, और अन्त में ब्राह्मण बनकर शरीर, मन और प्रकृति को शुद्ध करना ताकि वह अपने अंदर शाश्वत को उस तरह प्रतिबिम्बित होते देखे जैसे वह अपने-आपको निर्मल दर्पण में देख सकता है। एक बार भगवान् को देख लेने के बाद मनुष्य के जीवन का इसके सिवा कोई और उद्देश्य नहीं हो सकता कि वह भगवान्तक पहुंच सके और उनको पा सके। कर्मयोगी ऐसी अन्तरात्मा है जो पहले ही क्षत्रिय अवस्था में प्रतिष्ठित हो चुकी है और वहां से सरलता से प्राप्य ब्राह्मणत्व द्वारा सीधी तेजी से भगवान् की ओर जाती है। अगर वह साहस और शौर्य की पकड़ को खो बैठे तो वह अपने आधार से गिर जाता है जहां से उसे अपना आध्यात्मिक आकार इतना लम्बा करना है कि उसका हाथ शाश्वत तक पहुंच कर उसे पकड़ सके। उसका पांव जरा फिसल जाये तो वह गिरने के सिवा और कर ही क्या सकता है?

२—वैराग्य

संसार से घृणा, प्रपंचात्मक जीवन से जुगुप्सा और संसार से बचकर शाश्वत में भाग जाने की इच्छा को हमारी परिभाषा में वैराग्य कहते हैं। आत्मा का मुक्ति की ओर मुड़ना ही वैराग्य है। लेकिन हमें झूठे दिखावे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उसकी नकलों के बारे में सावधान रहना चाहिये, हमारे मन उसके बहुत ज्यादा प्रभाव में आ जाते हैं। सच्चे वैराग्य की भाषा यह नहीं है, "मैं सारे समय दुःख-दारिद्र्य की घेरा-बंदी के थपेड़े खाता रहता हूं, चलो मैं दुनिया से भाग चलूं और गेरुआ पहनकर चिन्ता और दुःख से शांति पा लूं।" जैसे तुम मार्का देखकर असली और जाली चीज में फर्क जान सकते हो उसी तरह एक निशान है जिससे तुम सच्चे संन्यासी को पहचान सकते हो। अपने-आपमें प्रपंचात्मक जगत् से ऊब नहीं, सच्चा वैराग्य है जगत् से ऊब के साथ-ही-साथ शाश्वत के लिये सच्ची प्यास। शाश्वत के लिये प्यास मार्का है, उसे खोजो, वही सच्चा मार्का है, छलपूर्ण प्रतिकृति नहीं। आजकल गेरुआ वस्त्र बहुत अधिक स्वार्थ, बहुत अधिक आलस्य और बहुत अधिक ढोंग और मिथ्याचार को ढंके रहता है। गेरुआ वस्त्र मार्का नहीं है, शाश्वत के लिये ललक मार्का है। बातचीत या बाहरी क्रिया-कलाप भी मार्का नहीं है क्योंकि वह एक प्रतिकृति मात्र हो सकती है। आंखों में देखो, हल्की, कम ध्यान खींचनेवाली आदतों को देखो, चेहरे पर चमक की प्रतीक्षा करो और तब तुम मार्का को पा सकोगे। यही कसौटी अपने ऊपर भी लगाओ। जब तुम्हें लगे कि तुम्हारे अंदर वैराग्य है तो अपने-आपसे पूछो, "क्या यह केवल ऊब और जुगुप्सा है, आत्मा की जरा-सी बेहोशी है? क्या मैं अपने अंदर आत्मा की जरा-सी जागृति, उसके लिये कामना पाता हूं जो क्षणिक नहीं शाश्वत है, जो पाप से बंधा नहीं, दुःख में उतरता-चढ़ता नहीं है, जो शुद्ध और मुक्त है?" अगर कठोर आत्म-परीक्षा के बाद तुम अपने अंदर यह कामना देखो तो समझ लो कि तुम्हारी मुक्ति शुरू हो गयी है।

वैराग्य के कई प्रकार होते हैं कुछ सच्चे और कुछ झूठे। एक होता है गहरा, तीव्र और ऊर्जामय वैराग्य। जब बलवान् मनुष्य संसार की मधुरिमा चखकर देखता है कि उसमें कोई स्थायी और टिकाऊ मधुरता नहीं है, ये वे सच्चे और अमर आनन्द नहीं हैं जिनकी मांग उसकी सच्ची और अमर आत्मा करती है, तो वह उनकी ओर से मुड़कर अपनी सत्ता में किसी ऐसी चीज की ओर बढ़ता है जो अधिक पवित्र और गहरी है, जो उसकी अमर और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अक्षय आत्मा का आनन्द है। फिर एक ढोंगी या दुर्बल मनुष्य का मिथ्या और क्षणभंगुर वैराग्य है जो दुनिया की मिठाइयों के लिये ललचाया, लालायित हुआ और प्यासा रहा है लेकिन जिसे नियति या उससे अधिक मजबूत लोगों ने धकिया कर फेंक दिया है। अब वह संन्यासी के बाहरी जीवन में आलस्य-भरा, कण्टकहीन मार्ग ढूंढ़ता है जो उसे मान-प्रतिष्ठा, सुख, लोभ की तुष्टि की ओर ले जाये या फिर वह संन्यास और योग का उपयोग वैसे करेगा जैसे पियक्कड़ अपनी बोतल का, अफीमची अपनी गोली या दैनिक खुराक का करता है। जिन महान् ऋषियों ने इन बड़ी-बड़ी चीजों को जगत् के आगे प्रकट किया उन्होंने यह ऐसे तुच्छ उद्देश्यों के लिये नहीं किया था। इस तरह की दुर्बलता से सावधान। *क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते*—हे पार्थ, योद्धा और शूरवीर के पौरुष से नीचे मत गिरो, यह तुम्हें शोभा नहीं देता। सचमुच ऐसी दुर्बलता उसे शोभा नहीं देती जो ब्रह्म, शाश्वत, जगत् का स्रष्टा, पालकहार और नाशकर्ता है। दूसरी ओर दुःख और निराशा का एक सच्चा वैराग्य भी होता है। कभी-कभी अपने अज्ञान में लोगों ने अधम वस्तुओं के लिये कोशिश की है और असफल हुए हैं। अपनी दुर्बलता के कारण नहीं बल्कि इसलिये कि ये वस्तुएं उनकी प्रकृति में नहीं थीं, उनके अयोग्य, उनकी महानता और उच्च नियति के आगे हेय थीं। दुःख और निराशा अपनी सच्ची आत्मा की ओर आंखें खोलने के लिये जरूरी चीजें थीं। तब वे एकान्त, ध्यान और समाधि की खोज करते हैं, दुःख और अपूर्ण लालसा को डुबाने के लिये जाम की तरह नहीं बल्कि इसलिये कि उनकी चाह अब अयोग्य वस्तुओं के लिये नहीं, भागवत प्रेम के लिये, शाश्वत के ज्ञान के लिये है। कभी-कभी महान् आत्माएं संन्यास-मार्ग में प्रवेश करती हैं क्योंकि वे शाश्वत के साथ एकान्त में ही अपने ब्रह्मतेज को विकसित कर सकती हैं ताकि उसे दिव्य प्रयोजन के लिये उपयोग में ला सकें। एक बार उसे पाकर वे उसे दिव्य ज्ञान या दिव्य प्रेम के प्रवाह में जगत् पर उंडेलती हैं; शंकराचार्य और रामकृष्ण ऐसे ही थे। कभी-कभी जगत् के दुःख और दैन्य उन्हें आनन्द और सुख में पाकर बाहर निकाल देते हैं जैसे बुद्ध और ईसा अज्ञानियों के लिये प्रकाश खोजने और दुःखियों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये अपनी ही सत्ता की गहराइयों में सहायता खोजने के लिये बाहर निकाले गये थे। सच्चे संन्यासी सबसे अधिक महान् कार्यकर्ताओं में हैं क्योंकि उनके अंदर अधिक-से-अधिक अमिश्रित और अखूट बल होता है, वे भगवान् का कार्य करने के लिये भगवान् के अंदर सबसे अधिक प्रबल लोग होते हैं।

वैराग्य का ठीक स्वभाव या तात्कालिक और उत्तेजक कारण चाहे कुछ भी क्यों न हो, अगर शाश्वत के साथ मिलन की प्यास है तो यह जान लो कि यह सच्चा वैराग्य और तुम्हारी मुक्ति के लिये सच्चा आवेग है। अगर तुम्हें शाश्वततक पहुंचना ही है तो इस स्थिति से होकर गुजरना ही होगा। क्योंकि अगर तुम प्रपंचात्मक जगत् से ऊब न जाओ तो तुम्हारा मन शाश्वत की ओर नहीं मुड़ सकता, प्रपंचात्मक जगत् का आकर्षण तुम्हारी आंखों को ऊपर नहीं नीचे, भीतर की ओर नहीं, बाहर की ओर रखता है। अतः अपने जीवन में वैराग्य के पहले प्रवाह का स्वागत करो और साथ ही यह याद रखो कि यह मार्ग का लक्ष्य नहीं उसका पहला पड़ाव है। स्वामी भास्करानन्द जीवन के प्रति बहुत तीव्र और विजयी घृणा के कारण संन्यासी बने थे, लेकिन जब उन्होंने मुक्ति पा ली तो उनका मन इतना बदल गया कि यदि उनकी पत्नी जिंदा होतीं तो वे उसके साथ साधारण गृहस्थ की तरह रह लेते—यह एक ऐसा विचार है जो पण्डितों और विद्वानों की मण्डली को वीभत्स लगता, परन्तु जीवनमुक्त के लिये यह मामूली बात है। जब रामकृष्ण ने प्रभु के साथ तादात्म्य पा लिया तो वे गृहस्थ की भांति दुनिया में न लौट सकते थे और न सांसारिक वस्तुओं के स्पर्श को ही सह सकते थे—क्योंकि वे परम भक्ति के अवतार थे—लेकिन वे जगत् में अभिव्यक्त शाश्वत के अंदर और विशेष रूप से मनुष्य में उतना ही आनन्द ले सकते थे जितना उस शुद्ध निष्क्रिय ब्रह्म में जिसके साथ वे समाधि में एक होते थे। कर्मयोगी को वैराग्य की स्थिति में से गुजरना तो पड़ता है परन्तु वह उसी में निवास नहीं करेगा। या ज्यादा ठीक तरह से कहा जाये तो वह उसमें आध्यात्मिक तत्त्व को बनाये रखेगा और भौतिक तत्त्व को छोड़ देगा। वैराग्य का आध्यात्मिक तत्त्व है प्रपंचात्मक विषयों और क्रियाओं के लिये स्वार्थपूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामनाओं से मुंह मोड़ लेना, भौतिक तत्त्व है स्वयं विषयों और क्रियाओं से डरना और सकुचाना। आध्यात्मिक तत्त्व को बनाये रखना सभी योगियों के लिये जरूरी है। भौतिक तत्त्व को बनाये रखना प्रायः भौतिक शुद्धि और साधुता का लक्षण माना जाता है परन्तु मुक्ति के लिये आवश्यक नहीं है।

उन बहुत-से लोगों के उच्च प्रमाणों या अधिकार-वचनों से न घबराओ जो कहते हैं कि ब्रह्म की खोज करनेवालों के लिये संसार का त्याग जरूरी है और मुक्ति कर्म से नहीं प्राप्त हो सकती। हमारे पास इनके विरुद्ध खड़ा करने के लिये एक बहुत अधिक बड़ा प्रमाण स्वयं श्रीकृष्ण की शिक्षा में है। महाभारत के उद्योगपर्व में वे संजय से कहते हैं कि कर्म-सिद्धांत और निष्क्रियता-सिद्धांत के बीच उन्हें पहला ज्यादा पसंद है और दूसरा तो उन्हें दुर्बलों का प्रलाप मालूम होता है। इसी तरह गीता में ज्ञान और भक्ति पर जोर देते हुए वे कर्म को देश निकाला नहीं देते और न उसे किसी निचले स्थान में ढकेल देते हैं। गीता का सबसे महत्त्वपूर्ण अंश कर्मयोग का गुणगान, उसकी प्रकृति और उसके सिद्धांतों का प्रेरणा-भरा प्रतिपादन है। ज्ञान निश्चय ही अनिवार्य है, वह सर्वप्रथम और सर्वोत्तम है। ज्ञान-विहीन कर्म मनुष्य का निस्तार न करेंगे बल्कि उसे दासता में अधिकाधिक डुबायेंगे। उपनिषद् कर्म की आवश्यकता के बारे में कहने से पहले यह बतलाने की सावधानी बरतता है कि तुम्हें ईश की उस उपस्थिति का अनुभव करना चाहिये जो समस्त विश्व को लपेटे हुए है, इतना ही नहीं, उसके अंदर समायी हुई प्रत्येक वस्तु को भी। जब तुम्हें यह ज्ञान प्राप्त हो जाये कि सब कुछ एक ही ब्रह्म है और तुम्हारे कर्म पुरुष के आनन्द के लिये प्रकृति द्वारा उद्घाटित होते हुए नाटकीय भ्रम हैं तब तुम बिना कामना और भ्रांति के कर्म कर सकोगे, जगत् का त्याग कर सकोगे ताकि उसे भोग सको जैसा कि उपनिषद् कहता है या जिसके लिये श्रीकृष्ण सलाह देते हैं कि अपने कर्म-फल की समस्त लालसा छोड़ दो। तुम अपने समस्त कर्म ईश को अर्पित कर दोगे, अपनी निचली मिथ्या सत्ता को नहीं जो तुम्हारे कर्मों के परिणाम में सुख, दुःख का अनुभव करती है, बल्कि उस ब्रह्म को अर्पित कर दोगे जो तुम्हारे अंदर हैं, जो '*लोकसंग्रहार्थम्*' कर्म करता है—लोगों को एक साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखने के लिये—ताकि अप्रशिक्षित भीड़ तुम्हारी अकर्मण्यता से चकराकर भटक न जाये, इसकी जगह तुम्हारे देवोपम कार्यों से जगत् को सहायता मिले, वह मजबूत हो और उसकी देखभाल हो सके। और अगर तुम कामना और फल के लिये आसक्ति के बिना कर्म करोगे तो तुम्हारे कर्म देवोपम होंगे क्योंकि भगवान् इसी तरह कर्म करते हैं। जगत् उनकी लीला है, खेल है, कोई सोद्देश्य आन्दोलन या संघर्ष नहीं जिससे उन्हें कुछ लाभ होगा या वे कुछ मुनाफा करेंगे। यह महान् साम्राज्य जिसकी तुम महिमा गाते हो और जिसे शाश्वत समझते हो, उनके लिये बालू की दीवार से बढ़कर नहीं है जिसे एक बच्चे ने अपने खेल के लिये बनाया है। उन्होंने इसे बनाया है और वे ही इसे नष्ट कर देंगे और एक दिन ऐसा लगेगा मानों यह सब कभी था ही नहीं। ये सूर्य और उसके मंडराते हुए ग्रह उनके हाथों के क्षणिक खिलौने हैं। एक समय था जब वे नहीं थे, अब वे हैं और एक समय आयेगा जब वे फिर से नहीं होंगे। फिर भी जब ईश इन चीजों पर काम करते हैं तो वे उस बच्चे की तरह काम करते हैं जो बालू से महल बनाता है, मानों वह महल स्थायी और अविनाशी होगा।

न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय ।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ॥ गीता (९.९)

"फिर भी ये कर्म मुझे नहीं बांधते, हे धनञ्जय, क्योंकि मैं एकदम उदासीन की तरह रहता हूं और अपने कर्मों से आसक्त नहीं होता।" त्याग के बाद किये गये कर्म, भगवान् को अर्पित कर्म—ये कर्म न तो मनुष्य से चिपकते हैं न उसे अदृश्य जंजीरों में बांधते हैं बल्कि उससे इस तरह झड़ते जाते हैं जैसे हंस के पंखों से पानी। वे उसे नहीं बांध सकते क्योंकि वह कार्य-कारण के जाल से मुक्त होता है। कार्य और कारण द्वैत के भाव में रहते हैं जिसकी जड़ अविद्या में है। जब योगी कामना को त्याग देता है और एकत्व का अनुभव पा लेता है तो अविद्या और उसकी सन्तति से ऊपर उठ जाता है और उसके लिये बंधन का कोई अर्थ नहीं रहता। कर्मयोग का, और सभी तरह के योगों का यही उद्देश्य होता है लेकिन उसका मार्ग आध्यात्मिक वैराग्य और कामना के त्याग द्वारा होता है, भौतिक रूप से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामना के विरोधों से अलग होकर नहीं। मंत्र की दूसरी पंक्ति में उपनिषद् इसी बात पर जोर देता है, "इस तरह यही तेरा मार्ग है, इसके अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है, इस तरह कर्म मनुष्य के साथ चिपकता नहीं।" *एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे*। यह निर्णायक बात है जिसके विरुद्ध कोई अपील नहीं हो सकती।

३—तीन नहीं, एक ही मार्ग—

नान्यः पन्थाः विद्यते, "इसके सिवा कोई और मार्ग नहीं है," इसका यह मतलब नहीं है कि सभी मनुष्यों के लिये कर्मयोग ही मोक्ष का एकमात्र मार्ग है, परन्तु मोक्ष के लिये कामना का त्याग आवश्यक है। ज्ञानी, भक्त या कर्मयोगी जो भी काम करे उसका उत्सर्ग शाश्वत के लिये होना चाहिये। कर्मयोगी के लिये यही एकमात्र संभव पथ है क्योंकि मनुष्य का स्वभाव यह निश्चय करता है कि वह कौन-सा मार्ग चुने। अगर कोई जन्मजात ज्ञानी किसी बड़े भक्त का शिष्य हो जाये, वह अपने गुरु की शिक्षा को चाहे जितनी विनम्रता के साथ स्वीकार करे, वह अपने ज्ञान में चाहे जितनी भक्ति का मिश्रण क्यों न कर दे फिर भी उसे ज्ञान-मार्ग ही अपनाना होगा, कोई और नहीं क्योंकि यही उसका स्वभाव, उसकी सत्ता का धर्म है। अगर उसमें ब्राह्मण की प्रधानता है तो वह ज्ञान की ओर आकर्षित होगा, अगर क्षत्रिय प्रधान हो तो कर्म की ओर, अगर शूद्र या वैश्य, बालक या स्त्री हो तो भक्ति की ओर। अगर वह जन्मजात सन्त या अवतार हो तो वह तीनों का समन्वय करेगा, फिर भी उनमें से एक बाकी की अपेक्षा प्रधान होगा, जो उसके जीवन और शिक्षा का मुख्य स्वर होगा। हमेशा एक या दूसरे की प्रधानता, उसका अमिश्रित अधिकार नहीं, मार्ग का निर्णय करती है। जैसा कर्मयोगी के साथ होता है भगवान् की ओर कर्मों का उत्सर्ग अनिवार्य रूप से भागवत प्रेम को लाता है और प्रेम ज्ञान देता है, भक्त के साथ भी यही होता है; भागवत प्रेम अपने-आप उसके समस्त कर्मों को भगवान् की ओर प्रेरित करेगा और उसे सीधा ज्ञानतक पहुंचा देगा। ज्ञानी के साथ भी यही बात है। ब्रह्म के ज्ञान का अर्थ है ब्रह्म में आनन्द और यह है भक्ति; और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह प्रेम और ज्ञान उसे अपने अंदर ही न रहने देंगे बल्कि उसे ब्रह्म की ओर जाने के लिये प्रेरित करेंगे और यह दिव्य कर्म है। तीनों मार्ग वस्तुतः एक हैं। ज्ञानी दाहिना हाथ लेता है और भक्त बायां और कर्मयोगी बीच में चलता है; जब वह मार्ग पर है तो हर एक अपने मार्ग को सबसे ज्यादा पसंद करता है और सोचता है कि अन्य मार्ग घटिया हैं, लेकिन जब वे अपने लक्ष्यतक पहुंचते हैं तो उन्हें पता लगता है कि कोई बढ़िया या घटिया न था, वे एक ही मार्ग पर चल रहे थे जो देखने में तीन मार्ग लगते थे।

ज्ञानी और भक्त मोक्ष-प्राप्ति के साधन के रूप में कर्म से सकुचाते हैं। अप्रबुद्ध कर्म जिज्ञासु के मार्ग में एक बहुत बड़ा रोड़ा है इसलिये वे प्रबुद्ध, निष्काम कर्म को भी एक अधीनस्थ अनुशासन मान लेते हैं जिसका एकमात्र मूल्य यह है कि वह मनुष्य को भक्ति या ज्ञान के लिये तैयार करे। वे आसानी से यह स्वीकार न करेंगे कि कर्म अपने-आपमें ब्रह्मतक जाने का एक सीधा और पर्याप्त मार्ग हो सकता है। इसलिये शंकराचार्य कर्म की निन्दा करते हैं और शंकराचार्य एक ऐसे आप्त प्रमाण हैं जिनकी कोई अवहेलना नहीं कर सकता। फिर भी, बड़े-से-बड़े लोग भी अपनी प्रकृति द्वारा अनुकूलित हैं, उस काल से जिसमें वे रहते हैं और वे जिस काम को करने के लिये आये हैं उससे प्रतिबद्ध होते हैं। जिस काल में शंकर रहते थे यह ठीक था कि कर्म का पलड़ा हल्का करके ज्ञान की महिमा बढ़ाई जाये। उन्हें जिस महान् जीवित शक्ति का सामना करना था वह बौद्ध धर्म का पिछला ह्रासमान रूप न होकर विजयी कर्मकाण्ड था जो वैदिक अनुष्ठानों के नियमित रूप से पालन को ही एकमात्र पथ और स्वर्ग को उच्चतम लक्ष्य मानता था। उन्होंने यह प्रमाणित करने की सतत चिन्ता में कि ये अनुष्ठान ही मार्ग नहीं हैं, धनुष की प्रत्यंचा को दूसरी दिशा में जितना अधिक खींचा जा सकता था खींचा और उसका यह प्रभाव पड़ा कि कर्म मुक्ति-पथ हो ही नहीं सकता। अगर वे कहते कि कर्म भी मुक्ति का एक मार्ग है तो लोग उनकी बात न समझ पाते। वे यही समझते कि अपने क्रिया-कर्मों और अनुष्ठानों के मुक्ति के लिये पूरी तरह पर्याप्त होने के बारे में विश्वास के लिये एक और प्रमाण मिल गया। जब हम देखें कि उपनिषदों की व्याख्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उनके भाष्य में शंकर, रामानुज और माध्व में इतना अधिक मतभेद है तो हमें यह चीज याद रखनी चाहिये। यह जरूरी था कि शंकर शास्त्रों की व्याख्या शुद्ध अद्वैत की दृष्टि से करते, शाश्वत की अद्वैतात्मक परिकल्पना से ताकि अद्वैत का विचार एक सुनिश्चित और दृढ़ दार्शनिक अभिव्यक्ति पा सकता। और इसी तरह यह जरूरी था कि माधवाचार्य उनकी व्याख्या पूरी तरह द्वैत दृष्टि से करें और रामानुज इन दोनों का समाधान विशिष्टाद्वैत में पायें जो परिवर्तित अद्वैतवाद था। शाश्वत के बारे में इन सब धारणाओं का अपना सत्य है और शाश्वततक पहुंचने के लिये आत्मा के प्रयास में उनका अपना उपयोग है। लेकिन उपनिषद् केवल ब्रह्म की अपने अंदर की अन्तिम वास्तविकता से ही संबंध नहीं रखता बल्कि साथ ही ब्रह्म की अपने विश्व में अपनी वास्तविकता तथा जीवात्मा यानी व्यष्टिगत आत्मा का अपनी वास्तविकता के साथ भी संबंध रखता है। इसलिये कभी वह अद्वैतवादी, कभी द्वैतवादी और कभी विशिष्टाद्वैतवादी होता है। अब हमारे अंदर वह साहस होना चाहिये कि उन मार्गों को छोड़, जिन्हें महान् मृतात्माओं ने हमारे लिये तैयार किया था, अपने मन से सभी पूर्वकल्पित दर्शनों को निकाल दें और बस इतना ही पूछें, ''उपनिषद् सचमुच क्या कहते हैं ?'' इसकी परवाह न करो कि हमारे निष्कर्ष तार्किक को असंगत या परस्पर-विरोधी मालूम होते हैं या तात्त्विक तर्क करनेवाले को असंगत मालूम होते हैं। इतना पर्याप्त है कि वे भगवान् की खोज करनेवाले की अनुभूति में सच्चे हैं। शाश्वत अनन्त है और उसे तार्किक सूत्रों के तंग घरौंदे की सीमाओं में बंद नहीं किया जा सकता।

४—कर्म द्वारा मुक्ति का निषेध

आखिर कर्मों के द्वारा मुक्ति के निषेध का अर्थ क्या होता है—जब हम उसे केवल तर्क की दृष्टि से नहीं बल्कि वास्तविक आध्यात्मिक अनुभव की दृष्टि से देखें ? कुछ लोग, जब वे कर्म की बात करते हैं तो उनका मतलब केवल वैदिक, पौराणिक या तांत्रिक क्रिया-कर्म या कर्म-काण्ड से होता है। इस प्रकार के कर्म निश्चय ही हमें मुक्ति की ओर नहीं ले जाते। वे सफलता और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत खुशी दे सकते हैं, इस जगत् में शक्ति, वैभव दे सकते हैं या वे मृत्यु के बाद स्वर्ग में भोग प्रदान कर सकते हैं; लेकिन स्वर्ग तो मुक्ति नहीं है, वह आत्मा की अस्थायी आह्लादपूर्ण स्थिति है जिसकी प्रसन्नता कारण समाप्त होने के साथ-ही-साथ समाप्त हो जाती है। या ये क्रियाएं सचेतन रूप से उन गुह्य शक्तियों पर अधिकार और उनके उपयोग की ओर ले जाती हैं जो साधारण मनुष्य के अंदर छिपी रहती हैं, जिनके द्वारा तुम औरों की सहायता कर सकते हो या उन्हें हानि पहुंचा सकते हो। लेकिन गुह्य शक्तियों पर अधिकार सहायक नहीं हो सकता, वह बहुधा मुक्ति के मार्ग में बाधक ही होता है। या क्रियाएं और अनुष्ठान मन को शुद्ध करके मुक्ति के किसी मार्ग पर चलने के योग्य बना सकते हैं। हमारे जीवन के सच्चे लक्ष्य के लिये उनकी बस यही सहायता है। वे ब्रह्मविद्या के विद्यालय में प्रारंभिक या शिशु-कक्षा से बढ़कर कुछ नहीं हैं।

फिर यह स्पष्ट है कि कामना द्वारा किये गये कर्म, ज्ञान के बिना किये गये और भगवान् को समर्पित न किये गये कर्म मुक्ति की ओर नहीं सतत बद्धता की ओर ले जाते हैं। कामना द्वारा प्रेरित कर्म केवल कामना की पूर्ति की ओर ले जाते हैं और उस पूर्ति में वे समाप्त भी नहीं होते। हम जो भी काम करते हैं वह स्वयं हमारे ऊपर प्रभाव डालने के सिवा औरों पर भी तथा जगत् की सामान्य गतिविधि पर भी अनन्त प्रभाव डालता है और वे फिर कारण बनकर नये प्रभाव पैदा करते हैं। इस तरह लहरियां ज्यादा विशाल होती जाती हैं यहांतक कि भावी की दूरी में जाकर हमारी आंखों से ओझल हो जाती हैं। अपने सभी कर्मों के प्रभाव के लिये हमारी जिम्मेदारी है और हम जो भी नयी चीज करते हैं वह हमें नये ऋणों में डालती जाती है, सांसारिक जीवन के उत्तरदायित्वों से छुटकारा पाने से पहले हमें इन सब ऋणों को चुकाना पड़ेगा। हम जगत् में अस्तित्व को एक ऋणी के कारागार के रूप में मान सकते हैं जिसमें आत्मा को उसके लाखों ऋणकर्ताओं ने बंद कर रखा है जिनमें से एक भी कर्ज की एक कौड़ी भी माफ करने को तैयार न होगा। लेकिन हम इन कर्जों से कभी छुटकारा न पा सकेंगे क्योंकि हम अपने पुराने कर्ज चुकाने के लिये जो भी पाते हैं वह नये कर्ज लेकर ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलता है जो हमें नये और समान रूप से कठोर दावेदारों की दया पर आश्रित कर देता है। प्रकृति जो महान् न्यायाधीश और जेलर है, बराबर हमारे विरोध में नयी डिगरियां देती जाती है, क्योंकि उसका विधान कठोर है जिसमें किसी छूट या सुविधा के लिये जगह नहीं है। हम उससे छुटकारा तभी पा सकते हैं जब उसके क्षेत्र से निकल कर भगवान् के शरण-क्षेत्र में जा पहुचें जहां जाकर प्रकृति का दास, उसमें प्रवेश पाते ही, मुक्त और प्रकृति का स्वामी बन जाता है।

लेकिन कर्मयोगी के कर्म कामना के बिना और ज्ञान के साथ किये गये काम होते हैं। निश्चय ही ये हमारी मुक्ति को नहीं रोक सकते और न ही नये ऋणों और नये बंधनों की ओर ले जाते हैं क्योंकि बंधन कामना और अज्ञान का परिणाम है और कामना और अज्ञान के साथ ही उड़ जाता है। निश्चय ही कामना और अज्ञान प्रकृति के क्षेत्र की सीमाएं हैं और एक बार हम उन्हें पीछे छोड़ दें तो हम उसके राज्य से बाहर निकल आते हैं, हम उसके पीछा करने से छुटकारा पा जाते हैं, भगवान् की शरण में पहुंच पाते हैं जहां हम उसके विधान से मुक्त स्वच्छन्द पुरुष होते हैं। निष्काम कर्मों के निर्दोष होने से इंकार करना तर्कबुद्धि का खंडन करना, श्रुति से और तथ्यों से इंकार करना होगा क्योंकि जनक तथा अन्यों ने कर्म किये थे, श्रीकृष्ण ने कर्म किये थे लेकिन कोई नहीं कह सकता कि वे जीवन-मुक्त या वे अवतार अपने कर्मों से बद्ध थे; क्योंकि उनके कर्म कामना के बिना और ज्ञान के साथ किये गये थे। तो निष्काम कर्म मुक्ति को नहीं रोक सकते और नये बंधनों की ओर नहीं ले जा सकते।

यह युक्ति दी जा सकती है कि अगर कर्म मुक्ति को रोकते नहीं तो उसकी ओर जाने में सहायता भी नहीं करते। भक्त या ज्ञानी के कर्म उसे बांधते नहीं, क्योंकि उसने तो शाश्वत को प्राप्त कर लिया है और उस प्राप्ति के बल पर वह कामना और अज्ञान से मुक्त हो जाता है; लेकिन इस प्राप्ति से पहले किये गये कर्म बंधन के सिवा कुछ नहीं हो सकते। केवल ईश-ज्ञान की खोज और भगवान् की पूजा अर्चना—जिसे उचित रूप से कर्म का नाम नहीं दिया जा सकता—उत्तरदायित्व से मुक्त हैं। लेकिन यह तर्क भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिव्य शिक्षा, अनुभूति या तर्क बुद्धि के साथ संगत नहीं है क्योंकि भगवान् की शिक्षा हमसे स्पष्ट रूप में कहती है कि जगत् के त्याग के बाद किये गये, भगवान् को अर्पित कर्म मुक्ति की ओर ले जाते हैं। हम जानते हैं कि एक निष्काम और ईश को अर्पित कर्म हमें उसी प्रकार के अन्य नये-नये कर्मों के लिये शक्ति देता है और ऐसे कर्मों का सतत दोहराना निश्चित रूप से निष्काम होने और भगवान् के प्रति आत्मोसर्ग की आदत डाल देगा जो आगे चलकर हमारी प्रकृति और हमारा वातावरण बन जायेंगे। हम पहले ही देख आये हैं कि निष्काम होने से हम प्रकृति के अधिकार-क्षेत्र से बाहर निकल जाते हैं और जब हम प्रकृति के अधिकार-क्षेत्र के बाहर हों तो फिर भला शाश्वत की उपस्थिति को छोड़ और हो कहां सकते हैं? और युक्तिसंगत ढंग से यह भी नहीं कहा जा सकता कि ईश के प्रति आत्मोसर्ग हमें ईश की ओर नहीं ले जाता, नहीं तो वह और कहां ले जायेगा? अतः यह स्पष्ट है कि निष्काम कर्म न केवल हमें मुक्ति से नहीं रोकता बल्कि मुक्ति के मार्ग में बहुत बड़ी सहायता है।

यह भी तर्क किया जा सकता है कि निष्काम कर्म केवल इसलिये सहायता करता है क्योंकि वह भक्ति और ज्ञान की ओर ले जाता है अतः वहां पहुंचकर उसका काम पूरा हो जाता है। वह आत्मा को अमुक स्थिति तक पहुंचा देता है पर सीधा भगवान्तक नहीं पहुंचाता। केवल भक्ति और ज्ञान ही हमें भगवान् तक पहुंचा सकते हैं। जैसे ही इन दोनों में से कोई उसकी बांह पकड़ ले, कर्म को उसका साथ छोड़ देना चाहिये, ठीक उसी तरह जैसे कर्मकाण्ड को उसे छोड़ देना चाहिये, अतः कर्म का स्थान तत्त्वतः क्रियाओं और अनुष्ठानों से ऊंचा नहीं है। अगर यह ठीक तर्क हो तो कर्मयोगी उतने ही बल के साथ कह सकता है कि भक्ति ज्ञान की ओर और अपने कर्मों को भगवान् के प्रति अर्पण करने की ओर ले जाती है; अतः ज्ञान और निष्काम कर्म ही मनुष्य को शाश्वत की ओर ले जाते हैं, भक्ति तो केवल एक प्रारंभिक साधन है या ज्ञान शाश्वत की आराधना की ओर ले जाता है और हम जो कुछ करें उसे भगवान् को अर्पण करने की ओर ले जाता है; अतः केवल भक्ति और निष्काम कर्म ही आत्मा को सीधा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान् के पास ले जाते हैं और ज्ञान केवल एक प्रारंभिक साधन है। और अगर यह कहा जाये कि कर्म को अमुक स्थिति पर आकर रुक जाना चाहिये जब कि भक्ति और ज्ञान नहीं रुकते हैं तो यह भी अनुभव के साथ असंगत है। जनक आदि शाश्वत को प्राप्त कर चुकने पर भी कर्म करते रहे, वे जबतक शरीर में रहे उन्होंने कर्म करना नहीं छोड़ा। और यह भी नहीं कहा जा सकता कि यद्यपि शाश्वत को पाने के बाद कर्म को बंद करना जरूरी नहीं है फिर भी उनका जारी रहना भी जरूरी नहीं है। कुछ कर्म-विशेष ऐसे हैं जिनका जारी रहना जरूरी नहीं, क्रिया-कर्म और अनुष्ठानों को जारी रखना जरूरी नहीं है, गृहस्थ जीवन को जारी रखना जरूरी नहीं है। लेकिन जबतक सूक्ष्म या स्थूल शरीर बना रहे तबतक कुछ कर्मों का जारी रहना जरूरी है; क्योंकि स्थूल और सूक्ष्म दोनों शरीर, शारीरिक और आत्मिक दोनों खोल प्रकृति का भाग हैं और जो कुछ प्रकृति है उसे कर्म करना चाहिये। गीता ने यह स्पष्ट कहा है :

न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥

"सचमुच कोई मनुष्य क्षणभर के लिये भी कुछ काम किये बिना नहीं रह सकता क्योंकि सभी प्रकृति से जन्मे गुणों के द्वारा किये गये कार्य करने के लिये विवश हैं।" और फिर '*सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।*' "ज्ञानी भी अपनी प्रकृति के सदृश्य क्रिया-कलाप करता है क्योंकि सृष्ट वस्तुएं अपनी प्रकृति का अनुसरण करती हैं, जबर्दस्ती करने से क्या हो सकता है?" मनुष्य अपनी प्रकृति का अनुसरण करता है और कर्म किये बिना नहीं रह सकता; लेकिन वह यह चुनाव कर सकता है कि अपना कर्म किसे अर्पित करेगा, अपनी निम्नतर सत्ता को या उच्चतर को, कामना को या भगवान् को। जो मनुष्य जगत् को पीछे छोड़कर किसी पर्वत-शिखर या आश्रम में जा बैठता है, कर्म से छुटकारा नहीं पाता। और कुछ न सही फिर भी उसे अपने शरीर की देखभाल तो करनी ही होती है। उसे खाना-पीना, चलना, हाथ-पैर हिलाना, आसन जमाकर बैठना और ध्यान करना तो होता है। ये सब कर्म हैं। और केवल उसका शरीर ही काम नहीं करता; उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन शरीर से भी ज्यादा कर्मठ होता है। अगर वह कामना से मुक्त नहीं है तो उसका कर्म उसे बांधे रहेगा और स्वयं उसके साथ तथा औरों के साथ सम्बद्ध फल लायेगा। अगर वह कामना से मुक्त भी हो जाये तो भी उसका मन और शरीर तबतक कर्म से मुक्त नहीं होते जबतक वह पूरी तरह उनसे अंतिम रूप से पीछा न छुड़ा ले और यह तबतक न होगा जबतक कि प्रारब्ध कर्म अपने-आपको चरितार्थ न कर ले और उसके नाम के आगे लिखे ऋण चुकता न हो जायें। बड़े-से-बड़ा योगी केवल अपनी शारीरिक उपस्थिति से ही चारों दिशाओं में आध्यात्मिक शक्ति की एक धारा प्रवाहित करता रहता है। यह सच है कि यह कर्म उसे बांधता नहीं है फिर भी है तो कर्म ही और ऐसा कर्म जिसका औरों पर बहुत अधिक प्रभाव होता है। वह '*सर्वभूतहितरतः*', अपनी प्रकृति से ही सभी प्राणियों का भला करने में लगा रहता है चाहे वह एक उंगली भी न उठाता हो, एक कदम भी न चलता हो। वह भी अपने सूक्ष्म और स्थूल शरीर के बारे में अवश है, उसे प्रकृति के गुणों को कार्य करने देना चाहिये। वह उस कर्म का नियंत्रण कर सकता है, क्योंकि अब वह प्रकृति का दास नहीं है, लेकिन वह शाश्वत के साथ योग द्वारा शरीर और मन को त्यागे बिना उसे बंद नहीं कर सकता। अतः कर्म भी ज्ञान या भक्ति की तरह चलता चला जाता है।

शंकराचार्य कहते हैं कि ज्ञान प्राप्त करके हम अनिवार्य रूप से कर्म करना बंद कर देते हैं क्योंकि ज्ञान हमें शाश्वत के साथ एक कर देता है जो अकर्ता है। लेकिन जनक शाश्वत को जानते थे और फिर भी कर्म करते थे; श्रीकृष्ण अपने-आप शाश्वत थे फिर भी कर्म करते थे। क्योंकि ब्रह्म और शाश्वत एक ही साथ कर्ता और अकर्ता हैं; वह कर्म करता भी है और नहीं भी। सच्चिदानन्द के रूप में वह कर्मों के ऊपर है, लेकिन वह ज्ञान और भक्ति के भी ऊपर है। जब जीवात्मन् सच्चिदानन्द बन जाता है तो भक्ति, आनन्द या निरपेक्ष आनन्द में लीन हो जाता है, ज्ञान चित् या निरपेक्ष चेतना में और कर्म सत् में या निरपेक्ष अस्तित्व में लीन हो जाता है। लेकिन ईश या शक्ति के रूप में वह कर्म करता है, जिनसे वह बंधा नहीं रहता। जीवात्मन् जब ईश या शक्ति के साथ एक हो जाता है तो बंधे बिना कर्म करता चला जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः कर्म शरीर के साथ ही समाप्त नहीं हो जाते और न वे हमारे शरीर-त्याग के बाद बंद होते हैं। वे बंद होते हैं अकर्ता सच्चिदानन्द के साथ एक होकर या अज्ञेय ब्रह्म में लीन होकर जहां ज्ञान और भक्ति भी अथाह सत्ता में लील लिये जाते हैं। अज्ञेय परब्रह्म के बारे में भी यह नहीं कहा जा सकता कि वह क्रियाहीन है; वह न तो कर्ता है न अकर्ता। वह है नेति, नेति, वाणी और मन की परिभाषाओं में अव्याख्येय और अनिर्वचनीय। अतः हमें यह भय न करना चाहिये कि निष्काम कर्म हमें सीधा शाश्वत तक न ले जायेगा। हमें यह न सोचना चाहिये कि हमें भगवान् के लिये प्रेम विकसित करने या भगवान् का ज्ञान पाने के लिये कर्मों का त्याग कर देना चाहिये।

५—मुक्ति और जीवन-मुक्त

कर्मयोगी का आदर्श है जीवनमुक्त, एक ऐसी आत्मा जिसने मुक्ति पा तो ली है परन्तु तुरन्त प्रपंचात्मक जगत् से बाहर हो जाने की जगह उसी में बनी रहती है परन्तु उसके बंधन से मुक्त होती है। मुक्ति तीन प्रकार की होती है और ये तीनों सापेक्ष और आंशिक हैं: सालोक्य या भगवान् के साथ सतत सहचारिता, सादृश्य या भगवान् के साथ अपनी प्रकृति और क्रिया में सतत एकरूपता, और सायुज्य या व्यष्टिगत आत्मा का शाश्वत के साथ सतत ऐक्य। कुछ संप्रदायों की मान्यता है कि समस्त मुक्ति का एक ही अर्थ है, शाश्वत में लय, अन्य शब्दों में, जगत् से आत्मा का पूर्ण निष्कासन और अप्रतिबद्ध, अज्ञेय परब्रह्म की परम सत्ता में प्रवेश। ऐसा लय शरीर में सम्भव नहीं है—*आदेहनिपातात्*—वह देहनिपात के बाद ही शुरू हो सकता है, ठीक उस समय जब आत्मा अपने समस्त शरीरों को छोड़कर फिर से परम अस्तित्व में प्रवेश करती है। वस्तुतः मृत्यु का यांत्रिक परिवर्तन ही ये परिणाम नहीं लाता, बल्कि आत्मा की इच्छा लाती है कि वह अपने सभी शरीरों को फेंक दे और उनमें कभी न लौटे, चेतना की उस स्थिति से शाश्वत में पहुंच जाये जहां वह अपने-आपको एक इच्छा या शक्ति के रूप में देखे।

—(क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्फुट वचन

बस, यही तरीका है जिससे भगवान् अपने प्रेमवश शिशु अंतरात्मा तथा दुर्बल प्राणी को शिक्षा देते हैं—वे उन्हें एक-एक पग आगे ले जाते हैं तथा अपने चरम एवं अभी अप्राप्य पर्वत-शृंगों का दर्शन नहीं होने देते। और, क्या हम सबके अंदर कोई-न-कोई दुर्बलता नहीं है ? क्या उनकी दृष्टि में हम सबके सब केवल नन्हें बच्चे ही नहीं हैं ?

*

आज नास्तिक को भी यह देख सकना चाहिये कि सृष्टि किसी असीम और शक्तिशाली उद्देश्य की ओर अग्रसर हो रही है, उस उद्देश्य की ओर जिसे क्रम-विवर्तन अपने स्वभाववश ही स्वीकार करता है। परंतु असीम उद्देश्य और उसकी परिपूर्ति पहले ही मान लेती है कि कोई असीम प्रज्ञा है जो तैयार करती, रास्ता दिखाती, गढ़ती, रक्षा करती और समर्थन करती है। तब उस दिव्य प्रज्ञा का आदर कर और, मंदिर में धूपबत्ती के द्वारा नहीं तो, अपनी अंतरात्मा में चिंतन के द्वारा उसकी पूजा कर। यदि तू अनंत प्रेमवाले हृदय तथा अनंत आत्म-ज्योतिवाले मन को अस्वीकार करे तो भी उसकी पूजा कर। तब तू देखेगा कि, यद्यपि तू बिना जाने जिसका आदर करता और पूजा करता है वह श्रीकृष्ण ही हैं।

*

प्रेमेश्वर ने कहा है, "जो लोग अज्ञेय और अनिर्देश्य की उपासना करते हैं वे मेरी ही उपासना करते हैं और मैं उन्हें स्वीकार करता हूं।" उन्होंने अपनी वाणी के द्वारा मायावादी और अज्ञेयवादी का समर्थन किया है। तब, हे भक्त, तू भला उसकी निंदा क्यों करता है जिसे तेरे परम प्रभु ने स्वीकार कर लिया है ?

(माताजी द्वारा चुने हुए श्री रामकृष्ण के वचन)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोसायटी समाचार

बैंगलोर के श्रीअरविंद भवन में अखिल कर्णाटक आराधना शिविर १७, १८, १९ फरवरी को हुआ। इसमें कर्णाटक के विभिन्न भागों से और स्वयं बैंगलोर से लोगों ने भाग लिया था।

गुंटूर (आंध्र प्रदेश) में २१ फरवरी को श्रीअरविंद भवन का उद्‌घाटन किया गया। यहां माताजी की पताका फहरायी गयी और अखंड भारत के मानचित्र का उद्‌घाटन हुआ।

पांडिचेरी विश्वविद्यालय के दर्शन-विभाग और श्रीअरविन्द सोसायटी ने मिलकर २३ और २४ फरवरी को डा॰ वेंकट सुब्रह्मण्यम् की अध्यक्षता में विचार-गोष्ठी की व्यवस्था की जिसमें सर्वश्री अरविंद बसु, बालसुब्रह्मण्यम्, सुन्दरेशम और माधव पंडित के भाषण हुए। श्री किशोरीलाल ने माताजी और श्रीअरविंद की पुस्तकें तथा चित्र दर्शन-विभाग को भेंट में दिये।

२८ फरवरी को ओरोविल-उद्‌घाटन दिवस के उपलक्ष्य में सोसायटी में ध्यान हुआ।

सोसायटी के युवा-कक्ष ने एक कला-शिविर की योजना की जिसमें भारत के विभिन्न भागों के युवकों ने भाग लिया। क्रियात्मक प्रशिक्षण के अतिरिक्त 'कला और कलाकार', 'जीवन और कला' आदि विषयों पर भाषण हुए।

श्रीअरविंद सोसायटी की ओर से लन्दन, जर्मनी, मॉरिशस, मलेशिया और लंका आदि में माताजी का जन्मदिन उत्साह के साथ मनाया गया।

चंदननगर में श्रीअरविंद के आगमन (तब वह फ्रेंच राज्य में था) की ८०वीं जयन्ती मनायी गयी। निबंध-लेखन की प्रतियोगिता भी हुई।

नया प्रकाशन—'चम्पकलाल की वाणी', मू॰ १४० रु॰। श्रीमती सुषमा गुप्ता ने चम्पकलाल की अंग्रेजी पुस्तक 'चम्पकलाल स्पीक्स' का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया। इसमें अंग्रेजी की अपेक्षा काफी अधिक सामग्री है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

O Lord, awaken in me an ardent desire to know Thee. I aspire that my life may be consecrated to Thy service.

The Mother

Space donated by

Kooverji Devshi & Co., Pvt. Ltd.

FIREX LEADS TO SAFETY

SAFETY LEADS TO PROSPERITY

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबसे पहली चीज होनी चाहिये 'शांति'। तुम जो कुछ करो उसे शांतिपूर्ण तरीके से करना चाहिये।

सहारनपुर सर्विस स्टेशन

पैट्रोल पम्प, देहरादून रोड

सहारनपुर–२४७००१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Registered with the Registrar of Newspapers for India
No. R. N. 18135/70
REGD. No. M. 8731

"The constant remembrance of the Divine is indispensable for transformation."

—THE MOTHER

With Best Wishes from:

MRS. KOYAL DEORAH CHARITABLE TRUST

28, VARSHA, 69/B, NEPEANSEA ROAD

BOMBAY - 4000 006

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्निशिखा

अखिल भारतीय पत्रिका

जून १९९०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जून १९९० वर्ष २०, अंक ११, पूर्णांक २३१

विषय-सूची

सन्देश		१
'संपादकीय': सरल उपाय	अनुबेन	२
दैनन्दिनी		४
कर्मयोगी (ईशोपनिषद् पर भाष्य)	श्रीअरविन्द	७
संतुलन	श्रीमां	१८
'ऋषिवर बोले': विजय के साझेदार		१९
सत्य-आरोहण	श्रीमां	२३
सोसायटी समाचार		३८

आपका अग्निशिखा/पुरोधा का चंदा ... में समाप्त हो रहा है। कृपया अग्निशिखा के १० और पुरोधा के १४ शीघ्र भेजें अन्यथा अगला अंक वी. पी. पी. से जायगा। वी. पी. पी. लौट आने से हमें बहुत हानि होती है। अलग अनुस्मारक नहीं भेजा जायगा। कृपया चेक न भेजें। चाहें तो २२५ और २७५ एक साथ या किस्तों में देकर अग्निशिखा और पुरोधा के या ५०० देकर दोनों के आजीवन सदस्य बन सकते हैं।

अग्निशिखा वार्षिक १०.०० आजीवन २२५.००

श्रीअरविंद सोसायटी की मासिक पत्रिका

संपादक: रवींद्र, अनुबेन
प्रकाशक: श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी–६०५००२
मुद्रक: अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी–६०५००२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संदेश

...यह कहना कि एशिया अभी-अभी अपनी बाल्यावस्था से निकल रहा है, जब कि यूरोप बूढ़ा और जर्जर हो गया है, प्रचलित मान्यताओं के बिल्कुल विरुद्ध है। पर इसमें एक गहरा सत्य है। पश्चिम की अपेक्षा पूर्व हजारों वर्ष पुराना भले हो, पर केवल अधिक वर्षों के आधार पर ही किसी को बूढ़ा नहीं कहा जा सकता। लंबा आयुष्य पानेवाली जातियों में बाल्यावस्था के जितने वर्ष होते हैं, क्षणभंगुर जातियां उतने वर्षों में बचपन, जवानी, बुढ़ापा आदि सब कुछ खतम करके परमधाम को भी चली जाती हैं। एशिया हर चीज में बहुत विशाल है। एशिया का आकार-प्रकार बहुत विशाल है, उसकी गतिविधि विशाल और भव्य है। इसी तरह उसके जीवनकाल की गणना भी की जाती है। यूरोप शताब्दियों में जीता है और एशिया युगों में। यूरोप राष्ट्रों में बंटा हुआ है, एशिया सभ्यता में और संस्कृतियों में। सारे यूरोप में एक ही सभ्यता है जिसका स्रोत एक ही है, वह पुरानी और कहीं से ली हुई है। एशिया में तीन सभ्यताएं हैं जिनमें से हर एक मौलिक और स्थानीय है। यूरोप की सभ्यता का मुख्य स्रोत है यूनान। वह दो-तीन शताब्दियों में बढ़ा, दो शताब्दियोंतक फला-फूला और उसके बाद दो शताब्दियों में मुरझा कर समाप्त हो गया। बरसों की गिनती की जाये तो यूरोप के देश अभी कितने छोटे हैं, फिर भी स्पेन का तो प्राणांत हो ही चुका, आस्ट्रिया को लकवा मार गया है और अब विघटित होता जा रहा है, फ्रांस को एक घातक और असाध्य रोग हो गया है, इंग्लैंड में विघटन और ह्रास के पहले लक्षण शुरू हो चुके हैं। यूरोप के खाली किये हुए स्थान को भरने के लिये एशिया, जो युवा, बलशाली, ओजस्वी, अमरता के उपहार से संपन्न, रूपांतर के रहस्य से अवगत है, आगे आ रहा है। भविष्य पर वही छा जायेगा। केवल वही संसार को अमरता का रहस्य सिखा सकता है। यह रहस्य उसीके पास है।

—श्रीअरविंद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संपादकीय :

सरल उपाय

मनुष्य को संसार के किसी भी क्षेत्र में कार्य करना हो तो स्वस्थ शरीर उसके लिये पहली शर्त होती है। इस युग में चिकित्सा-शास्त्र ने जितनी प्रगति की है, मानव शरीर ने भी नयी बीमारियां अपनाने में उतनी ही तत्परता दिखलायी है। ऐसा महसूस हो रहा है मानों मानव की बौद्धिकता और स्वास्थ्य के बीच दूरी बढ़ती जा रही है, अगर श्रीमां के अनुसार मानव सर्वांगीण प्रगति करे तो ऐसी मनोवैज्ञानिक दूरियां समाप्त हो जायेंगी। इस विषय पर सोचते हुए अचानक मध्यकालीन युग की एक कहानी मस्तिष्क में कौंध उठी, मन में सोचा, कभी-कभी जटिल समस्याओं का हल इतना सरल होता है कि हम उसे ढूंढ़ नहीं पाते। शायद अच्छा स्वास्थ्य रखने के लिये भी निम्नलिखित कहानी का हल ही अपनाने योग्य हो—

कहा जाता है कि महाराज भोज सुबह-सुबह शिप्रा नदी में गलेतक जल में डूबे रहते थे फिर सिर थोड़ा झुकाकर नथुनों द्वारा पानी को खींचकर मुख के द्वारा बाहर फेंक देते थे। इस प्रक्रिया द्वारा वे शरीर को स्वस्थ रखते थे। एक दिन शिप्रा नदी में स्नान करने के बाद महाराज रोज की भांति पूजा करने बैठे किंतु सिर में ऐसी भयंकर वेदना हुई कि वे पूजा अधूरी छोड़कर ही लेट गये। दर्द से तड़पते हुए वे शय्या पर तीन दिन योग्य वैद्यराज की प्रतीक्षा करते रहे किंतु एक भी वैद्यराज उनकी शिरोवेदना का कारण नहीं ढूंढ पाया। इस असफलता से क्रोधित होकर महाराज भोज ने आदेश दिया कि उनके राज्य में जितने भी आयुर्वेद-पद्धति के चिकित्सक हों उन सबको देश निकाला दे दिया जाये क्योंकि सब के सब अज्ञानी हैं। शहर में इस आदेश का ढिंढोरा पिट गया, लोगों में हाहाकार मच गया। सारे चिकित्सक भगा दिये जायें तो जनता को नीरोग कौन करेगा ? हमेशा की तरह लोगों ने आर्त स्वर में भगवान् से प्रार्थना की और उनका आर्तनाद स्वर्गतक जा पहुंचा।

आयुर्वेद के आदि गुरु अश्विनीकुमारों ने लोगों की मदद करने की ठानी और दोनों आयुर्वेद के चिकित्सक का भेष बनाये महाराज भोज के द्वार पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आये। द्वारपाल ने उन्हें बताया कि महाराज का आदेश है, "आयुर्वेद के किसी भी चिकित्सक को मेरे पास न आने देना।" दोनों अजनबी कविराजों ने इतनी मधुर वाणी में प्रार्थना की कि द्वारपाल का दिल पसीज गया और उसने जाकर महाराज से विनती की, "महाराज, किसी अन्य प्रदेश के दो विलक्षण वैद्यराज पधारे हैं, आप उन्हें आज्ञा दें तो शायद वे आपकी वेदना को निर्मूल कर सकें।" महाराज भोज ने अनुमति दे दी और जैसे ही अश्विनीकुमार उनके सामने आये वे उनकी दिव्य कांति और अद्‌भुत व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुए। अश्विनीकुमारों ने महाराज को बेहोश करके देखा कि उनके मस्तिष्क में एक छोटी-सी सफरी मछली फंस गयी थी और उसीके कारण भयंकर पीड़ा हो रही थी। उन्होंने उस मछली को बाहर खींच लिया और जब महाराज को होश आया तब उन्होंने पाया कि उनका सिर दर्द एकदम से गायब हो चुका था।

प्रसन्न होकर महाराज भोज ने कविराजों से कुछ उपहार मांगने के लिये कहा। दोनों एकस्वर में बोले, "देशनिकाले का आदेश रद्द कीजिये और वैद्यराजों को सम्मान के साथ वापिस बुलाइये, यही हमारे लिये उपहार होगा।" महाराज ने प्रसन्नता से इस निस्स्वार्थ प्रार्थना को स्वीकार किया। अश्विनीकुमार जाते-जाते मुड़कर बोले, राजन् हम तुम्हें हमेशा स्वस्थ रहने का सरल उपाय बताते हैं, शिप्रा का जल उत्तम है किंतु उषःपान के लिये उस जल को छान कर कीटाणुरहित बनाना चाहिये वरना नासिकारन्ध्र द्वारा कई छोटे जंतु शरीर में प्रवेश करके नुकसान पहुंचा सकते हैं। बुद्धिमान राजा तुरंत अपनी शिरोवेदना का कारण समझ गये फिर हाथ जोड़कर बोले, महानुभाव, उत्तम स्वास्थ्य के लिये खान-पान का भी आदेश देते जाइये। अश्विनी कुमार बोले, राजन् न अति उष्ण न शीत भोजन लेना चाहिये, मात्रा का भी ख्याल रखना चाहिये। भरपेट न खाकर शरीर को जितनी आवश्यकता हो उतना ही खाना चाहिये। अगर शांति में भोजन करो तो शरीर अपने-आप तुम्हें अपनी आवश्यकताएं बताता चलेगा।

इस कहानी से ऐसा लगता है कि यही सरल हल हमारे लिये अपनी वर्तमान अवस्था में सहायक हो।

—अनुबेन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दैनन्दिनी

जून

१. माताजी हर एक को वैसा प्रेम देती हैं जिसकी उसे जरूरत हो।
२. मैं हमेशा तुम्हारे हृदय में आसीन होती हूं, सचेतन रूप से तुम्हारे अंदर जीती हूं।
३. अपने हृदय को खोलो और तुम मुझे पहले से ही वहां उपस्थित पाओगे।
४. बेचैन न होओ, स्थिर रूप से अपने हृदय में एकाग्र रहो और तुम मुझे वहां पाओगे।
५. मंदिर के अंदर गहरे पैठ जाओ और तुम मुझे वहां पाओगे।
६. वे सभी आत्माएं जो अभीप्सा करती हैं हमेशा सीधी मेरी देख-रेख में रहती हैं।
७. माताजी हमेशा उन लोगों के साथ रहती हैं जो दिव्य जीवन के प्रति अभीप्सा में सच्चे होते हैं।
८. मैं हमेशा तुम्हारे अंदर उपस्थित होती हूं, तुम्हारे निकट और मेरे आशीर्वाद हमेशा तुम्हारे साथ होते हैं।
९. विश्वास रखो कि मैं हमेशा तुम्हें रास्ता दिखाने के लिये, तुम्हारे काम और तुम्हारी साधना में सहायता करने के लिये तुम्हारे साथ होती हूं।
१०. हमेशा मेरी स्थिर प्रेममय उपस्थिति की अभिज्ञता बनाये रखो तो सब कुछ ठीक-ठीक होगा।
११. प्रति दिन, प्रति क्षण मेरे आशीर्वाद तुम्हारे साथ होते हैं।
१२. मेरे आशीर्वाद हमेशा तुम्हारी चेतना को विस्तृत करने और शुद्ध करने के लिये तुम्हारे साथ होते हैं ताकि तुम्हारे अंदर हमेशा शांति विराजमान रहे।
१३. मेरे आशीर्वाद हमेशा तुम्हें जगाने के लिये तुम्हारे साथ होते हैं, लेकिन तुम्हारे अंदर उनका उपयोग करने की इच्छा होनी चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१४. आशीर्वाद किसी व्यक्ति या समूह के प्रति भागवत कृपा की अभिव्यक्ति होते हैं।

१५. यह समझ लो कि आशीर्वाद अच्छे-से-अच्छे आध्यात्मिक परिणामों के लिये होते हैं, यह जरूरी नहीं है कि वे मनुष्य की इच्छाओं के अनुसार हों।

१६. मेरे आशीर्वाद बहुत भयंकर होते हैं, वे पूरी शक्ति और सामर्थ्य के साथ भगवान् की इच्छा पूरी करने के लिये दिये जाते हैं।

१७. इसलिये यह जरूरी नहीं है कि हमेशा सफलता ही मिले, अगर भगवान् की ऐसी ही इच्छा हो तो असफलता भी मिल सकती है।

१८. और भागवत इच्छा हमेशा प्रगति यानी आंतरिक प्रगति के लिये ही होती है। अतः जो कुछ भी हो अच्छे-से-अच्छे के लिये ही होगा।

१९. अपने काम और अपनी प्रगति में तुम्हारी सहायता करने के लिये मेरी सहायता हमेशा तुम्हारे साथ रहती है।
आज तुम जिन कठिनाइयों को पार नहीं कर पाते उन्हें कल या बाद में पार कर लोगे।

२०. मैं हमेशा ऊपर की ओर देखती हूं। वहां सुंदरता, शांति, प्रकाश उपस्थित हैं। वे नीचे उतरने के लिये तैयार हैं। अतः हमेशा अभीप्सा करो और ऊपर देखो ताकि उन्हें पृथ्वी पर अभिव्यक्त कर सको।

२१. जगत् की कुरूप चीजों की ओर नीचे न देखो। जब कभी तुम्हें दुःख का अनुभव हो तो मेरे साथ ऊपर की ओर नजर डालो।

२२. वास्तविक अलगाव है ही नहीं, लेकिन अगर तुम चेतना में एक गलत वृत्ति अपना लो तो वह तुम्हें ऐसी स्थिति में ला देता है जिसमें अलगाव का अनुभव होता है।

२३. अगर तुम खुले रहो तो सहायता अवश्यमेव आयेगी।

२४. हे प्रभो, चूंकि मैं केवल तुम से प्रेम करती हूं अतः हे नाथ मैं हर एक में और सब चीजों में केवल तुमसे ही प्रेम करती हूं।

२५. और उनमें तुम्हारे साथ ही प्रेम करने के कारण मैं अंततः उन्हें तुम्हारे बारे में जरा अधिक सचेतन बना सकूंगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२६. मैं तुम सबके अंदर दरवाजे को खोलने के लिये अधिक-से-अधिक सावधानी बरतती हूं।

२७. . . . ताकि अगर तुम्हारे अंदर एकाग्रता की जरा-सी गति भी है तो तुम्हें बंद दरवाजों के आगे लंबे समयतक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़े।

२८. दरवाजा खुला हुआ है, बस तुम्हें उस दिशा में ताकना चाहिये, तुम्हें उसकी ओरसे मुंह नहीं फेर लेना चाहिये।

२९. मैं तभी तुम्हारी सहायता कर सकती हूं जब तुम्हारा लक्ष्य हो सत्य को खोजना।

३०. मुझे अपनी इच्छा औरों पर आरोपित करने की आदत नहीं है। अगर वे अपने-आप सहायता मांगें तो सहायता मिलेगी।

— — — —

मैं अपने सबसे प्रबुद्ध भाग को हमेशा ऊपर कैसे रख सकता हूं?

इच्छा करो, और जब-जब अंधकारमय, अज्ञानी और अहंकारी भाग तुम्हारी सत्ता पर अधिकार करने की कोशिश करे तब-तब प्रबुद्ध भाग को हस्तक्षेप करने के लिये पुकारो।

जब आप किसी प्रश्न का उत्तर नहीं देतीं, तो क्या कारण होता है? क्या इसलिये कि प्रश्न सच्चा नहीं होता?

सामान्यतः इसलिये कि प्रश्न बुरी तरह से पूछा गया होता है, बहुधा इसलिये कि उत्तर देना अच्छा नहीं होता।

—माताजी

६ जून १९३४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्मयोगी

(गतांक से आगे)

परन्तु यह एक आत्यन्तिक वृत्ति है। शाश्वत के साथ संपूर्ण आत्म-तादात्मीकरण, जैसा हम जीवनमुक्त में देखते हैं, वही पूर्ण मुक्ति है क्योंकि जीवनमुक्त अपनी इच्छा से समाधि में सच्चिदानन्द की सत्ता में जा सकता है जो अकर्ता है और प्रपंच से मुख मोड़े हुए है, और जब चाहे प्रपंच के कोलाहल और गतियों से अछूता रहते हुए उनका प्रभु बनकर उनकी ओर मुड़ सकता और उनसे व्यवहार कर सकता है। जीवनमुक्त अपनी इच्छा से अज्ञेय के अंदर लय प्राप्त कर सकता है परन्तु वह ऐसी इच्छा नहीं करता।

जीवनमुक्त के यहां से प्रयाण न करने की इच्छा हमें मुक्ति के सारतत्त्व की ओर ले जाती है। लोग अप्रपंच के अंदर पूर्ण लय के लिये क्यों लालायित होते हैं? वे कर्म से क्यों भागते हैं, उन्हें यह डर क्यों लगता है कि वह उनकी मुक्ति में बाधक होगा? क्योंकि उन्हें लगता है कि प्रपंचात्मक जीवन और कर्म बंधन हैं और वे बद्ध न रह कर मुक्त होना चाहते हैं। मन की यह अवस्था तभीतक रह सकती है जबतक मनुष्य मुमुक्षु यानी ऐसी आत्मा है जो मुक्ति की इच्छुक है। लेकिन जब वह सचमुच मुक्त हो तो उसमें माया और उसके कर्मों का भय नहीं रह सकता। मुक्ति का अर्थ होता है सचमुच छुटकारा। लेकिन किस बंधन से छुटकारा, किस अत्याचार से मोक्ष? माया के बंधन से, अविद्या के अत्याचार से छुटकारा जो हमें यह मानने के लिये बाधित करता है कि हम सान्त, मर्त्य और बद्ध हैं जब कि सचमुच हम सान्त नहीं अनन्त हैं, मर्त्य नहीं अमर और अविकार हैं, बद्ध नहीं हैं, सदा मुक्त हैं। जिस क्षण तुम यह चरितार्थ कर लो कि अविद्या एक भ्रम है और शाश्वत के सिवा कुछ है ही नहीं और पहले भी शाश्वत के सिवा कुछ न था और आगे भी शाश्वत के सिवा कुछ न होगा, जिस क्षण तुम इस विचार को केवल बौद्धिक रूप से नहीं बल्कि इस तथ्य के अभ्यासगत अनुभव को पा लोगे, उस क्षण से तुम यह जान जाओगे कि तुम बद्ध नहीं हो, कभी बद्ध नहीं थे और कभी बद्ध न होगे। यथार्थतः अविद्या यही है कि जीवात्मन् सोचता है कि शाश्वत के सिवा कुछ और भी है जो उसे बंधन में डाल सकता है और वह स्वयं भी शाश्वत से भिन्न है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और वह बद्ध हो सकता है। जब जीवात्मन् अविद्या के इन भ्रामक संस्कारों को झाड़ फेंकता है तो वह अनुभव करता है कि ब्रह्म, शाश्वत के सिवा कुछ है ही नहीं, जो स्वभावतः नित्यमुक्त है। इसलिये उसे कर्म का भय नहीं हो सकता, वह कर्म से सकुचा नहीं सकता कि वह कहीं उसे बांध न ले, क्योंकि वह जानता है कि बंधन का भाव अपने-आप में भ्रम है। वह न केवल इस जगत् में कर्म करने के लिये तैयार होगा और अपनी सौ वर्ष की अवधि पूरी करने के लिये जियेगा बल्कि बार-बार जन्म लेने के लिये तैयार होगा, जैसे स्वयं श्रीकृष्ण ने बार-बार जन्म लेने का वचन दिया है या अन्य अवतारों ने फिर से जन्म लेने का वचन दिया है। क्योंकि वह चाहे जितनी बार प्रपंचात्मक जीवन में प्रवेश करे, उसे माया और उसके बंधनों का भय नहीं रहता। एक बार मुक्त, हमेशा के लिये मुक्त।

अगर वह फिर से पैदा न भी होना चाहे तो भी वह इस बात का ध्यान रखेगा कि जबतक उसके 'प्रारब्ध-कर्म' खाली न हो जायें तबतक वह इस प्रपंचात्मक जगत् को नहीं छोड़ेगा। प्रकृति के बही-खाते में उसके नाम के आगे कुछ उधार लिखे हुए हैं और उसे पहले उन्हें चुकाना होगा। हां, यह जरूर है कि जीवनमुक्त वैधानिक तौरपर अपने कर्जों से बंधा नहीं होता, क्योंकि उसने प्रकृति के नाम जितनी भी हुंडियां लिखी थीं वे मुक्ति की आग में जल चुकी हैं। अब वह स्वतंत्र और प्रकृति का स्वामी है, उसका दास नहीं। परन्तु इस जीवात्मन् के साथ जुड़ी प्रकृति ने बंधन के भ्रम की अवस्था में कुछ ऐसे कारण उत्पन्न किये थे जिन्हें अपने कार्य पूरे कर लेने देना चाहिये; नहीं तो कार्य-कारण-शृंखला टूट जाती है और प्रकृति की अर्थ-व्यवस्था गड़बड़ हो जाती है, '*उत्सीदेयुरिमे लोकाः*'। अतः, जगत् के विधान को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये जीवन-मुक्त बंदी की भांति कर्मों के बीच पैरोल पर रहता है जो प्रकृति की बेड़ियों से बंधा तो नहीं होता परंतु अपनी जेल की अवधि पूरी होने पर अपनी इच्छा से बंदी की तरह काम करता है।

कर्मयोगी का आदर्श है जीवनमुक्त और भले वह इस जन्म में या अगले जन्म में इस आदर्शतक न पहुंच सके फिर भी वह हमेशा अपने-आपको उसके अनुसार ढालने की कोशिश करेगा। अतः इस जगत् में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने कर्म किये जाओ और सौ वर्ष रहने की इच्छा करो। तुम्हें अपने जीवन की नियत अवधि जीने की इच्छा रखनी चाहिये, लम्बे जीवन के लिये नहीं, बल्कि इसलिये कि शरीर के अंदर यथार्थ 'तुम' तो ब्रह्म है जो अपनी निजी शक्ति के बल पर अपने लिये, अपने साथ सृजन, परिरक्षण और संहार की नाटकीय लीला कर रहा है। वह ईश, स्रष्टा, परिरक्षक और संहारकर्ता है; और तुम भी अपनी प्रकृति के क्षेत्र में स्वामी, स्रष्टा, परिरक्षक और संहारकर्ता हो। तुम वह हो; केवल अपने मनोरंजन के लिये तुमने यह कल्पना कर ली है कि तुम लीला के लिये शरीर-विशेष में सीमित हो, ठीक उसी तरह जैसे एक अभिनेता यह कल्पना करता है कि वह दुष्यन्त, राम या रावण है। अभिनेता अपने-आपको लीला में खो बैठा है; वह भूल गया है कि वह सचमुच दुष्यन्त, राम या रावण नहीं है बल्कि देवदत्त है जिसने सैंकड़ों पात्रों का अभिनय किया है और अभी और करेगा। जब वह अपने भ्रम को झाड़ देता है और याद करता है कि वह देवदत्त है तो वह मंच छोड़कर चल नहीं पड़ता और अभिनय करने से इंकार करके नाटक को छिन्न-भिन्न नहीं कर देता बल्कि जब उसके मंच छोड़ने का ठीक समय आये तबतक अभिनय करता जाता है। इस प्रपंचात्मक जगत् का उद्देश्य है सृजन और जबतक हम शरीर में हैं, हमारा काम है सृजन। जबतक हम अपनी सच्ची आत्मा को भूले रहते हैं, तबतक हम भृत्यों की तरह प्रकृति के बाधित करने पर सृजन करते हैं, और हम उसके दास होते हैं और उसकी क्रियाओं से बंधे रहते हैं और मिथ्या रूप में कल्पना कर लेते हैं कि ये हमारे कर्म हैं। लेकिन जब हम अपनी सच्ची आत्मा को जान लेते और उसका अनुभव करते हैं तब हम प्रकृति के स्वामी होते हैं और उसके सृजनों से बंधे नहीं रहते। हमारी आत्मा साक्षी बन जाती है, हमारी प्रकृति के कर्मों की मूक द्रष्टा बन जाती है। इन कर्मों को वह उस रूप में ढालती है जो उसे सबसे ज्यादा सुखद लगे। तो हम एक ही साथ द्रष्टा और अभिनेता हैं; फिर भी, चूंकि हम जानते हैं कि सारी चीज प्रतीयमान कर्म का एक भ्रम है, चूंकि हम जानते हैं कि राम सचमुच रावण को मार नहीं रहा और न रावण ही मारा जा रहा है, क्योंकि रावण मृत्यु के बाद उतना ही जीवित रहता है जितना मानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गयी मृत्यु से पहले था अतः हम न तो द्रष्टा हैं न अभिनेता, हम हैं केवल आत्मा और हम जो कुछ देखते हैं वह केवल आत्मा के अन्तर्दर्शन होते हैं। इसलिये कर्मयोगी जबतक इस जगत् में है वह न तो कर्मों को छोड़ना चाहेगा न उसकी कोशिश करेगा, वह केवल फल, कर्मफल की कामना को छोड़ना चाहेगा; न ही वह अपने नियत अन्त से पहले इस जगत् से अपना जीवन छोड़ने का प्रयास करेगा न इच्छा। जो आदमी उग्रता से अपने जीवन-तन्तु के बुने जाने से पहले ही उसे तोड़ने की कोशिश करता है वह ऐसा परिणाम पायेगा जो उसके वांछित परिणाम से बहुत ही भिन्न होगा। कर्ममार्गी का लक्ष्य है जीवनमुक्त होना, वह अपने अंदर आत्महत्या के भाव को नहीं पोसेगा।

६—आत्महत्या और परलोक

अमरीका में आध्यात्मवाद के शुरू के दिनों में बहुत-से लोग आध्यात्मवादी या प्रेतात्मावादी लोगों द्वारा प्रकाशित परलोक के चमक-दमकवाले वर्णनों से इतने प्रभावित हो जाते थे कि वे वहां पहुंचने के लिये आत्महत्या कर बैठते थे। ऐसा लगता है कि पुराने जमाने में जब शाश्वत की खोज मानवजाति के मन में प्रधान थी और क्षणभंगुर जगत् के लिये घृणा एक मामूली बात थी, तो ऐसे बहुत-से लोग होते थे जो अपने सौ वर्ष पूरे करने की जगह प्रपंच के जगत् से हठ करके बाहर निकल जाना ज्यादा पसंद करते थे। ऐसे लोगों को उपनिषद् एक गंभीर चेतावनी देता है, "सचमुच वे लोक भगवान् से वंचित, अंध-विषाद में घिरे रहते हैं। ऐसे लोग जो चले गये हैं, जो आत्मा की हत्या करते हैं वे ऐसे लोकों में जाते हैं।" यहां उपनिषद् के शब्दों का अनुवाद करते हुए हमें विशेष रूप से सावधान रहना चाहिये क्योंकि शंकर ने इस मंत्र का बिल्कुल अप्रत्याशित और अनोखा अर्थ दिया है। वे 'आत्महन्' को उसके स्वाभाविक और सामान्य अर्थ आत्महत्या में नहीं लेते बल्कि उनके अंदर निवास करनेवाली शाश्वत आत्मा का हनन करनेवाले के अर्थ में लेते हैं। चूंकि यह चौंकानेवाला असामान्य और परस्पर-विरोधी भाव है, क्योंकि आत्मा न तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मरती है न मरती है अतः आगे चलकर वे इसका रूपकात्मक भाव देते हैं। आत्मा को मारने का अर्थ है आत्मा को अज्ञान के भ्रम में डालना जिससे जन्म और पुनर्जन्म आते हैं। आत्मा की एक प्रकार से हत्या हो जाती है क्योंकि उसे माया के अंधकार में गायब हो जाना पड़ता है। और 'लोकाः' का अर्थ हमेशा जगतों से होता है जैसे गोलोक, ब्रह्मलोक, द्युलोक, लेकिन शंकर जबरदस्ती उसका अर्थ करते हैं जन्म, जैसे मनुष्य की तरह जन्म, पशु की तरह या देव की तरह जन्म। इसके बाद सामान्य और व्यावहारिक अर्थ से एक और गंभीर विचलन है, *असूर्याः* या *आसुराः* का साधारण अर्थ होगा दैवी की विरोध में आसुरी या दैत्यों जैसा। शंकर *आसुराः* का अर्थ करते हैं राजसिक जिसका उपयोग मनुष्य, पशु यहांतक कि देवों के भी शरीर में जन्म के लिये हो सकता है और वे इसे दैव का विरोधी मानते हैं जो शुद्ध सात्विक है और केवल परब्रह्म के लिये उपयोग में आ सकता है। इस भांति वे इस मंत्र का अर्थ कर देते हैं, ''सचमुच राजसिक हैं वे जो जन्म और अंधे अंधकार में लिपटे हुए हैं जिसमें वे प्रयाण के बाद जाते हैं, वे जो आत्मा के हन्ता हैं।'' वे सब जो अपने-आपको अज्ञान के जुए तले रखते हैं वे अपनी आत्मा की पकड़ छोड़ बैठते हैं और परब्रह्म के शुद्ध सत् की ओर लौटने की जगह मनुष्य, पशु या देव के रूप में जन्म लेते हैं।

इस व्याख्या पर बहुत-सी सांघातिक आपत्तियां की जा सकती हैं '*आत्महनः*' में शब्द के सामान्य और सीधे-सादे अर्थ की जगह जबरदस्ती अद्वितीय अर्थ दिया गया है। *लोकः* शब्द का अर्थ एक विशेष प्रकार का जन्म नहीं हो सकता, उसका अर्थ होगा या तो जगत् या जगत्-निवासी; और इन्हीं अर्थों में उसका अर्थ श्रुति में तथा अन्यत्र किया गया है। हम कहते हैं स्वर्गलोक, द्युलोक, मर्त्य-लोक, इहलोक, परलोक; हम कीटलोक, पशुलोक, पक्षिलोक नहीं कहते। हम मनुष्यलोक अवश्य कहते हैं पर उसका अर्थ होता है मनुष्यों का जगत्, मनुष्य-जन्म नहीं। '*असूर्याः*' शब्द का अर्थ राजसिक हो सकता है लेकिन उस अर्थ में नहीं जो शंकर ने किया है, क्योंकि '*असूर्याः लोकाः*' का अर्थ परब्रह्म के दिव्य जन्म के विपरीत, जो हमेशा जन्म और अनुकूलन के परे रहता है, पशुओं, मनुष्यों या देवों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म नहीं हो सकता। और फिर दैवी और आसुरी हमेशा एक-दूसरे से उल्टी परिभाषाएं हैं, ठीक उसी तरह जैसे अंग्रेजी में टाइटन और ओलम्पियन परिभाषाएं हैं। उदाहरण के लिये गीता में कहा है :

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः॥
महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्॥

"उनकी सभी आशाएं, उनके कर्म और उनका ज्ञान व्यर्थ है। वे राक्षसी और आसुरी प्रकृति में रहते हैं जो इच्छा और बुद्धि को भ्रम में डालती है, हे पार्थ, जो महात्मा दैवी प्रकृति में रहते हैं वे मुझे अमर के रूप में जानते हैं जिसमें से सभी सत्ताएं शुरू होती हैं और ऐसा जानते हुए वे मेरी ओर अनन्य मन और संपूर्ण प्रेम के साथ मुड़ते हैं।"

इस प्रसंग में आसुरी और राक्षसी प्रकृतियां राजसिक हैं। राजसिक असुरों की, तामसिक राक्षसों की और सात्त्विक देवों की प्रकृति है। जब कभी संस्कृत साहित्य में ये परिभाषाएं एक-दूसरे के विरोध में आती हैं तो यही भाव होता है। इसके अतिरिक्त यह भी कहा जा सकता है कि 'ये के' का प्रयोग अगर केवल उन गिने-चुने लोगों को छोड़कर, जिन्होंने मुक्ति पा ली है, बाकी सब सत्ताओं के लिये हो तो वह (ये के) अपना जोर खो बैठता है। शब्दार्थों पर जोर डालने के अतिरिक्त और भी स्खलन हैं। शंकर ने जिस तरह व्याख्या की है उसके अनुसार यह मंत्र पहले जो कहा गया है उससे युक्तिसंगत रूप में आगे नहीं आता और उपनिषद् में असंगति-दोष आ जाता है, जब कि अगर हम सीधे-सीधे अर्थ लें तो मंत्र अपनी रचना और विचार के सुव्यवस्थित विकास में पूरी तरह युक्तिसंगत है। दूसरी ओर, उपनिषद् के वचनों का सीधा अनुवाद और सामान्य भाव एक सरल और स्पष्ट अर्थ देता है जो अपने-आपमें बहुत उचित है और जो कुछ पहले कहा जा चुका है उसका स्वाभाविक निष्कर्ष है। शंकर का भाष्य इतने सारे और काफी बड़े दोषों से भरा है कि शंकर की प्रामाणिकता भी हमें उसे स्वीकार करने के लिये बाधित नहीं कर सकती। अतः हम मंत्र को उसके सीधे सरल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थों में लेंगे : यह उन लोगों को चेतावनी है जो कल्पना करते हैं कि धरती पर स्वेच्छा से अपने जीवन के दिन कम करने से वे प्रपंचात्मक जीवन के बंधनों से बच सकते हैं।

आसुरी या देव-विहीन जगत्—जिनमें आत्मघात करनेवाला अभिशप्त होता है—देवों के जगत् से, प्रकाश और आनंद के जगत् से—जो पुण्यात्माओं का पुरस्कार होता है—एकदम दूसरे छोर पर घने अंधकार और दुःख-दर्द के जगत् होते हैं। धरती के नीचे पाताल, पाताल के नीचे नरक—ये आसुरी जगत् हैं, जगती के पर्वत-शिखरों पर सूर्यालोकमय स्वर्ग—ये देव-लोक हैं। वस्तुतः यह सब पुराण कथा और रूपक है, लेकिन आसुरी जगत् यथार्थतः हैं। वे हमारी अपनी सत्ता की गहराइयों में निराशा, दुःख और कष्ट के जगत् हैं। जगत् कोई पहाड़ों, पेड़ों और पत्थरों का स्थान नहीं है, वह जीवात्मा की एक अवस्था है, सत्ता का शेष भाग परिस्थिति और स्वप्न के ब्योरे हैं। श्रुति अगले लोक में आत्मा के लोक की बात करती है—*अमुष्मिन् लोके लोकः*—जहां शब्द का प्रयोग आत्मा की स्थिति या अवस्था के तात्त्विक अर्थ में किया गया है और फिर जगत् के रूपकात्मक अर्थ में जो उसकी स्थिति के अनुरूप हो। भ्रम के प्रभाव में आत्मा जिन आभासी परिवेशों, जिन इंद्रियग्राह्य बिम्बों और आभासों के कुल-योग में अपनी मानसिक स्थिति को मूर्तरूप देती है, उसीसे वह जगत् बनता है जिसमें वह निवास करती है। यह जरूरी नहीं है कि मर्त्यलोक यह पृथ्वी ही हो जिसपर हम निवास करते हैं, क्योंकि मरणशील सत्ताओं के अन्य निवास-स्थान भी हो सकते हैं, मर्त्यलोक है स्थूल शरीर में नश्वरता की स्थिति; स्वर्ग-लोक है सूक्ष्म शरीर में आनंद की स्थिति; नरक है सूक्ष्म शरीर में दुःख-दैन्य की अवस्था; ब्रह्मलोक है कारण शरीर में भगवान् के साथ रहने की अवस्था। जैसे जीवात्मा स्वप्न देखनेवाले की तरह पृथ्वी और उसमें समायी सब चीजों को नश्वरता की अवस्था में देखती है और यह मानती है कि वह पहाड़ियों, वृक्षों, नदियों और मैदानों के एक क्षेत्र विशेष में है, उसी तरह जब वह सूक्ष्म शरीर में पूर्ण तमस् की अवस्था में हो तो यह मानती है कि वह ऐसे स्थान पर है जो घने-अंधकार से घिरा हुआ, अनिर्वचनीय दुःख-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दैन्य का क्षेत्र है। ऐसा माना जाता है कि अंधकार का यह जगत् पृथ्वी के नीचे उस दिशा में है जो सूर्य से विमुख है क्योंकि पृथ्वी हमारी मर्त्य अवस्था है और यह जगत् हमारी मर्त्य स्थिति से नीचे की अवस्था है। यह घने अंधकार का जगत् है क्योंकि जीवात्मा की चेतना में शाश्वत के वैभव से बने हुए प्रकाश को माया के अत्यधिक मोटे परदे के कारण पूरा ग्रहण लग जाता है और हमें उसकी पूर्ण चमक-दमक की महिमा से वंचित कर देता है। नरक, पाताल, पृथ्वी, स्वर्ग, चंद्रलोक, सौरलोक, गोलोक, ब्रह्मलोक—ये सब कल्पनाएं और स्वप्न हैं, चूंकि वे सब स्वयं जीवात्मा के अंदर हैं और उसके बाहर केवल चित्रों और आकृतियों में रहते हैं; फिर भी जबतक हम स्वप्न-द्रष्टा हैं, तबतक हम स्वप्न की भाषा और विचारों में ही बोलें और सोचें।

तो यह है आसुरी जगत्। जब कोई मनुष्य बहुत अधिक पीड़ा या दुःख या भयंकर मानसिक उथल-पुथल में मरता है और उसके अंतिम विचार भय, क्रोध, कष्ट या संत्रास के होते हैं तो जीवात्मन् अपने मन से सूक्ष्म-शरीर के इन संस्कारों को बरसोंतक नहीं झाड़ सकता, हो सकता है कि वे शताब्दियोंतक चलते रहें। आत्मघात के साथ भी यही बात है। आदमी घृणा, अधैर्य, पीड़ा, क्रोध, भय के भावों के कारण आत्म-हत्या में डुबकी लगाता है, ये चीजें उसके अंतिम क्षणों में उसपर राज करती हैं। आत्महत्या समाधि में केंद्रित योगी का नियत समय पर आवेगहीन दिव्य प्रयाण नहीं है बल्कि आवेशमय और जुगुप्सापूर्ण प्रयाण है और प्रयाण की बेला में जहां आत्मा की उथल-पुथल या कटुता हो, उस अवस्था में जहां आदमी जा रहा है, कोई शांति या मधुरता नहीं हो सकती। यह मृत्यु का विधान है; मृत्यु तीव्र एकाग्रता का क्षण है जब बिदा लेती हुई आत्मा अपने मर्त्य जीवन के संस्कारों को इकट्ठा करती है जैसे कोई सेना अपनी यात्रा के लिये खाना इकट्ठा करती है, और उस क्षण जो संस्कार प्रबल हों वे ही उसकी भावी अवस्था पर शासन करते हैं।

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हे कौन्तेय ! आदमी मन के जिन सामुदायिक संस्कारों को याद करते हुए अंत में अपना शरीर छोड़ता है वह उसी अवस्था में जाता है, किसी और में नहीं; और वह सदा उन्हीं संस्कारों के प्रभाव में रहता है।'' तो इस तरह, मुक्ति से भिन्न, शुद्ध और उदात्त जीवन जीने और शांत तथा सबल मृत्यु मरने का महत्त्व है। क्योंकि अगर उस समय जो भाव या संस्कार सबसे ऊपर रहें वे ऐसे हों जो आत्मा का संपर्क इस स्थूल शरीर और प्राणिक क्रियाओं, मन की घटिया, नीच, भ्रष्ट और निम्न कामनाओं के साथ रखें तो आत्मा लंबे समयतक अंधकार और कष्ट की तामसिक स्थिति में रहती है जिसे हम पाताल कहते हैं या जिसका तीव्र रूप है नरक। अगर सबसे ऊपर के भाव और संस्कार ऐसे हैं जो आत्मा का संपर्क मन की उच्चतर कामनाओं के साथ जोड़ते हैं तो आत्मा झट से प्रकाश और सुख की राजसिक स्थिति में चली जाती है जिसे स्वर्ग, बहिश्त या पैरेडाइज़ कहते हैं, जिससे वह फिर से शरीर में मर्त्यता की स्थिति में लौट आयेगी। अगर उच्चतम भाव और संस्कार ऐसे हैं जो उच्चतर समझ और आत्मा के आनंद के साथ मेल खाते हैं तो आत्मा तेजी से उच्चतम आनंद की स्थिति में जा पहुंचती है जिसे हम कैलाश, वैकुंठ, गोलोक या ब्रह्मलोक कहते हैं, जहां से वह जगत् के इस कल्प में नहीं लौटती। लेकिन अगर हमने हमेशा के लिये आत्मा के साथ आत्मा का तादात्म्य साधना सीख लिया है तो मृत्यु से पहले हम शाश्वत बन जाते हैं और मृत्यु के बाद उससे भिन्न न होंगे। माया की तीन स्थितियां हैं : तामसिक माया, राजसिक माया और सात्त्विक माया। हमें उत्तरोत्तर हर एक को पार करना पड़ेगा, तब जाकर हम वहां पहुंच सकते हैं जो माया या भ्रम नहीं है, बल्कि एक शाश्वत सत्य है। और समाधि-अवस्था में अपना शरीर छोड़कर हम अव्यक्त, अमर आनंद में उठ जाते हैं जिसे भगवान् ने अपना ''परम धाम'' बतलाया है।

७–सिंहावलोकन

ईशोपनिषद् युक्तियुक्त रूप से चार भागों में बंटा हुआ है। यहां पहले तीन मंत्रों की व्याख्या की जा चुकी है। वे हमें कर्मयोग के वे पहले तत्त्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बतलाते हैं जिन्हें अपने आदर्श की ओर उन्नति करते हुए कर्मयोगी की मानसिक अवस्था और उसके कर्मों पर शासन करना चाहिये। अगले पांच मंत्रों में हम देखेंगे कि उपनिषद् कर्ममार्ग के अंतिम लक्ष्य का निरूपण करता है और जब योग पूरा हो जाये और जब वह सचमुच योगी, पूर्णता की खोज में साधक न रहकर सिद्ध या पूर्ण पुरुष बन जाये तब उसके मन और भावमय भाग की आदर्श स्थिति का चित्रण करता है।

उसके साधक रहते हुए ही उसके मन पर शाश्वत के महान् ईश और स्वामी के भाव का राज्य होना चाहिये जो सारे विश्व में व्यापक है और उसे घेरे हुए है। उसे ईश को सबमें और सबके चारों ओर देखना चाहिये जो प्रत्येक वस्तु को अनुप्राणित करता और घेरे रहता है। वह जो कुछ देखता है उस सब पर उसे उसी उपस्थिति का प्रभा-मंडल डालना चाहिये, सभी प्राणियों और वस्तुओं में उसे प्रभामंडल और प्रकाश देखना चाहिये।

उसका मन यूं भगवान् की सर्वव्यापकता से शासित हों तो उसे लालसा और कामना नहीं होनी चाहिये—नहीं हो सकती क्योंकि भगवान् को पाकर उसके पाने के लिये रह ही क्या जाता है? वह कौन-सी चीज है जिसके लिये वह लालसा या कामना कर सकता है? वह किसीको चोट नहीं पहुंचा सकता और न ही उन्हें अपनी संपत्ति से वंचित कर सकता है क्योंकि और लोग हैं ही कौन? क्या वे उससे भिन्न हैं? कर्ममार्गी को कामना त्यागने की कोशिश करनी चाहिये और निःस्वार्थता उसके जीवन और कर्मों का विधान हो। औरों में भगवान् को देखकर स्वभावतः वह उनसे प्रेम करेगा और उनकी सेवा करने की कोशिश करेगा। कामना को अस्वीकार करके वह उस परम संतुष्टि को पायेगा जिसकी मांग उसके अंदर स्थित दिव्यता करती है और भाव में जगत् को त्याग करके वह सारे जगत् का अपने राज्य की तरह भोग करेगा। कुछ थोड़े-से कटे-छंटे, क्षण-भंगुर सीमित सुखों को गले लगाने की जगह वह गहरे अक्षुब्ध आनंद के साथ समस्त जगत् का भोग करेगा।

और लोग जो चाहे करें, कर्ममार्गी को अपने-आपको कर्म-क्षेत्र से हटाना या जगत् में कर्म का त्याग न करना चाहिये। उससे यह नहीं कहा जाता कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह भोग की वस्तुओं को त्याग दे, बल्कि यह कि वह उनपर ऐसे हृदय से अधिकार करे जो लालसाओं और आवेगों से शुद्ध कर लिया गया हो। उसे संघर्ष से भागना न चाहिये बल्कि इस जगत् में अपना काम इस भाव के साथ करना चाहिये। उसे जीवन को बंधन मानकर उससे कतराना भी न चाहिये। उसे यह अनुभव करना चाहिये कि जो भगवान् से भरा है उसके लिये कोई बंधन नहीं होता, क्योंकि भगवान् बद्ध नहीं, मुक्त हैं। इसलिये उसे अपने जीवन को जीने और अपने कर्म को करने के लिये शांति के साथ और बिना कामना के तैयार रहना चाहिये। उसे अपने जीवन और कर्मों द्वारा बस यही खोज करनी चाहिये कि वह उसके निकटतर पहुंच सके जो जीवन का ईश और समस्त कर्मों का स्वामी है।

वह जीवन के लिये घृणा को अपने ऊपर इतना अधिकार कभी न पाने देगा कि वह धरती पर अपने दिन कम करके छुटकारा पाये। क्योंकि आत्महत्या इस जगत् में प्रपंचात्मक सत्ता के लिये छुटकारा नहीं है। वह सत्ता को पार्थिव जीवन आत्मा के लिये जो उपाय कर सकता है उससे माया की कहीं अधिक अंधकारमय और कहीं अधिक भयंकर कारा में धकेल देती है।

अगर उसकी प्रकृति इस अनुशासन की महानतातक विस्तृत हो सके, अगर उसकी आंखें कभी भगवान् को आंखों से ओझल न होने दें, अगर वह अपने साथी-मनुष्यों में भगवान् का दर्शन कर सके, अगर वह अपनी सत्ता को उसके काम और लोभ से खाली कर सके, अगर वह आवेग के बिना, निस्स्वार्थ भाव से जगत् की सारी महिमा, आनंद और सुंदरता को अपना अनुभव कर सके, अगर वह जगत् में अपने कर्म, चाहे वे कितने भी महान् या तुच्छ क्यों न हों, अपने लिये नहीं बल्कि मनुष्य में स्थित भगवान् और जगत् में स्थित भगवान् के लिये कर सके, अगर वह अपने कर्मों में अहं-भाव का हनन कर सके और यह अनुभव कर सके कि वे उसके अपने नहीं, ईश के हैं, अगर वह अपने अंदर से भीरु की मृत्यु के लिये लालसा और भीरु का मृत्यु से कतराना समान रूप से दूर कर सके, न तो दीर्घायु के लिये व्याकुल हो न उसके आडंबर और उसकी परेशानियों के प्रति अधीरता को सहे, बल्कि बहादुरी से अपना पूरा जीवन संतुलित भाव से, निस्स्वार्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर, महानता के साथ जिये तो वस्तुतः वह कर्मयोगी बन जाता है जो सदा शाश्वत के और सर्वशक्तिमान् उपस्थिति के निकट रहता है, जो मुक्त भाव से भगवान् में विचरण करता है, जो प्रति मुहूर्त उनकी दिव्य उपस्थिति के अधिकाधिक निकट होता जाता है, ईश की पवित्रता, महानता, शक्ति और सौंदर्य के अपने आध्यात्मिक बिंब में अधिकाधिक उनके सदृश बनता जाता है। भगवान् से उनके जगत् में प्रेम करना और अपने अंदर भगवान् की ओर बढ़ना, यही कर्मयोगी का अनुशासन है। सभी सृष्ट वस्तुओं को अपने हृदय के आलिंगन में लेना और अपनी आत्मा में दिव्य रूप से भगवान् बन जाना, यही उसका लक्ष्य और आदर्श है।

—श्रीअरविंद

संतुलन

आप "बाहरी सत्ता में संतुलन का आधार" किसे कहती हैं?

अच्छा स्वास्थ्य, ठोस शरीर, सुसंतुलित। जब तुम्हारी स्नायुएं छोटी लड़की के जैसी नहीं होतीं कि बात-बात में हिल जायें, जब व्यक्ति अच्छी तरह सोता है, अच्छी तरह खाता है . . . जब वह बिल्कुल धीर, अच्छी तरह संतुलित, बिल्कुल शांत होता है तब उसकी नींद ठोस होती है और वह बहुत-सी शक्तियों को ले सकता है।

अगर तुममें से किसी एक ने आध्यात्मिक शक्तियां पायी हैं, भगवान् की शक्तियां पायी हैं, उदाहरण के लिये, आनंद, तो वह अनुभव से जानता है कि अगर वह स्वस्थ न हो तो वह उन्हें अपने अंदर समा नहीं सकता, उन्हें रख नहीं सकता। वह रोना-चिल्लाना शुरू कर देता है, जो मिला है उसे खर्च कर डालने के लिये बेचैन हो जाता है। उसे हंसना, बातचीत करना, इशारा करना पड़ता है, वरना वह उस चीज को नहीं रख सकता। उसे घुटन होती है। इस तरह हंस-रोकर, घूम-फिरकर वह जो कुछ मिला है उसे बाहर फेंक देता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अच्छी तरह संतुलित होने के लिये, जो कुछ प्राप्त हुआ है उसे अपना लेने के लिये तुम्हें बहुत स्थिर और शांत होना चाहिये। तुम्हारे अंदर ठोस नींव, अच्छा स्वास्थ्य होना चाहिये। तुम्हारे अंदर बहुत ठोस नींव होनी चाहिये। यह बहुत जरूरी है।

बाहरी समता और अंतरात्मा की समता में क्या भेद है ?

अंतरात्मा की समता एक मनोवैज्ञानिक चीज है। यह है, अच्छा-बुरा जो कुछ भी हो उसे दुःखी, निरुत्साहित, निराश या विक्षुब्ध हुए बिना सह सकना। जो कुछ भी हो तुम विक्षुब्ध हुए बिना शांत बने रहो।

दूसरी है शरीर की समता। यह मनोवैज्ञानिक नहीं, कुछ भौतिक चीज है। भौतिक संतुलन रखो और बिना परेशानी के शक्तियों को ग्रहण करो।

यदि कोई इस मार्ग पर प्रगति करना चाहता है तो दोनों समान रूप से जरूरी हैं। इनके अतिरिक्त और चीजें भी हैं। उदाहरण के लिये, मानसिक संतुलन जिसमें सभी संभव विचार, यहांतक कि परस्पर विरोधी विचार भी चारों ओर से आते रहें पर आदमी परेशान न हो। व्यक्ति उन्हें देखकर हर एक को यथास्थान रख सके। यह मानसिक संतुलन है।

—श्रीमां

ऋषिवर बोले :

विजय के साझेदार

नसीम ने कहा ऋषिवर हम लोग ईरान से आये हैं। पहली बार घर से बाहर निकले हैं और वहांसे आये है सीधे हिंदुस्तान। आप तो जानते ही हैं कि ईरान और हिंदुस्तान में बहुत पुरानी दोस्ती है। आपका हितोपदेश और पंचतंत्र हमारे देश में 'अनवारे सुहेली' नाम से प्रचलित है, नल दमयंती की कहानी तो मानों ईरान की अपनी चीज है। उपनिषद् भी हमारी भाषा में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काफी मान पाते हैं। हम हमेशा यही सोचा करते थे कि हमारा देश गढ़े में जा गिरा है परंतु हिंदुस्तान तो अवश्य हिमालय की ऊंचाइयों पर बैठा होगा। लेकिन यहां आकर तो बड़ी निराशा हो रही है। हमने यहां के बारे में जो कुछ पढ़ा-सुना था—खाब था जो कुछ कि देखा, जो सुना अफसाना था।

मैं अपने साथियों के साथ बस में बैठकर यहां आ रहा था। रास्ते में किसी जवांमर्द ने एक निहायत कमसिन औरत के गले से सोने की जंजीर निकालने की कोशिश की। सब भारतीय सूरमा बैठे तमाशा देखते रहे। वे चाहते तो उचक्के की चटनी बना सकते थे पर किसीने उंगलीतक न उठायी। मेरा एक अरब साथी उसपर झपट पड़ा और वह यह जा वह जा।

इसी तरह हम मथुरा गये थे, वहां अंधे बच्चों के लिये एक स्कूल चलता है। उसके संचालक ने बतलाया कि कुछ विदेशी लोगों ने उसकी सहायता के लिये एक अच्छी रकम भेजी लेकिन यहां के सरकारी तंत्र को घूस दिये बिना उसे पाना असंभव हो गया।

इस तरह की घटनाएं स्वयं आपके देशवालों ने मुझे हर नुक्कड़ पर सुनायीं, सुनकर मन खट्टा हो गया। यह जानकर संतोष नहीं हुआ कि मेरे देशवासी भी यहां आकर बदतमीजी में यहां वालों से आगे बढ़ने की कोशिश करते हैं। हमारे कई पड़ोसी देशों में जरा-सी चोरी पर हाथ काट दिया जाता है, किसी औरत की आबरू लेने पर संगसार किया जाता है लेकिन परिणाम के बारे में कुछ न कहना ही ज्यादा अच्छा है।

आखिर यह सब क्या है और क्यों हो रहा है? इसका इलाज क्या है?

नसीम बहुत ज्यादा उत्तेजित था और एक सांस में यह सब कह गया। उसके साथी दम साधे बैठे थे। उन्हें भय था कि हिंदुस्तानी समाज में यह क्या बक रहा है।

ऋषिवर बड़े चाव से सब कुछ सुनते रहे और उसकी मशीन बंद होने पर बोले—नसीम तुम जवान हो, तुम्हारी भावनाएं और तुम्हारा उत्साह देखकर खुशी होती है। तुम हिंदुस्तानियों के विरोध में बोल रहे हो, हिंदुस्तान के विरोध में नहीं। तुम जो कुछ कह रहे हो अपनेपन से प्रेरित होकर, दुःख से द्रवित होकर कह रहे हो, मैं तुम्हारी भावनाओं की कद्र करता हूं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखो, सारी मनुष्यजाति एक है। हमारे और तुम्हारे भी पुरखे कह गये हैं *यथा ब्रह्माण्डे तथा पिण्डे*। हमारा यह छोटा-सा शरीर सारे जगत् का एक छोटा-सा नक्शा है। यहां जो कुछ होता है उसका असर सारी दुनिया पर होता है और जो कुछ दुनिया में हो रहा है उसका फल यहां दिखलायी देता है।

तुम जानते ही हो कि भौतिक रूप से भी तुम दुनिया से अलग नहीं हो सकते। तुम जाकर कोहे काफ पर बैठो या आसाम के जंगलों में आसन जमाओ दुनिया तुम्हारा पीछा न छोड़ेगी। रेडियो, टेलीविजन आदि इस बात का प्रमाण देते हैं।

ये मशीनें दूसरी मशीनों द्वारा प्रसारित चीजों को पकड़ती हैं। आदमी का मन इनसे भी ज्यादा सूक्ष्म मशीन है। वह दूसरे मनों की भेजी हुई लहरों को पकड़ लेता है। सारे जगत् की चेतना एक सागर की तरह है और हम सब उसमें उठनेवाली छोटी-छोटी लहरियां हैं। जबतक सागर नमक से भरा है, हर लहरी नमकीन होगी और अगर एक लहर में मिठास आ जाये तो समझ लो कि सारा सागर मीठा हो गया है। शुभ, अशुभ, अच्छा, बुरा, सब कुछ इस सागर में घुला हुआ है और अगर हम यह सोचें कि हम एक-दो लहरों को मीठा बना लेंगे, उन्हें शुद्ध रूप से शुभ या अशुभ रूप दे सकेंगे तो यह हमारा गलत ख्याल होगा। हम देखते हैं कि राम के भक्तों में भी और पाण्डवों में भी काफी त्रुटियां हैं जब कि रावण और दुर्योधन के लोगों में भी अनेक सद्गुण थे। जबतक सारा सागर ही मीठा नहीं हो जाता तबतक यह तो हो सकता है कि किन्हीं भागों में नमक ज्यादा हो किन्हीं में कम पर यह नहीं हो सकता कि सागर के किसी हिस्से में नमक हो ही नहीं।

शायद तुम सोच रहे हो कि हमने पूछा कुछ और उत्तर कुछ और मिल रहा है। नहीं, ऐसी बात नहीं है। मैं उसी चीज पर आ रहा हूं। हर देश की अपनी-अपनी अंतरात्मा है, अपनी-अपनी चेतना है और फिर मानवजाति की एक सामूहिक चेतना है। जैसे मनुष्य की अंतरात्मा भगवान् के साथ जुड़ी रहती है उसी तरह देश की अंतरात्मा भी भगवान् के साथ सीधा संबंध रखती है, अगर अंतरात्मा जाग्रत् हो तो न मनुष्य को और न देश को कोई दुःख-दर्द हो सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीच में ही शकील बोल उठा, ऋषिवर, आपकी बात ठीक समझ में नहीं आयी, जरा ज्यादा स्पष्ट कर सकेंगे ?

ऋषिवर ने उत्तर दिया, यह चीज मुझे बहुत पसंद है। जहां कोई बात समझ में न आये तुरंत टोक दो, मैं समझा दूंगा। तुम चुपचाप बैठे रहोगे तो मुझे भ्रम हो जायेगा कि तुम समझ गये और तुम कुछ भी न समझे होंगे, दोनों का समय नष्ट होगा।

साधारणतः मनुष्य की अंतरात्मा कहीं पीछे छिपी रहती है जैसे राजा कहीं पीछे बंद हो और उसके अफसर अपनी मनमानी चलाते रहें। उसी तरह भगवान् के साथ नाता जोड़नेवाली अंतरात्मा छिपी रहती है और उसकी जगह अहंकार नामक दारोगा अपनी चलाता है। इच्छाएं, वासनाएं, कामनाएं, आवेग सब उसीके द्वारा पोषण पाते हैं और तुमसे अपनी इच्छा पूरी करवाते हैं। तुम उनके हाथ में खिलौना बन जाते हो।

अंतरात्मा एक आग है, तुम्हारी सारी गंदगी उसके अंदर जलकर भस्म हो सकती है। यही बात देशों पर लागू होती है। उनमें भी आत्मा है और वह भी एक बहुत बड़े अहंकार के नीचे छिपी हुई है। अहंकार ही सारी गंदगी की जड़ है, सभी निम्न वृत्तियां उसीके सहारे आती और हमपर कब्जा करती हैं। तुम देखोगे कि जब एक देश में अच्छी या बुरी कोई लहर आती है तो वह सभी देशों में चक्कर लगा लेती है। जब एक जगह कला-कौशल का विस्तार होता है तो उसका प्रभाव सबपर पड़ता है।

अगर एक व्यक्ति भी किसी एक दिशा में प्रगति करे तो उसका असर सबपर होता है। और जबतक एक के अंदर भी गंदगी बाकी है तबतक कोई भी पूरी तरह शुद्ध नहीं हो सकता।

आजकल मनुष्य के अंदर सफाई की प्रक्रिया बहुत जोर से चल रही है और परिणामस्वरूप सारी गंदगी ऊपर उछल-उछल कर आ रही है। वह नहीं जाना चाहती, डटी रहना चाहती है और युद्ध करती है। हम अगर पूरी तरह भगवान् के साथ हों तो हमारे ऊपर उसका असर नहीं हो सकता लेकिन मनुष्य छिद्रों से भरा है और ये सब चीजें उन छिद्रों में से होकर उसके अंदर घुस आती हैं। देश में, जाति में, व्यक्ति में तुम जितनी अस्तव्यस्तता देखते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो वह इसीके कारण है। इन ऊपरी चीजों को देखकर निराश न हो। ये जाने के लिये ही उमड़ रही है। तुम अपने अंदर मजबूत बनो, अपने अंदर सच्चे बनो और भगवान् की ज्योति जगाने की कोशिश करो। इसका असर सब पर होगा। काम बहुत बड़ा है, इसके लिये प्रयास भी बहुत बड़ा करना होगा लेकिन इसमें विजय अवश्यंभावी है। हम भगवान् के साथ मिलकर रहने की कोशिश करें तो उनकी विजय में साझेदार होंगे।

अब इसी विषय में किसीको कुछ और पूछना हो तो पूछ ले नहीं तो आज के लिये समाप्त।

सत्य-आरोहण

(माताजी का एक नाटक)

प्राक्कथन

एक चित्रकार की चित्रशाला में। शाम हो चुकी है, रात होने को है। सत्य की प्राप्ति के लिये एक जैसी अभीप्सावाले व्यक्तियों की एक छोटी-सी बैठक का अंत। उपस्थित हैं :

–शुभेच्छा से भरा एक लोक-सेवक,
–निराशावादी–जीवन से निराश, यह माननेवाला व्यक्ति कि पृथ्वी पर सुख मिलना असंभव है,
–पृथ्वी की समस्याओं का समाधान करने का इच्छुक वैज्ञानिक,
–सुन्दरतम आदर्श का स्वप्न लेनेवाला चित्रकार,
–तीन छात्र (दो लड़के, एक लड़की) जिन्हें अपने ऊपर और एक श्रेष्ठतर जीवन पर भरोसा है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—दो प्रेमी जो मानव-प्रेम में पूर्णता की खोज करना चाहते हैं,

—संन्यासी जो सत्य की खोज के लिये नाना प्रकार की कठोर तपस्या करने के लिये प्रस्तुत है,

—दो अन्य व्यक्ति जिन्हें एक ही अभीप्सा ने एक साथ रखा है, उन्होंने अनंत भगवान् को चुन लिया है क्योंकि स्वयं अनंत ने उन्हें चुना है।

(परदा उठता है)

कलाकार—प्यारे दोस्तो, अब हमारी सभा विसर्जित होने को है। इससे पहले कि हम अपने संगठित कार्यक्रम के बारे में कुछ संकल्प लें, मैं आप लोगों से फिर से यह जान लेना चाहता हूं कि क्या आप अपने पहले वक्तव्य में और कुछ जोड़ना चाहते हैं?

लोकसेवक—हां, मैं फिर से कहना चाहता हूं कि मैंने अपना सारा जीवन लोकसेवा के लिये समर्पित कर दिया है। मैंने बरसोंतक सभी परिचित और संभव पद्धतियों को अपनाकर देखा परंतु कोई संतोषजनक परिणाम नहीं निकला। अब मुझे विश्वास हो गया है कि यदि मैं अपने काम में सफलता चाहूं तो मुझे सत्य की खोज करनी होगी। सचमुच जबतक जीवन के सच्चे अर्थ का ही पता न हो तबतक मनुष्य की सार्थक रूप से सहायता कैसे की जा सकती है? इस बीच जो कुछ उपचार किये जायें वे ऊपरी मरहम-पट्टी होंगे—सच्चे इलाज नहीं हो सकते। केवल सत्य की चेतना ही मानवजाति का उद्धार कर सकती है।

निराशावादी—मैंने जीवन में बहुत दुःख झेले हैं और बहुत भ्रांतियों में पड़कर निराश हुआ हूं। कितने अन्याय सहे हैं और कितनी मुसीबतें उठायी हैं। अब मुझे किसी पर विश्वास नहीं रहा। जगत् से या मनुष्य से कोई आशा नहीं रही। अब केवल एक आशा बच गयी है और वह है सत्य-संधान की, लेकिन वह भी तभी जब उसे पा लेना संभव हो।

पहला साधक—आप लोगों ने हम दोनों को एक साथ देखा है। एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

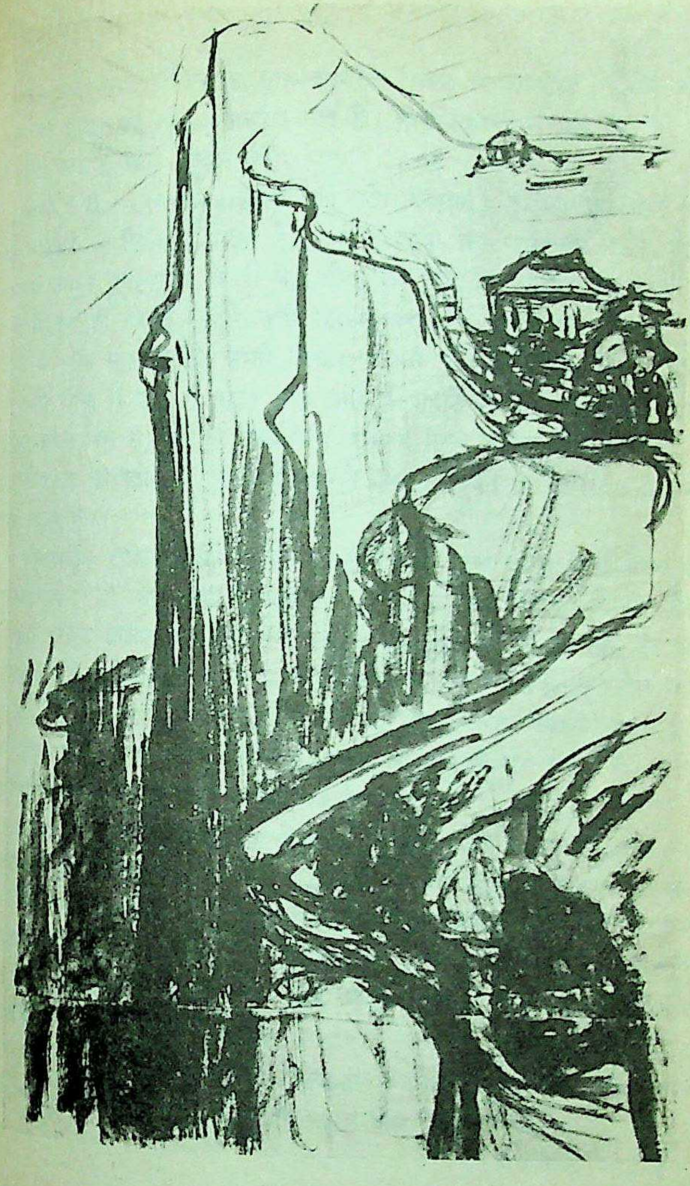

सत्य-आरोहण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही अभीप्सा हमारे जीवन को एक-दूसरे के निकट ले आयी है। हमारे अंदर प्राण या शरीर का कोई आकर्षण नहीं है। हमारे जीवन में बस एक ही धुन है और वह है सत्य-संधान की।

एक प्रेमी—(साधक-साधिका की ओर देखकर) लेकिन हम दोनों इन दो बंधुओं से बिल्कुल उल्टे हैं (अपनी प्रिया का आलिंगन करते हुए) हमारा जीवन एक-दूसरे के लिये, और एक-दूसरे के आधार पर खड़ा है, पूर्ण मिलन ही हमारी सबसे बड़ी महत्त्वाकांक्षा है। हमारे दो शरीर हों पर दोनों में सत्ता एक ही हो, हमारे विचार, हमारी इच्छाएं, हमारी भावनाएं एक हों। दो सीनों में एक ही सांस चले और दो हृदयों में एक ही धड़कन हो। हमारे हृदय प्रेम में, प्रेम के द्वारा और प्रेम के लिये जीवित हैं। हम प्रेम के संपूर्ण सत्य को खोजना चाहते हैं। हमने अपना जीवन इसीके लिये समर्पित कर दिया है।

संन्यासी—लेकिन मुझे नहीं लगता कि सत्य इतनी आसानी से पाया जा सकता है। जो पथ हमें सत्यतक ले जायेगा वह कठोर, कगार जैसा ढलुआं, नाना प्रकार की विपत्तियों, आपदाओं और भयंकर भ्रांतियों से भरा होगा। ऐसी विपदाओं को पार करने के लिये अटल संकल्प-शक्ति और इस्पात की नाड़ियों की जरूरत है। मैंने जो महान् लक्ष्य अपने सामने रखा है उसको पाने के लिये, उसके योग्य बनने के लिये मैं सब प्रकार का त्याग, तपस्या करने और घोर कष्ट सहने को तैयार हूं।

कलाकार—(सब की ओर देखकर) आप लोगों को और कुछ नहीं कहना ? तो हम लोग एकमत हैं। हम लोग एक साथ मिल-जुलकर सत्य की ओर सिर उठाये हुए इस पुनीत पर्वत पर चढ़ने का प्रयास करेंगे, यह काम बड़ा कठिन और श्रमसाध्य है परंतु है करने योग्य क्योंकि उसकी चोटी पर पहुंचने से सत्य के दर्शन होंगे और सभी समस्याएं अपने-आप हल हो जायेंगी।

तो हम लोग कल पहाड़ की तलहटी में मिलेंगे और एक साथ चढ़ना शुरू करेंगे। अच्छा, अब नमस्कार, कल फिर मिलेंगे।

(सब चले जाते हैं।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहला पड़ाव

(पहाड़ के ऊपर हरी-भरी समतल भूमि, वहां से नीचे तलहटी का दृश्य अच्छी तरह दिखायी देता है। अभीतक रास्ता चौड़ा और सहज था, अब अचानक संकरा हो उठता है और ऊंची-ऊंची चट्टानों पर चक्कर लगाता हुआ आगे बढ़ता है।

सब सामर्थ्य और उत्साह से भरे हुए आगे बढ़ रहे हैं, सबने नीचे निगाह डाली। वहां से सारा दृश्य अच्छी तरह दिखायी देता है। लोक-सेवक के इशारे पर सब नजदीक आते हैं।)

लोक-सेवक—मित्रो, मैं आपसे कुछ कहना चाहता हूं। मुझे कुछ गंभीर बातें कहनी हैं। (सब चुपचाप ध्यानपूर्वक सुनते हैं) हम बड़े आराम से इस उच्च भूमितक चढ़ आये हैं। यहां से हम जीवन को भली-भांति देख सकते हैं, उसकी समस्याओं को भली-भांति समझ सकते हैं और मनुष्य के दुःखों के कारण को भी समझ सकते हैं। हमारा ज्ञान अधिक विस्तृत और गहरा हो गया है, और अब हम जो हल ढूंढ़ना चाहते थे उसे पा सकते हैं। (चुप) लेकिन अब हम एक नये मोड़ पर आ पहुंचे हैं जहां एक निश्चय करना होगा। आगे और भी खड़ी और कठिन चढ़ाई है। इसपर तुर्रा यह कि हम पहाड़ के उस ओर चले जायेंगे जहां से नीचे वादी को और मनुष्यों को देख भी न सकेंगे। इसका मतलब यह है कि मुझे अपना काम छोड़ देना होगा और मानवसेवा के व्रत को तोड़ देना होगा। अब मुझे अपने साथ रहने के लिये न कहिये। आप लोगों को छोड़कर मुझे अपना कर्तव्य पूरा करने के लिये जाना ही होगा।

(वह नीचे की ओर उतरता है। सब जरा विस्मय और दुःख के साथ उसकी ओर देखते हैं।)

संन्यासी—बेचारा मित्र, नीचे की ओर चल पड़ा! कर्तव्य की आसक्ति, बाह्य जगत् के बाह्य रूप की मोहमाया ने उसे जकड़ लिया। किंतु हमारे उत्साह में रत्तीभर कमी न आनी चाहिये। हम किसी खेद या दुविधा के बिना अपने रास्ते पर बढ़ते चलें।

(सब आगे बढ़ते हैं।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरा पड़ाव

(रास्ते का एक हिस्सा, और सीधी चढ़ाई। रास्ता समकोण पर घूम जाता है जिससे यह नहीं मालूम होता कि किधर जा रहा है। नीचे सफेद बादल ने इस हिस्से को दुनिया से बिल्कुल अलग कर दिया है निराशावादी को छोड़कर सब न्यूनाधिक आनंद में चले जा रहे हैं। निराशावादी सबसे पीछे पांव घसीटता आ रहा है, आखिर रास्ते के किनारे एक ऊंची-सी जगह देखकर बैठ जाता है। अपने सिर को दोनों हाथों में लेकर वह गुमसुम बैठा ही रहा। औरों ने यह देखा तो सब उस ओर मुड़े। छात्र ने उसके कंधे पर हाथ रखते हुए कहा।)

छात्र—अरे भई, क्या हुआ ? बात क्या है ? थक गये क्या ?

निराशावादी—(पीछे हटाते हुए) नहीं, नहीं। मुझे छोड़ दो। मुझे छोड़ दो। बहुत हो चुका, और नहीं चाहिये। यह असंभव है।

विद्यार्थी—लेकिन बात क्या है ? चलो, उठो, हिम्मत से काम लो।

निराशावादी—नहीं, नहीं, मैं कह तो चुका। मुझसे कुछ न होगा। यह मूर्खतापूर्ण और असंभव दुःसाहस का काम है। (पैरों तले बादल दिखाकर) देखो न, हम संसार से और जीवन से एकदम बिछुड़ गये हैं। अब समझने के लिये आधारस्वरूप कुछ नहीं रहा। कुछ भी नहीं रहा (फिर मुड़कर रास्ते के मोड़ की ओर देखता है) और इधर देखो, यह भी पता नहीं लगता कि हम किधर जा रहे हैं। सारी चीज ही निरर्थक या भ्रांतिपूर्ण या शायद दोनों है। और शायद खोजने योग्य कोई सत्य है भी नहीं। यह जगत्, यह जीवन एक नरक है जिसमें से निकलने का कोई रास्ता नहीं। हम उसमें बंदी बने हुए हैं। तुम्हारी इच्छा हो तो आगे बढ़ते जाओ। लेकिन मैं तो अब टस से मस न होऊंगा। मैं और अधिक बेवकूफ नहीं बनना चाहता !

(फिर से दोनों हाथों में सिर रख लेता है। विद्यार्थी उसे समझा सकने की आशा छोड़ देता है, देर होने के डर से उसे अपनी निराशा के साथ छोड़कर औरों के साथ चढ़ने लगता है।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

तीसरा पड़ाव

(वैज्ञानिक और कलाकार दल में सबके पीछे चले आ रहे हैं। शायद बातों के कारण पीछे रह गये हैं। बातचीत का अंतिम भाग।)

वैज्ञानिक—हां, जैसा मैं कह रहा था, मुझे लगता है कि हम जरा हल्के-फुल्के भाव से, गंभीरता के बिना ही इस अभियान पर चल पड़े हैं।

कलाकार—यह तो ठीक है कि अभीतक हमारी चढ़ाई काफी निष्फल-सी रही है। मैं यह नहीं कहता कि हमें बहुत-सी चित्ताकर्षक वस्तुओं को देखने का अवसर नहीं मिला। लेकिन ये सब चीजें बहुत लाभदायक नहीं निकलीं।

वैज्ञानिक—हां, मुझे तो अपनी ही पद्धति पसंद है। हमारी विधि ज्यादा युक्तियुक्त है। वह निरंतर परीक्षण पर आधारित है। हम पहले कदम की सत्यता के बारे में निश्चित प्रमाण पाये बिना दूसरा कदम आगे नहीं बढ़ाते, चलो, हम अपने साथियों को जरा आवाज दे लें। मुझे उनसे बहुत जरूरी बात कहनी है। (आवाज देकर और हाथ के इशारे से सबको पास बुलाकर वैज्ञानिक अपनी बात कहता है।) मेरे प्यारे मित्रो, एक ही पथ के सहयात्रियो! हम जगत् से और उसकी कठोर वास्तविकता से जितनी दूर होते जा रहे हैं उतना ही मुझे यह लग रहा है कि हम बचकाने काम में लगे हैं। हमें यह बोध दिया गया था कि यदि हम इस सीधी चढ़ानवाले पहाड़ की चोटीतक चढ़ सकें—वहां अभीतक कोई नहीं पहुंच पाया है—तो हम सत्य को पा लेंगे। यह सुनते ही हम रास्ते के बारे में जानकारी प्राप्त किये बिना मुंह उठाकर चल पड़े। कौन कह सकता है कि हम रास्ते में भटके नहीं हैं, कौन विश्वास के साथ कह सकता है कि हमें आशा के अनुसार ही फल मिलेगा? मुझे लगता है कि हमने अक्षम्य चंचलता के साथ काम किया है। हमारा यह प्रयास बिल्कुल अवैज्ञानिक है। मुझे बड़े दुःख के साथ कहना पड़ता है कि मैं यहीं रुक जाऊंगा। आप लोगों के साथ मेरी मैत्री अक्षुण्ण बनी रहेगी, परंतु मैं यहीं रुककर समस्या का अध्ययन करूंगा और यदि संभव हो तो निश्चित रूप से यह पता लगाऊंगा कि कौन-से रास्ते से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगे बढ़ना चाहिये जिससे हम लक्ष्यतक अवश्य जा पहुंचें। (थोड़ी देर के बाद) इसके अतिरिक्त मुझे यह विश्वास हो गया है कि यदि मैं पृथ्वी की किसी मामूली से मामूली चीज की रचना का पूरा रहस्य जान लूं, उदाहरण के लिये रास्ते के इस तुच्छ पत्थर के रहस्य को भी जान लूं तो उसीसे मैं उस सत्य को भी पा सकूंगा जिसकी हमें खोज है। अच्छा, तो फिर मैं यहीं ठहरूंगा और आप सबसे कहूंगा: 'पुनरागमनाय'; हां, मैं सचमुच पुनरागमनाय कह रहा हूं क्योंकि मैं आशा करता हूं कि या तो आप लोग मेरे और मेरी वैज्ञानिक पद्धति के लिये यहां लौट आयेंगे या मैं जिस चीज की खोज में हूं उसे पाकर आप लोगों को खुशखबरी देने वहां आ जाऊंगा

कलाकार—मैं भी आप लोगों का साथ छोड़ने की सोच रहा हूं। मेरा और हमारे वैज्ञानिक मित्र का कारण एक तो नहीं है पर है उतना ही जोरदार।

इस मनोरम चढ़ाई में मैंने बहुत-से अनुभव प्राप्त किये हैं। मैंने नये सौंदर्य को देखा है, या यूं कहें कि मेरे अंदर सौंदर्य के एक नये बोध का प्रादुर्भाव हुआ है; साथ ही एक तीव्र अदम्य इच्छा उत्पन्न हो रही है कि इन अनुभूतियों को भौतिक रूप दूं। उन्हें जड़तत्त्व के अंदर उतार लाऊं ताकि वे सबके शिक्षण में सहायक हो सकें और विशेष रूप से यह भौतिक जगत् आलोकित हो उठे।

बड़े दुःख के साथ आप सबसे अलग हो रहा हूं। जबतक अपनी नूतन अनुभूतियों को मूर्त रूप न दे लूंगा तबतक मैं यहीं रहूंगा और मुझे जो कुछ करना है उसे साकार कर चुकने के बाद मैं फिर से चढ़ाई आरंभ कर दूंगा और आप लोग जहां जा पहुंचे होंगे वहीं आ मिलूंगा और आपके साथ नवीन खोज में लग जाऊंगा।

अच्छा तो चलें, आपका मार्ग शुभ हो।

(सब लोग जरा विस्मय के साथ देखते हैं। अल्पवयस्क विद्यार्थिनी कह उठती है:)

विद्यार्थिनी—इस प्रकार के पथत्याग से हमारा कुछ नहीं बनता-बिगड़ता। हर व्यक्ति अपनी नियति के अनुसार चलता है और अपनी प्रकृति के अनुसार काम करता है। हमें अपने अभियान से कोई नहीं रोक सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलो, जरा भी थके बिना, साहस और धैर्य के साथ हम लोग अपने रास्ते पर बढ़ें।

(वैज्ञानिक और कलाकार को छोड़कर सब आगे बढ़ते हैं।)

चौथा पड़ाव

(साधक, साधिका और संन्यासी बिना रुके स्थिर भाव से आगे बढ़ते जाते हैं। उनके पीछे प्रेमी-युगल हैं। हाथ में हाथ डाले बिना किसीकी परवाह किये अपने-आपमें मस्त चले जा रहे हैं। सबके पीछे तीन विद्यार्थी हैं, देखने में थके हुए लगते हैं। रुककर)

पहला विद्यार्थी—उफ ! भाई, क्या चढ़ाई है यह ! बाप रे बाप ! क्या रास्ता है ! बस चढ़ते ही जाओ, चढ़ते ही जाओ। कहीं रुकने का नाम ही नहीं। दम लेने की भी फुरसत नहीं। मैं तो अब थक चला।

विद्यार्थिनी—यह भी कोई बात है भला। तुम भी हमें छोड़ जाना चाहते हो, यह भी कोई भद्रता हुई ?

पहला विद्यार्थी—अरे नहीं, नहीं, छोड़ने का सवाल नहीं है। लेकिन क्या हम थोड़ा आराम भी नहीं कर सकते ? जरा बैठकर दम भी नहीं ले सकते? ओह, पैर मन-मन भर के हो रहे हैं ! जरा-सा आराम कर लेने से फिर अच्छी तरह चढ़ा जायेगा। अच्छा, अब जरा अच्छे बच्चे बनकर थोड़ा बैठ लो, सिर्फ थोड़ी ही देर। उसके बाद हम फिर चल पड़ेंगे, तब देखना, कैसी तेजी से चढ़ा जायेगा।

दूसरा विद्यार्थी—अच्छा। हम तुम्हें यहां पड़े-पड़े ठिठुरने के लिये नहीं छोड़ देंगे। और फिर मुझे भी तो थोड़ी-सी थकान लग रही है। आओ, सभी थोड़ी देर बैठ लें और रास्ते में जो कुछ देखा-सीखा है उसकी बातचीत करें।

विद्यार्थिनी—(क्षणभर हिचकिचाकर वह भी बैठ जाती है) चलो, यही सही। तुम्हारा साथ नहीं छोड़ना चाहती। लेकिन ज्यादा देर न बैठना। रास्ते में देर करना हमेशा खतरनाक होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(प्रेमी और प्रेयसी मुड़कर देखते हैं कि ये तीनों बैठ गये फिर आगे चल पड़ते हैं।)

पांचवां पड़ाव

(स्थान बहुत ऊंचा है। रास्ता और भी संकरा है, क्षितिज बहुत विशाल हो गया है। नीचे सफेद बादलों के कारण वादी दिखायी ही नहीं देती। बायीं ओर रास्ते से जरा हटकर एक छोटा-सा मकान है जिसके सामने खुली जगह है। पहले तीन बिना रुके आगे बढ़ गये। उनके पीछे गलबहियां किये, अपने ही स्वप्नों में मस्त प्रेमीयुगल)।

प्रेयसी—(एकांत देखकर) वाह, और कोई नहीं, हम अकेले हैं। लेकिन दूसरों की क्या परवाह ? हमें उनकी जरूरत नहीं। हम एक-दूसरे के साथ कितने खुश हैं !

प्रेमी—(रास्ते के पास का मकान देखकर) देखो तो प्रिये, पहाड़ पर यह छोटा-सा मकान, कितना सुनसान, फिर भी कितना मनोरम ! कितना अंतरंग पर फिर भी अनंत आकाश की ओर खुला हुआ है। ऐसा लगता है मानों खास हमारे लिये ही बना हो। हमें और क्या चाहिये ? हमारे मिलन के लिये यह आदर्श-स्थान है। हम दोनों ने पूर्ण अखंड मिलन प्राप्त कर लिया है जिसमें परछाई या बादलों का भी स्थान नहीं है। जो चढ़ रहे हैं उन्हें उन अनिश्चित सत्य की ओर चढ़ते रहने दो। हम दोनों को तो अपना सत्य मिल ही गया। हमारे लिये यही काफी है।

प्रेयसी—हां, प्रियतम ! चलो जाकर इस मकान में डेरा डालें। चलो, हम यहीं अपने प्रेम का रसास्वादन करें। और किसीकी क्या परवाह !

(दोनों एक-दूसरे के गले में बांहें डाले मकान की ओर जाते हैं।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छठा पड़ाव

(रास्तेका अंत बहुत अधिक संकरा हो गया है और अचानक एक बड़ी चट्टान के आगे रुक जाता है। चट्टान सिर उठाकर सीधी आकाश से बातें कर रही है। चोटी दिखायीतक नहीं देती। बायीं ओर थोड़ी-सी समतल भूमि है। उसकी परली ओर एक छोटी-सी नीची झोंपड़ी है। सारा स्थान निर्जन और ऊसर दीखता है।

आखिरी तीन यात्री एक साथ आ पहुंचते हैं। संन्यासी रुकता है और बाकी दोनों को भी इशारे से रोकता है।)

संन्यासी—मुझे आप दोनों से एक बहुत आवश्यक बात कहनी है। आप सुनेंगे ? इस चढ़ाई में मैंने अपने सच्चे स्वरूप को, अपनी सच्ची सत्ता को पा लिया है। मैं शाश्वत के साथ एकाकार हो गया हूं। मेरे लिये अब और किसी का अस्तित्व ही नहीं है। अब मुझे किसी चीज की जरूरत नहीं रही। अब जो कुछ 'वह' नहीं है वह एक व्यर्थ की भ्रांति है। मेरा ख्याल है कि मैं पथ के अंत पर आ पहुंचा हूं, (बायीं ओर की समतल भूमि दिखाकर) और वह देखो, यह कैसा महान् और निर्जन स्थान है। मैं अब जिस प्रकार का जीवन बिताना चाहता हूं, यह स्थान उसके ठीक अनुकूल है। मैं वहां जाकर धरती और मनुष्यों से दूर जीवित रहने के कर्तव्य से भी मुक्त होकर रह सकूंगा। (और कुछ कहे-सुने बिना, पीछे देखे या बिदा लिये बिना ही सीधा अपनी व्यक्तिगत सिद्धि के लक्ष्य की ओर चला जाता है।)

(साधिका और साधक अकेले रह गये हैं। संन्यासी के व्यवहार की भव्यता से जरा प्रभावित होकर उन्होंने एक-दूसरे की ओर देखा। फिर संभल गये। साधिका बोल उठी।)

साधिका—नहीं, नहीं, यह कभी सत्य नहीं हो सकता, यह पूर्ण सत्य नहीं है। यह सारी विश्वसृष्टि केवल भ्रमजाल नहीं हो सकती, जिससे भाग खड़ा होना जरूरी हो। और फिर अभी तो हम पर्वत-शिखर पर नहीं पहुंचे, अभी तो हमारी चढ़ाई खतम नहीं हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक—(रास्ता सीधी दीवार जैसी चट्टान पर आकर खतम हो जाता है। उसे दिखाते हुए) तैयार रास्ता तो यहां खतम हो रहा है। मेरा ख्याल है कि कोई मनुष्य इससे आगे नहीं गया। इस दीवार जैसी सीधी चट्टान पर चढ़ना तो एकदम असंभव-सा है। इसे पार करने के लिये पग-पग पर रास्ता बनाना होगा। यहां बिना किसी सहायता या मार्गदर्शक के अपने ही प्रयास से, केवल अपने संकल्प और अपनी श्रद्धा के बल पर आगे बढ़ना होगा। निःसंदेह, हमें अपना मार्ग अपने-आप ही काटकर तैयार करना होगा।

साधिका—(उत्साह के साथ) कोई परवाह नहीं। चलो, बढ़े चलें, हमेशा बढ़ते चलें। अभी हमारी खोज के लिये बहुत कुछ बाकी है। इस सृष्टि के पीछे एक अर्थ है। हमें उसे खोज निकालना है।

(दोनों फिर चल पड़ते हैं।)

सातवां पड़ाव

(साधक-साधिका बड़ी वीरता के साथ सब विघ्न-बाधाओं को पार करके आये हैं और अब पूरा जोर लगाकर पूर्ण प्रकाश में पहाड़ की चोटी पर पहुंच जाते हैं। यहां सब कुछ ज्योतिर्मय है। चट्टान के उस संकरे हिस्से को छोड़कर जिसपर दोनों बड़ी मुश्किल से खड़े हैं, सब कुछ ज्योतिर्मय है।)

साधक—आखिर हम शिखर पर आ पहुंचे। दमकता हुआ ज्योतिर्मय सत्य, उसके सिवा कुछ नहीं।

साधिका—और सब कुछ अदृश्य हो गया है। हम इतना परिश्रम करके जिन सीढ़ियों पर चढ़कर यहांतक पहुंचे हैं वे भी गायब हो गयीं।

साधक—आगे-पीछे, इधर-उधर, चारों ओर शून्य ही शून्य है। सिर्फ पैर रखने के लिये जगह है और कुछ नहीं।

साधिका—अब किधर जायें, क्या करें ?

साधक—यहां तो बस सत्य ही सत्य है। चारों ओर, सब दिशाओं में सत्य।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधिका—लेकिन उसे प्राप्त करने के लिये अभी और भी आगे जाना होगा और इसके लिये और रहस्य की खोज करनी होगी।

साधक—अब यह स्पष्ट है कि यहां व्यक्तिगत प्रयास की संभावनातक खतम हो जाती है। अब एक और शक्ति को आकर सहायता करनी होगी।

साधिका—अब भगवत्कृपा, केवल भगवत्कृपा ही काम कर सकती है। वही आगे का पथ खोल सकती है, वही महान् चमत्कार दिखा सकती है।

साधक—(क्षितिज की ओर हाथ फैलाकर) देखो, देखो उधर दूर, उस अतल खाई के उस पार एक शिखर दिखायी देता है। कैसा अनुपम, सर्वांगसुंदर, सुषमापूर्ण, आलोकित और अद्भुत रूप से सामंजस्यपूर्ण है। यह वही पुण्यभूमि है, यह वही तपोभूमि है जिसके बारे में हमें आदेश दिया गया था।

साधिका—हां, हां, हमें वहीं जाना चाहिये, पर कैसे ?

साधक—यदि हमें वहां पहुंचना है तो हमें रास्ता भी जरूर मिल जायेगा।

साधिका—हां, श्रद्धा रखनी चाहिये, भगवत्कृपा पर पूर्ण विश्वास रखना चाहिये और भगवान् के प्रति पूर्ण समर्पण होना चाहिये।

साधक—हां, भगवान् की इच्छा के सामने पूर्ण समर्पण की जरूरत है। जब कोई रास्ता न दिखता हो तब हमें पूर्णतया निर्भय होकर, बिना किसी हिचकिचाहट के पूरी श्रद्धा के साथ छलांग लगानी होगी।

साधिका—और हमें अपने गंतव्य स्थान तक पहुंचा दिया जायेगा।

(दोनों छलांग मारते हैं।)

उपसंहार

सिद्धि

(जादूभरी ज्योति का देश)

साधक—लो, हम आ पहुंचे। कोई अद्भुत शक्ति अदृश्य पंखोंपर यहांतक उड़ा लायी।

साधिका—कैसी अद्भुत ज्योति है ! अब बस नवजीवन सीखना बाकी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युवा साधक के साथ पत्र-व्यवहार

जब कोई अपरिवर्तित भाग ऊपर उठ आये तो मुझे क्या करना चाहिये ?

धीरज के साथ तबतक उसपर रोशनी और ज्ञान डालो जबतक वह परिवर्तित न हो जाये।

२९ मई १९३४

—माताजी

माताजी, आपने लिखा कि मुझे अपरिवर्तित भाग पर तबतक प्रकाश और ज्ञान डालना चाहिये जबतक वह परिवर्तित न हो जाये। मेरे ख्याल से आप ही इसे कर सकती हैं।

मेरे कहने का मतलब ठीक यही है; तुम्हें केवल श्रीअरविंद या मुझे पुकारना चाहिये और यह कहना चाहिये कि यह अंधेरा हिस्सा प्रकाशित और परिवर्तित हो जाये।

३० मई १९३४

—माताजी

आज सुबह अच्छी अभीप्सा थी। लेकिन प्रणाम के बाद मुझे कुछ बेचैनी-सी लगी। इस समय कभी मैं स्वयं को खुश तो कभी दुःखी अनुभव कर रहा हूं। मेरी समझ में नहीं आता कि मुझे क्या हो रहा है।

इसमें कोई असाधारण बात नहीं है। ऐसे बहुत-से लोग हैं।

३१ मई १९३४

—माताजी

'त्र' बहुत बार मुझसे व्याकरण के प्रश्न पूछता है। मैं फ्रेंच अच्छी तरह नहीं जानता। इसलिये अगर वह प्रश्न न पूछे तो ज्यादा अच्छा होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम थोड़ा-बहुत जो भी जानते हो, वह दूसरों को बता सकते हो, लेकिन इस बात का ध्यान रखो कि उन्हें सचेत कर दो कि तुम्हें फ्रेंच बहुत नहीं आती और तुम अपने उत्तरों की शुद्धता के बारे में निश्चित नहीं हो।

३१ मई १९३४

—माताजी

कल रात मैं नौ से दसतक पढ़ता रहा। मैं और भी पढ़ना चाहता था, लेकिन मैंने सोचा कि आप इसे पसंद नहीं करेंगी।

हां, तुम ठीक हो। तुम्हें बहुत राततक काम नहीं करना चाहिये।

१ जून १९३४

—माताजी

मंदिर में जाना अच्छा है क्या ? यह विचार मेरे अंदर इसलिये आया कि अगर कोई निराकार भगवान् में विश्वास रखता है तो उसे साकार भगवान् में—मेरा मतलब है मानव सत्ता के रूप में—विश्वास न होगा।

तुम्हारा मतलब है कि अगर किसी को किसी धर्म के भगवान् पर श्रद्धा है तो किसी देहधारी भगवान् पर कैसे श्रद्धा होगी ? यह बात एकदम ठीक है।

—माताजी

१ जून १९३४

सोसायटी समाचार

माताजी के भारत में प्रथम आगमन की वर्षगांठ के उपलक्ष्य में २९ मार्च १९९० को क्रीड़ांगण में सामूहिक ध्यान हुआ। इसी तरह ४ अप्रैल को श्रीअरविंद के आगमन की वर्षगांठ मनायी गयी।

२४ अप्रैल को माताजी के दूसरे आगमन की स्मृति में दर्शन-दिवस मनाया जाता है। सवेरे श्रीअरविंद के कमरे के दर्शन और दस बजे ध्यान हुआ। इस अवसर पर जो फोल्डर बांटा गया उसपर श्रीअरविंद का वचन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छपा था, जिसका भाव था, प्रकृति प्रच्छन्न भगवान् को प्रकट करने के लिये रहेगी, आत्मा इस शरीर को धारण कर लेगी और पार्थिव जीवन दिव्य जीवन बन जायेगा।

"प्रभावकारी निष्पत्ति के लिये चेतना द्वारा व्यवस्था" विषय पर सोसायटी की ओर से बीच ऑफिस में एक वर्कशाप की गयी जिसमें कई उद्योगपतियों ने भाग लिया। इसका उद्देश्य था व्यक्ति में उच्चतर चेतना की अभिज्ञता को खोजना और उसकी क्षमता का व्यावहारिक जीवन में उपयोग करना सीखना।

सोसायटी के अंतर्राष्ट्रीय विभाग ने सूचना दी है कि पश्चिम जर्मनी में सोसायटी का कार्य सुचारु रूप से चल रहा है। अभी हाल में वहां के राष्ट्रपति हेलमुट कोहल ने सोसायटी के कार्य की प्रशस्ति करते हुए कहा कि भारत की आध्यात्मिकता के पास पश्चिम को देने के लिये बहुत कुछ है और विशेष रूप से श्रीअरविंद वे महान् दार्शनिक हैं जिन्होंने सफलता के साथ आत्मा और जड़ द्रव्य का मेल किया है। उन्हें विश्वास है कि श्रीअरविंद ही पूर्व और पश्चिम को अधिकाधिक निकट ला सकेंगे।

पहली और दूसरी अप्रैल को उत्तर प्रदेश की क्षेत्रीय शाखा का सम्मेलन चरथावल (जिला मुजफ्फरनगर) में हुआ जिसमें लगभग ७० व्यक्तियों ने भाग लिया।

हैदराबाद में उत्तर प्रदेश के राज्यपाल श्री सत्यनारायण रेड्डी श्रीअरविंद भवन देखने आये।

मद्रास की सोसायटी शाखा ने 'विशाल हिंदू धर्म' और 'उषा से पहले की पावन घड़ी' पर दो भाषणों का आयोजन किया।

कलकत्ते में सोसायटी की युवा परिषद् शाखा ने बच्चों के दो दिन के शिविर का आयोजन किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Selfishness kills the soul; destroy it. But take care that your altruism does not kill the souls of others.

Sri Aurobindo

Assam Tea Warehousing Corporation

Registered and approved Warehouse
at Gauhati (Assam)

H.O.: 8, Camac Street, Room No. 7
Shantiniketan Building
CALCUTTA – 700017

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबसे पहली चीज होनी चाहिये 'शांति'। तुम जो कुछ करो उसे शांतिपूर्ण तरीके से करना चाहिये।

सहारनपुर सर्विस स्टेशन

पैट्रोल पम्प, देहरादून रोड

सहारनपुर–२४७००१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Registered with the Registrar of Newspapers for India
No. R. N. 18135/70
REGD. No. M. 8731

अनुशासन के बिना कोई उचित काम सम्भव नहीं है।

— श्रीमां

With Best Wishes from:

MRS. KOYAL DEORAH CHARITABLE TRUST

28, VARSHA, 69/B, NEPEANSEA ROAD

BOMBAY - 4000 006

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्निशिखा

अखिल भारतीय पत्रिका

अगस्त १९९०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगस्त १९९० वर्ष २१, अंक १, पूर्णांक २४१

विषय-सूची

सन्देश : वर्तमान घड़ी	श्रीअरविन्द	१
आदर्श प्रतिमान		२
'संपादकीय' : निर्भयता	अनुबेन	३
एक पाठक को पत्र	अनुबेन	४
दैनन्दिनी		७
महान रहस्य (नाटक)	माताजी	१०
'ऋषिवर बोले' : चबाव		३४
चैत्य सुगन्ध, पथ-प्रदर्शन, माताजी की सहायता	श्रीअरविन्द	३८
सोसायटी समाचार		४०

आपका अग्निशिखा/पुरोधा का चंदा ... में समाप्त हो रहा है। कृपया अग्निशिखा के १० और पुरोधा के १४ शीघ्र भेजें अन्यथा अगला अंक वी. पी. पी. से जायगा। वी. पी. पी. लौट आने से हमें बहुत हानि होती है। अलग अनुस्मारक नहीं भेजा जायगा। कृपया चेक न भेजें। चाहें तो २२५ और २७५ एक साथ या किस्तों में देकर अग्निशिखा और पुरोधा के या ५०० देकर दोनों के आजीवन सदस्य बन सकते हैं।

अग्निशिखा वार्षिक १०.०० आजीवन २२५.००

श्रीअरविंद सोसायटी की मासिक पत्रिका

संपादक : रवींद्र, अनुबेन

प्रकाशक : श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी–६०५००२

मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी–६०५००२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि

वर्तमान घड़ी

यह ऐसी घड़ी है जब भारत के लिये और सारे जगत् के लिये उसकी भावी नियति और एक शताब्दी के लिये उसके चरणों के मोड़ प्रबल रूप से निश्चित किये जा रहे हैं, और वह भी किसी साधारण शताब्दी के लिये नहीं बल्कि ऐसी शताब्दी के लिये जो अपने-आपमें युग-संधि है, जो मानवजाति के भीतरी और बाहरी इतिहास में महान् उलटाव है। हम अभी जैसा कर्म करेंगे, अपने कर्म का हमें वैसा ही पुरस्कार मिलेगा। और ऐसी घड़ी में इस प्रकार की हर पुकार एक ही साथ एक अवसर, एक संयोग और एक परीक्षा होती है जो हमारी जाति की आत्मा को दी गयी है। वर दे कि यह कहा जा सके कि हर एक के अंदर वह अपनी सत्ता की पूरी ऊंचाईतक उठी और अपने पक्ष में नियति के स्वामी के प्रत्यक्ष हस्तक्षेप की अधिकारिणी बनी।

—श्रीअरविंद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदर्श प्रतिमान

पं० नेहरू की इच्छा थी कि भारत के हर प्रदेश का एक प्रतिनिधि-मॉडल (प्रतिमान) तैयार किया जाये।

पांडिचेरी के लिये इसका खाका स्वयं माताजी ने तैयार किया जिसे आश्रम के कलाकारों ने मूर्त्त रूप दिया।[1] शायद अब भी यह तीनमूर्ति भवन में रखा है।

पूरा मॉडल एक नौका में रखा गया था जो पांडिचेरी के समुद्र तट का प्रतिनिधित्व करती है। भारत की चार शक्तियों का प्रतिनिधित्व करते हुए चार सिंह नौका की रक्षा करते हैं, बीच में एक चबूतरा है जिसे चार मूर्तियां सहारा देती हैं जो संसार के चार महाद्वीपों का प्रतिनिधित्व करती हैं। आसन जमाये हुए बुद्ध एशिया के प्रतिनिधि हैं, यूनान की पालास एथिनी यूरोप की, मिस्र की आइसिस अफ्रीका की और स्वाधीनता की मूर्ति अमरीका की प्रतिनिधि है। इन मूर्तियों के बीच में सफेद और लाल कमलों के आठ स्तम्भ हैं जो मानवजाति की दिव्य नियति की सफल उपलब्धि के लिये कार्यरत आध्यात्मिक शक्ति के प्रतीक हैं। पृथ्वी के गोले पर एक चबूतरा है जिसके एक ओर एक भारतीय नारी हाथ में तालपत्र लिये खड़ी है जो विजय का प्रतीक है और दूसरी ओर एक फ्रेंच नारी शांति के प्रतीक जैतून की शाखा लिये है। गोले पर शांति की फाख्ता उतर आयी है।

[1] चित्र के लिये देखिये मुखपृष्ठ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संपादकीय :

निर्भयता

जूलियस सीजर के विरोधियों की संख्या बढ़ती जा रही थी। उसके पराक्रम, शौर्य और अन्य गुणों ने जहां प्रजा में लोकप्रियता प्राप्त कर ली थी वहीं सामन्तों में उससे जलनेवालों की संख्या भी कम न थी। बहुतों ने, जिनमें कई उसके प्रियजन थे, उसकी हत्या करने की ठानी और उसे एक सभा में निमंत्रित किया। यह एक खुला रहस्य था कि वहां उसकी हत्या करने का प्रयास किया जायेगा। उसकी पत्नी ने आग्रहपूर्वक उसे रोकने की कोशिश की। सीजर का जवाब था, ''भीरु लोग मृत्यु से पहले बार-बार मरा करते हैं, वीर केवल एक बार ही मृत्यु का स्वाद लेता है। मैंने अपने जीवन में जितनी भी आश्चर्यजनक चीजें देखी हैं उनमें सबसे अधिक आश्चर्यजनक यह है कि यह जानते हुए कि मृत्यु को एक बार तो आना ही है और उसे जब आना हो तभी आयेगी, फिर भी लोग उससे डरते हैं।'' यह है निर्भयता।

इसी भांति एक और कहानी है—काली, अंधेरी रात अपने उद्दाम यौवन पर थी। चारों ओर घटाएं छायी हुई थीं, कहीं एक जुगनू तक न दिखायी देता था। सामने उच्छृंखल नदी अपनी उछल-कूद में लगी थी। नाविक उससे दूर, बहुत दूर जा बैठे थे।

इतने में कुछ लोग आये और बोले, ''हमें नदी के उस पार जाना है, तुममें से कोई ले चलेगा ?'' पेशेवर नाविक उनका यह बौड़मपन देखकर हंस पड़े और उन्होंने मान लिया कि ये लोग नशे में हैं। कहीं से एक मल्लाह उठा और बोला, "कहां जाना है तुम्हें ऐसी अंधेरी, भयावनी रात में ? ऐसी भी क्या जल्दी है कि तूफान के थमनेतक रुक नहीं सकते ?''

यात्रियों में से एक ने कहा, ''तुम विश्वास करो, हम पागल नहीं हैं। हमारे गुरु नदी के उस पार रहते हैं, उन्होंने पौ फटने से पहले हमें बुलाया है। गुरु की आज्ञा नहीं टाली जा सकती, तुम चलो या न चलो, हमें जाना ही होगा, तुम जितना पैसा मांगो हमें इंकार न होगा।''

नाविक ने हंसकर उत्तर दिया, ''मैं पैसे के लिये अपनी जान न्योछावर नहीं करना चाहता पर तुम्हारी श्रद्धा के आगे सिर झुकाता हूं, चलो, आ जाओ मेरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नैया में।'' वह पतवार पर जा बैठा और यात्रियों से बोला—''तुममें से हर एक को डांड चलाना होगा।'' उन्होंने उसकी बात मान ली।

नदी पार कराते समय नाविक ने एक गीत शुरू कर दिया जिसका तात्पर्य था, ''तुम्हें साधारण नाव नहीं, जीवन की नैया खेनी है, तुम्हारा सखा पतवार लिये बैठा है और तुम डांड चला रहे हो। बढ़े चलो, चारों ओर से लहरें ऊंची-ऊंची उठ रही हैं, वे तुम्हें सीधा उस पार भी पहुंचा सकती हैं और नदी की गहराई में भी धंसा सकती हैं। दोनों में फर्क ही क्या है ? जीवन हो या मृत्यु, मृत्यु हो या जीवन दोनों एक ही हैं, इस पार भी सखा है, उस पार भी सखा, बस उसी पर विश्वास रखो और सारे डर को उसीको सौंप दो। वह उन्हें गलाकर पंक में से पंकज बना देगा। बढ़े चलो, हां, बढ़े चलो, सखा की ओर बढ़े चलो।''

सहसा गान समाप्त हो गया, यात्री मानों मूर्च्छा में से जागे। उस पार के मल्लाह विस्मित थे, यह मधुर संगीत कहां से आया और कहां चला गया ? सब एक-दूसरे की ओर प्रश्नचिह्न बने ताक रहे थे।

अचानक मौन टूटा। एक बूढ़े मल्लाह ने कहा, ''अरे समझे नहीं, स्वयं सखा ही तो नाविक बनकर हमें पाठ सिखाने आया था। हम लोग डर गये और यहां के यहीं पड़े रहे। यात्रियों ने हिम्मत की, निडर होकर सखा के हाथों में अपने-आपको छोड़ दिया और उसके बल पर पार हो गये। हमने भी पहचाना भले न हो पर सखा को देख तो लिया ही है, हमारे भाग्य खुल गये और सारी मुसीबतें टल गयीं। अब हम यह भली-भांति समझ गये हैं कि जब कभी आंधियां आयें, नदी में बगूले उठने लगें, नौका में छेद हो जाये और थपेड़ों पर थपेड़े लगते रहें, हम सखा को हमेशा बुला सकते हैं, वे कभी हमारी बात अनसुनी न करेंगे।''

एक पाठक को पत्र

प्रिय भाई,

तुम्हारी दुःखभरी गाथा पढ़कर ग्लानि हुई। लेकिन अगर मैं तुम्हारी बातों से सहमत न होऊं तो बुरा मत मानना।

तुमने कहा है कि Environment के कारण बच्चा डाकू बन सकता है या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधु। मुझे मालूम है कि परिवेश (Environment) का मनुष्य के चरित्र को गढ़ने में हाथ अवश्य है लेकिन पूरी जिम्मेदारी उसपर नहीं डाल सकते। मेरा ख्याल है सबसे बड़ी चीज है व्यक्ति के अपने संकल्प और विवेक की। तुम कहोगे छोटे बच्चों के अंदर विवेक नहीं होता, वे अच्छा-बुरा नहीं समझते, यह बात सच नहीं है। प्रत्येक बच्चे के अंदर कोई ऐसा तत्त्व होता है जिसके द्वारा उसे अच्छे-बुरे का संकेत अवश्य मिलता है। लेकिन साधारणतः बहुत कम बच्चे उस वक्त ध्यान देते हैं।

यह बात सच है कि काम (Sex) बहुत बड़ी शक्ति है और उसका सामना करने के लिये अत्यन्त मजबूत इच्छा-शक्ति या आंतरिक बल चाहिये जो कि कम ही मनुष्यों में पाये जाते हैं। यह सचमुच तुम्हारा दुर्भाग्य था कि तुम एक ऐसी लड़की के संग में आये जिसके कारण तुम्हारी काम-वासना भड़क उठी।

मैं एक ऐसे पुरुष को जानती हूं जो डाकुओं के बीच रहा, जहां शराब और स्त्री आराम से चलते थे किन्तु वह ऐसे परिवेश में रहकर भी पूरी तरह सच्चरित्र बना रहा। इतना ही नहीं अपने संग से एक-दो साथियों को भी सुधार सका। यह असाधारण बात है और इसकी सबसे आशा नहीं की जा सकती। लेकिन ऐसी बातें जानकर मुझे आशा है कि तुम्हारा संकल्प-बल भी अधिक मजबूत बनेगा।

मेरी तुम्हें आग्रहपूर्वक सलाह है कि कभी भूल से भी आत्म-हत्या के विचार को अपने पास फटकने मत देना। मृत्यु के बाद क्या होता है वह हम नहीं जानते। लेकिन जो जानते हैं उनका कहना है कि आत्म-हत्या करने से मनुष्य को जन्मोंतक उसी परिस्थिति का सामना करना पड़ता है क्योंकि आत्म-हत्या एक पलायन है, कठिन परिस्थिति से भाग निकलने का एक उपायमात्र है। चूंकि हम उससे बचना चाहते हैं इसीलिये भगवान् हमें बार-बार एक ही परिस्थिति में डालते हैं क्योंकि भगवान् हमें धरती पर प्रगति करने, कुछ सीखने के लिये भेजते हैं और जब हम उस एक पाठ को सीखने से इंकार करते हैं तो वे हमें बार-बार उसी के सामने बैठाते हैं। इसलिये मैं आग्रह करती हूं कि ऐसे विचारों को झाड़ फेंको।

तुम काफी संवेदनशील हो तो फिर माता-पिता की मानरक्षा के लिये, समाज में अपना स्थान बनाने के लिये तुमको कमर कसकर स्वस्थ और अच्छा मनुष्य बनने की कोशिश करनी चाहिये। माताजी ने कहा है, "तुम्हारे लिये सवेरा तभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है जब तुम जागो।" अच्छा बनने के लिये, प्रगति करने के लिये कभी देर नहीं हो सकती। अच्छे संगी-साथियों के साथ उठो, बैठो। समाज में किसी रचनात्मक संस्था से जुड़ जाओ और मन लगाकर वहां काम करो। शरीर को स्वस्थ रखने के लिये व्यायाम अवश्य करो। हो सके तो किसी एक मित्र के साथ एकान्त में मत बैठो। तुम पढ़े-लिखे हो, समझदार भी हो इसलिये यह करना कठिन नहीं होना चाहिये। और एक सरल उपाय भी बता सकती हूं तुमको जो श्रीमाताजी ने हमें बताया था, उन्होंने कहा था, "हमेशा के लिये यह जान लो कि मैं तुम्हें देखती हूं और सारे समय देखती रहती हूं।" अगर यह बात याद रखोगे तो कोई गलत काम कर ही न पाओगे। इससे मुझे एक पुरानी कहानी याद हो आयी —

एक गुरु के तीन शिष्य थे। जब वे काफी कुछ सीख चुके तो गुरु ने प्रत्येक शिष्य को एक छोटी-सी चिड़िया दी और कहा कि इसे ले जाकर निर्जन स्थान में मार डालो जहां कोई न देख पाये। दूसरे दिन तीनों शिष्य लौट आये। पहले शिष्य ने कहा कि मैंने उसे मनुष्यों से दूर जाकर मार डाला। दूसरे शिष्य ने कहा कि मैं जंगल में चला गया और जहां कोई भी पशु या पक्षी न था वहां उसे मार डाला। तीसरे शिष्य ने गुरु से कहा कि वह भी जंगल में गया लेकिन कहीं न कहीं कोई पशु, कोई पक्षी उसे दिखायी दिया, फिर वह अधिक एकान्त के लिये एक गुफा में चला गया, सचमुच वहां कोई न था लेकिन जैसे ही उसने पक्षी को मारने की कोशिश की उसे लगा, कहीं दो आंखें उसे ताक रही हैं। इसलिये वह पक्षी को जिन्दा वापिस लाया है। गुरु ने शिष्य को शाबाशी दी और कहा, बात सच है, ब्रह्म सर्वत्र विराजमान हैं। उनसे विहीन बालू का एक कण भी नहीं।

तो भाई, तुम भी इसी तरह कोशिश करो। मुझे विश्वास है तुम सफल होओगे।

सस्नेह
भवदीया
अनुबेन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दैनन्दिनी

अगस्त

१. हमारे जीवन पर सत्य के प्रेम और प्रकाश की प्यास का राज्य होना चाहिये।

२. अगर हम भगवान् के निकट होना चाहें तो हमारे जीवन पर संपूर्ण सत्य का शासन होना चाहिये।

३. सत्य को अपनी शक्ति मानो, सत्य को अपना आश्रय मानो।

४. सत्य तुम्हारे अंदर है—परन्तु उसे पाने के लिये तुम्हें उसे चाहना होगा।

५. हम अपनी सत्ता और अपने क्रिया-कलाप में सत्य और उसकी विजय के लिये अभीप्सा करते हैं।

६. सत्य ही हमारा स्वामी और पथ-प्रदर्शक हो।

७. सफलता की अपेक्षा सत्य के लिये अधिक उत्सुक होओ।

८. सत्य की विजय एक कठिन और श्रमसाध्य विजय है। इस विजय को पाने के लिये तुम्हें सच्चा योद्धा होना चाहिये, एक ऐसा योद्धा जो किसी से नहीं डरता, न शत्रुओं से, न मृत्यु से; सबके साथ मिलकर हो या सबके विरुद्ध, शरीर के साथ हो या बिना शरीर के, संघर्ष चलता रहेगा और उसका परिणाम होगा विजय।

९. हे परम स्वामी, शाश्वत सत्य, हम केवल तेरी ही आज्ञा मानें और सत्य के अनुसार जियें।

१०. ढोंग और दिखावा अज्ञान द्वारा सत्य को दी गयी श्रद्धांजलि है।

११. ढोंग और दिखावा, चेतना के प्रति की गयी निश्चेतना की अभीप्सा के पहले चिह्न हैं।

१२. पृथ्वी पर अभीतक अज्ञान और मिथ्यात्व का शासन है लेकिन अब सत्य की अभिव्यक्ति का समय आ गया है।

१३. सत्य मिथ्यात्व से अधिक बलवान् है। एक अमर शक्ति जगत् पर शासन करती है, उसका निर्णय हमेशा विजयी होता है। उसके साथ मिल जाओ और अंतिम विजय निश्चित होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१४. सत्य की पूजा करो, वह तुम्हें मिथ्यात्व से मुक्त कर देगा।

१५. जब मनुष्य उस मिथ्यात्व से ऊब जायेंगे जिसमें वे निवास करते हैं, तब जगत् सत्य के राज्य के लिये तैयार हो जायेगा।

१६. मरने से पहले मिथ्यात्व पूरे जोरों पर है। फिर भी मनुष्य केवल विध्वंस का पाठ ही समझते हैं। क्या मनुष्यों के सत्य के प्रति आंखें खोलने से पहले विध्वंस को आना ही होगा? इसलिये मैं सबसे प्रयास की मांग करती हूं ताकि उसे न आना पड़े। केवल सत्य ही हमारी रक्षा कर सकता है, वचन में सत्य, क्रिया में सत्य, इच्छा में सत्य और भावनाओं में सत्य। सत्य की सेवा करने और नष्ट हो जाने के बीच चुनाव है।

१७. जो मिथ्यात्व से पिंड छुड़ाने के लिये उत्सुक हैं उनके लिये यह रहा एक उपाय : अपने-आपको खुश करने की कोशिश न करो, औरों को खुश करने की कोशिश न करो, केवल भगवान् को खुश करने की कोशिश करो।

क्योंकि केवल वे ही सत्य हैं, हममें से हर एक, सभी मनुष्य, भगवान् पर पड़ा हुआ मिथ्यात्व का लबादा है जो उन्हें छिपाता है।

चूंकि वे ही अपने प्रति सच हैं इसलिये हमें मिथ्यात्व के लबादों पर नहीं केवल उन्हीं पर एकाग्र होना चाहिये।

१८. मिथ्यात्व का केवल एक ही समाधान है : हमारी चेतना के अंदर जो कुछ भगवान् की उपस्थिति का विरोध करे उससे अपने-आपको मुक्त कर लो।

१९. हम अपने मिथ्यात्व को भगवान् के अर्पण कर दें ताकि वे उसे आह्लाद भरे सत्य में बदल दें।

२०. सत्य मन के ऊपर है, सत्य रैखिक नहीं, सार्वभौम है, वह उत्तरोत्तर नहीं युगपत् है इसलिये उसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता, उसे जीना होता है।

२१. सत्य के निकट आने के लिये तुम्हें बहुधा न समझना स्वीकार करना होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२२. जब मैं ठीक होता हूं तो कोई याद नहीं रखता, जब मैं गलत होता हूं तो कोई भूलता नहीं, क्योंकि कोई सच्चा ठीक और गलत नहीं है—एकमात्र सत्य है भगवान् और वे सब कुछ याद रखते हैं।

२३. सत्य न तो अलगाव में है न एक-रूपता में। सत्य है भिन्नता द्वारा अभिव्यक्त होनेवाली एकता में।

२४. बौद्धिक रूप से सत्य वह बिन्दु है जहां सभी विरोध मिल जाते और एकता बनाने के लिये जुड़ जाते हैं। व्यावहारिक रूप में सत्य है अहंकार का समर्पण ताकि भगवान् के जन्म और अभिव्यक्ति को संभव बनाया जा सके।

संदेह वह सबसे अच्छा हथियार है जिसका उपयोग अहंकार अपने-आपको विलोपन से बचाने के लिये करता है।

ये मार्ग पर ऐसी टिप्पणियां हैं जो तुम्हें कुछ आगे ले जा सकती हैं।

२५. सत्य मन के ऊपर है, नीरवता में ही तुम उसके साथ संपर्क साध सकते हो।

२६. भगवान् से प्रार्थना करना और अपने-आपको पूरी सचाई के साथ पूरी तरह समर्पित कर देना, आवश्यक प्रारंभिक शर्तें हैं।

२७. जो सचाई के साथ सत्य की सेवा करना चाहेगा वह सत्य को जान लेगा।

२८. अज्ञान में मानसिक मत हमेशा एक-दूसरे का विरोध करते हैं। सत्य में वे उच्चतर-ज्ञान के पूरक पक्ष हैं।

२९. सभी मतों में कुछ सत्य होते हैं और कुछ मिथ्या। वस्तुतः अपना मिजाज गरम किये बिना औरों के मत को सुन सकना बहुत बड़ी और उपयोगी चीज है।

३०. हमेशा सच बोलना उदात्तता की उच्चतम पदवी है।

३१. सत्य की एक बूंद मिथ्या सूचनाओं के सागर की अपेक्षा ज्यादा मूल्यवान् है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महान् रहस्य

[श्रीमाताजी ने एक छोटा-सा नाटक तैयार किया था जिसमें सात पात्र हैं—राजनीतिज्ञ, लेखक, वैज्ञानिक, कलाकार, उद्योगपति और एक व्यायामी। सभी अपने-अपने क्षेत्र में मूर्धन्य हैं। वे एक नौका में जा रहे हैं, रसद खतम हो गयी है और मृत्यु लगभग निश्चित है। ऐसे समय हर एक अपना-अपना हृदय खोलकर रख देता है। हर एक पूरी सफलता पाने के बाद भी निराश है। ऐसे समय एक सातवां अज्ञात व्यक्ति जो बैठा इनकी बातें सुन रहा था, इनकी कुण्ठा और निराशा का भेद बताता है और उन्हें आगे का रास्ता दिखाता है।

इसमें लेखक, वैज्ञानिक, उद्योगपति, और व्यायामी के वक्तव्य क्रमशः नलिनी, पवित्र, आंद्रे और प्रणव के लिखे हुए हैं। बाकी श्रीमाताजी के हैं।]

—संपादक

राजनीतिज्ञ—आप लोगों की इच्छा है तो लीजिये, मैं ही सबसे पहले बताता हूं कि मेरा जीवन कैसा रहा है।

मैं एक राजनीतिज्ञ का बेटा था और बचपन से ही सरकारी बातों और राजनीतिक समस्याओं से परिचित था। मेरे माता-पिता अपने मित्रों को जब दावत दिया करते थे तो इन बातों पर अच्छी तरह बहस हुआ करती थी। मैं भी बारह वर्ष की आयु से वहां उपस्थित रहा करता था। विभिन्न राजनीतिक दलों के मत मुझसे छिपे न थे और मैं अपने छोटे-से उत्साहपूर्ण मस्तिष्क में प्रत्येक कठिनाई का हल पा लेता था।

स्वभावतः मेरी पढ़ाई-लिखाई भी इसी दिशा में चली और मैं राजनीति-विज्ञान का एक प्रतिभाशाली छात्र बन गया।

फिर जब सिद्धांतों को क्रिया में लाने की बात आयी तब मुझे पहली गंभीर कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। तब मुझे मालूम हुआ कि अपने विचारों को क्रियान्वित करना लगभग असंभव-सा है। मुझे समझौते करने पड़े और धीरे-धीरे मेरा महान् लक्ष्य मुरझा गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने जाना कि सफलता सचमुच व्यक्तिगत मूल्यांकन नहीं है। सफलता अपने-आपको परिस्थितियों के अनुसार ढाल लेने और दूसरों को खुश करने की क्षमता का नाम है। इसके लिये हमें दूसरों की त्रुटियों को ठीक करने की जगह उनकी कमजोरियों की लल्लो-चप्पो करनी पड़ती है।

आप सभी जानते होंगे कि मेरा उज्ज्वल जीवन कैसा रहा है। उस बारे में स्वयं मुझे कुछ कहने की जरूरत नहीं। लेकिन, हां, मैं इतना तो कहना ही चाहूंगा कि जैसे ही मैं प्रधानमंत्री बना और मेरे हाथ में सचमुच कुछ शक्ति आयी वैसे ही मैंने अपनी जवानी के पुरुषार्थ के स्वप्नों को याद किया और उन्हें चरितार्थ करने की कोशिश की।

मैंने चाहा कि मैं दलबन्दी में न पड़ूं। संसार में राजनीतिक और सामाजिक प्रवृत्तियों, हलचलों में जो विग्रह मचा हुआ है जो सारे संसार को तोड़ने में लगा है, जिनमें से प्रत्येक के अंदर कुछ अच्छाइयां और कुछ बुराइयां हैं, इन सब में से मैंने एक हल निकालना चाहा। इनमें से कोई भी पूरा-पूरा अच्छा या पूरा-पूरा बुरा नहीं है। इनकी अच्छाइयों को चुनकर एक क्रियात्मक और सामंजस्यपूर्ण हल निकालना जरूरी है। मैं ऐसे समन्वय का कोई सूत्र न पा सका जो परस्पर विरोधी तत्त्वों में एकता ला सके। उसे क्रियात्मक रूप देना तो और भी असंभव था।

मैं राष्ट्रों में शांति, एकता और सौहार्द चाहता था, मैं सबके भले के लिये सहयोग चाहता था पर मुझसे बड़ी शक्ति ने मुझे युद्ध करने पर, अविवेकी तरीकों और अनुदार नियमों द्वारा विजय प्राप्त करने पर बाधित कर दिया।

लेकिन मुझे एक बड़ा नीतिकुशल नेता माना जाता है। मेरे ऊपर आदर, सम्मान और प्रशंसा की बौछार की जाती है और मुझे मानवजाति का मित्र माना जाता है।

लेकिन मैं अपनी कमजोरी जानता हूं। मैंने उस सच्चे ज्ञान और सच्ची शक्ति को खो दिया है जो मेरे बचपन की आशाओं को सफलता का मुकुट पहना सकतीं।

अब अंत नजदीक है। मुझे लगता है कि मैंने बहुत ही थोड़ा किया है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और जो किया है वह भी बुरी तरह। मैं मृत्यु के द्वार पर टूटे सपनों का विषाद लेकर पहुंचूंगा।

लेखक—इस मर्त्यलोक में स्पन्दन करते हुए सत्य और सौन्दर्य को मैंने पंखदार शब्दों से पकड़ना चाहा। हमारी आंखों के सामने जो सृष्टि का सौन्दर्य-विस्तार फैला हुआ है, यह चराचर जगत्, ये दृश्य और घटनाएं, और इसी तरह फैला हुआ हमारी अनुभूतियों, चिन्ताओं और संवेदनों का जगत् हमारी चेतना में एक रहस्यमय मायाजाल बना देता है, मानों मयदानव की बनायी भूल-भुलैया हो। वह सृष्टि मेरे ऊपर सम्मोहन-जाल फेंकती है, उसकी वाणी में किन्नरियों की बांसुरी से भी ज्यादा मधुरता है। वह मुझे बुला रही है अपने-आपको जानने, पहचानने और मूर्त रूप देने के लिये। मैंने अपने शब्दों को वही ध्वनि देनी चाही।

मैंने वस्तुओं के मर्म को वाणी देना चाहा, मैंने चाहा कि काल-पुरुष के रहस्यों का उद्‌घाटन करूं। जो कुछ छिपा हुआ है, जो अज्ञात है, जो अपने सुदूर रहस्यमय आवास से सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र और मानव-हृदय का परिचालन करता है, मैंने उसे खोलकर दिव्यलोक में लाकर रखना चाहा। पार्थिव और अपार्थिव वस्तुओं के आयास-प्रयास मूक कठपुतलियों के अस्तव्यस्त नाटक जैसे हैं। मैंने उन्हें वाचा और चेतना दी। मेरी दृष्टि में शब्द एक अनुपम यंत्र हैं, उनसे बढ़कर परिवाहक यंत्र कोई नहीं। शब्दों की गढ़न्त कुछ ऐसी है कि वे वस्तु को मूर्त रूप भी दे सकते हैं और प्रकाश में भी ला सकते हैं। वे तरल होते हुए भी अस्पष्ट नहीं हैं, ठोस होते हुए भी अपारदर्शक नहीं हैं। शब्द एक समय दो सृष्टियों के साथ संबंध रखता है। वह पार्थिव जगत् का है इसलिये स्थूल आकार दे सकता है, और सूक्ष्म जगत् का होने के नाते अत्यन्त सूक्ष्म वस्तुओं, शक्ति, स्पन्दन, नियम और विचारों के साथ संबंध रखता है, अशरीरी को शरीर दे सकता है और इनसे बढ़कर वह वस्तुओं के सच्चे अर्थ को, रूप के पिंजरे में बंद भाव को मुक्त करता है।

मैंने अपने गीतिकाव्यों में मनुष्य और प्रकृति के हृदय की व्याकुलता, उनके क्रन्दन और उनके अश्रुओं के रहस्य को खोलना चाहा। कथा-कहानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के विशालतर पट पर मैंने जीवन के विविध भावों और आशाओं का चित्रण किया, उसके उत्तुंग ज्ञान-शिखर और उसकी साधारण दैनिक मूढ़ता को आंका। जो घटनाएं मनुष्य और प्रकृति के इतिहास को घड़ती हैं मैंने उनमें प्राण का स्पंदन पैदा किया और उन्हें एक वास्तविकता प्रदान की। मैंने जीवन के हास्य और रुदन को नाटक का रूप दिया। मुझे यह बताने की जरूरत नहीं है कि उस प्राचीन रूप को, नवीन आवश्यकताओं और मांगों को भली-भांति पूरा करते हुए देखकर आप लोगों को कितना आनंद हुआ था। मैंने जीवित शक्तियों के पात्रों को कभी न भुलाये जा सकनेवाले व्यक्तित्व के सांचे में ढाला। शायद उपन्यास इस युग की वैज्ञानिक शोधवृत्ति के अधिक अनुकूल है क्योंकि इसमें चित्र और व्याख्या दोनों हैं। मैंने व्यष्टि और समष्टि के जीवन का इतिहास दिया, और उसके साथ ही संपूर्ण मानवजाति के इतिहास की कभी गोल, कभी कुंडलियों जैसी और कभी चढ़ती हुई गति के कुछ अंश को देना चाहा। लेकिन मैंने जाना और अनुभव किया कि मनुष्य की अंतरात्मा के लिये केवल परिधि का विस्तार और बाह्य प्रसार काफी नहीं है। वह ऊंची उड़ान चाहती है और ऊर्ध्वतम शैली की मांग करती है। यह सोचकर मैंने महाकाव्य रचा जिसमें सारे जीवन का परिश्रम लग गया। आपमें से बहुत से उसके मर्म को न समझ पाये, बहुत-से उससे अभिभूत हो गये। फिर भी प्रायः सभीने उसके जादुई स्पंदन का अनुभव किया। रहस्यों का पर्दा चाक करने के लिये मैंने जी-जान से अंतिम प्रयास किया।

मैंने अपने विषय और भाषा को कैसे चित्र-विचित्र रूप दिये! एक निपुण वैज्ञानिक की नाईं मैंने शब्दों के साथ खेल किया, मैं उन्हें उलट-पुलटकर, उनमें हेर-फेर करके उनका रूपांतर करना जानता था और जानता था उनमें नवीन अर्थ, नवीन स्वर और नवीन व्यंजना लाना। मेरे लिये सिसरो की तरंग, मिलटन की उच्च गंभीरता, रासीन की मधुर सुकुमारता, वर्ड्सवर्थ की सर्वोत्तम काव्य की सरलता या शेक्सपीयर का जादू अनुपलब्ध न था। वाल्मीकि की उत्तुंग महिमा या व्यास का प्रगाढ़ महत्त्व मेरे लिये अगम्य शिखर न थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर भी मैंने जो चाहा था वह न पा सका। मुझे संतोष न हो पाया। मैं अतृप्त रह गया क्योंकि सचमुच मैंने जो कुछ किया है वह एक स्वप्न से बढ़कर नहीं है, मानों हवा में स्वप्न बिखेरे हों। आज मुझे लगता है कि मैंने वस्तुओं के सत्य को छुआतक नहीं है, उनकी सौंदर्य-आत्मा की हवातक नहीं पा सका। मैं ऊपर-ही-ऊपर एक खरोंच-सी कर पाया हूं। मैं प्रकृति के बाह्य आवरण का स्पर्श भर कर पाया हूं। उसकी अपनी सत्ता मुझसे दूर ही रही है। बाहर से देखने में चाहे कितना भी मनोहर और सच्चा क्यों न लगे पर मैं सृष्टि के अंग-प्रत्यंग पर एक मकड़ी का जाल ही तो रच पाया हूं। जिन उपायों और उपकरणों को मैंने एक बार निष्कलंक और पूर्ण माना था, मेरी धारणा थी कि वे सर्वग्राही, सर्वप्रकाश-समर्थ हैं, वही साधन अपनी अक्षमता के कारण मुझे हताश कर रहे हैं। अब मुझे लगता है कि एक महान् नीरवता, एकांत मौन ही वस्तुओं के हार्द के अधिक नजदीक है। इसी चिंतनप्रवाह में, इस अनंत चपलता के बीच में अपनी असहाय भुजाएं उठाकर फास्टस की तरह चिल्ला उठता हूं—ओ असीम प्रकृति रानी! मैं तुम्हें कहां पा सकूंगा? एक और महाकवि की तुलना उस असमर्थ देवदूत से की गयी थी जो शून्य में अपने चमकदार सुनहरे पंखों को फड़फड़ा रहा हो। सारी मानवजाति इससे बढ़कर और कुछ नहीं है।

आज अपने जीवन की संध्या में एक बच्चे के अज्ञान के साथ मैं पूछता हूं कि इस सबका मतलब क्या है? हम किस देवता के आगे सिर झुकायें और किसे अपनी हवि दें *कस्मै देवाय हविषा विधेम*। शेकीना[1] की अंतर्दृष्टि क्या है? हम किसलिये जियें और किसलिये मरें? पृथ्वी पर इस उड़ते हुए आविर्भाव का अर्थ क्या है? इस सारे प्रयास और संघर्ष का, इतने कष्टों और इतनी सफलताओं के मुकाबिले में इतनी वेदना का क्या मूल्य है? ऐसी ज्वलंत आशाओं और विजयी उत्साह का क्या अर्थ जो अज्ञान और अचेतना की ऐसी खाई में ले जायें जिसे कोई पाट न सके? और इस सबकी अनिवार्य समाप्ति—विलय और विनाश जो आविर्भाव से भी अधिक रहस्यमय है—देखकर लगता है मानों सारा ही एक अविश्वसनीय, वीभत्स और व्यर्थ का मजाक हो।

[1] कृपा की मुद्रा में ईश्वर (इबरानी भाषा)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैज्ञानिक—आप लोगों में से कइयों की तरह मैंने अपना जीवन मानवजाति की अवस्था सुधारने के उद्देश्य से नहीं शुरू किया था। मेरे लिये कर्म नहीं, ज्ञान ही मुख्य आकर्षण था और ज्ञान का भी आधुनिक रूप—भौतिक विज्ञान। मुझे लगता था कि प्रकृति के रहस्यों को छिपानेवाले पर्दे के एक कोने को उठाकर वहां छिपे सोतों को जरा अधिक जान लेने से बढ़कर अद्‌भुत और हो ही क्या सकता है? मैंने शायद अनजाने ही प्रचलित धारणा के अनुसार यह मान लिया था कि ज्ञान की बुद्धि के परिणामस्वरूप शक्ति अवश्य बढ़ेगी और प्रकृति पर हर नयी विजय आज न सही कल, मनुष्य की अवस्था को जरूर सुधारेगी, उसकी नैतिक और भौतिक स्थिति में उन्नति लायेगी। उन विचारकों की न्याईं जिनकी जड़ें भौतिक विज्ञान की प्रतिष्ठा करनेवाली गत शताब्दी में हैं—मेरी दृष्टि में भी अज्ञान, एकमात्र नहीं तो मुख्य पाप तो अवश्य था। यही मानव के पूर्णता की ओर अभियान में बाधा देता था। हम बिना ननुनच के मनुष्य की असीम परिपूर्णता को मान बैठे थे। हम मानते थे कि धीमी हो या तेज पर प्रगति है अवश्यंभावी, हमें विश्वास था कि जब इतनी दूरतक आ चुके हैं तो आगे भी जाया जा सकता है। हमारे लिये ज्यादा जानने का अर्थ था अधिक समझना, अधिक बुद्धिमान् और न्यायसंगत होना—एक शब्द में कहें तो उन्नति करना।

हमने इस धारणा को भी स्वतःसिद्ध मान लिया कि विश्व जैसा है उसे वस्तुपरक रूप में वैसा जानना और उसके नियमों पर अधिकार कर लेना संभव है। यह बात इतनी स्पष्ट थी कि हमें उसके बारे में जरा भी शंकातक न हुई। विश्व और मैं—हम दोनों का अस्तित्व है और एक का काम है दूसरे को समझना। मैं विश्व का एक अंग जरूर हूं पर उसे समझने की प्रक्रिया में उससे दूर खड़ा होकर वस्तुपरक रूप से देखता हूं। मैं स्वीकार करता हूं कि मैं जिन्हें प्रकृति के नियम कहता हूं उनकी अपनी पृथक् सत्ता है जो मेरे या मेरे मन के ऊपर निर्भर नहीं है; वे सभी विचारवान् लोगों के लिये एक ही हैं।

मैंने विशुद्ध ज्ञान के इस आदर्श से प्रेरित होकर अपना काम शुरू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया। मैंने भौतिक विज्ञान और उसमें भी विशेषकर अणु और तेजष्क्रियता (रेडियो ऐक्टिविटी) के क्षेत्र को चुना जिसमें बेकरेल और क्यूरीने पहले से ही राजमार्ग बना रखा था। यह वह समय था जब प्राकृतिक तेजष्क्रियता का स्थान कृत्रिम तेजष्क्रियता ने ले रखा था, जब कीमियागरों के स्वप्न सच्चे हो रहे थे। मैंने उन बड़े वैज्ञानिकों के साथ काम किया जिन्होंने यूरेनियम विस्फोट की खोज की। मैंने अणुबम के जन्म को भी देखा। ये कठोर, अविच्छिन्न और एकनिष्ठ परिश्रम के वर्ष थे। उन्हीं दिनों मुझे वह पहली प्रेरणा मिली जिसके कारण मैंने अणु-केंद्रिक ऊर्जा या न्यूक्लियर ऊर्जा से सीधी-सीधी बिजली प्राप्त करने को संभव बनाया। आप जानते ही हैं कि इस खोज ने सारी दुनिया की आर्थिक स्थिति में एक मौलिक परिवर्तन ला दिया क्योंकि इसके कारण ऊर्जा सर्वसुलभ हो गयी। अगर यह खोज सनसनीपूर्ण थी तो उसका मुख्य कारण यह था कि इसने मनुष्य को श्रम के अभिशाप से मुक्त कर दिया; अब वह रोटी कमाने के लिये एड़ी-चोटी का जोर लगाने के लिये विवश न रहा।

इस भांति मैंने अपने यौवन के स्वप्न को सिद्ध किया—एक महान् खोज की। साथ ही मैंने मनुष्यजाति के लिये उसका महत्त्व भी समझा। बिना विशेष प्रयास के मैं मनुष्यजाति के लिये एक वरदान ले आया था।

मुझे पूर्णतया संतुष्ट होने का अधिकार था, पर कुछ समय के लिये ही। अब हम मृत्यु के द्वार पर खड़े हैं और यह रहस्य हमारे साथ ही विलीन हो जायेगा। इसलिये मैं कह सकता हूं कि मैंने न केवल यूरेनियम, थोरियम, आदि दुर्लभ धातुओं से अपितु तांबा, एल्युमिनियम आदि से भी अणु-शक्ति को मुक्त करने का तरीका खोज निकाला। लेकिन फिर मेरे सामने एक जटिल समस्या आ खड़ी हुई जिसके भार ने मुझे लगभग ढेर कर दिया। क्या अपनी खोज को प्रकट कर दूं? मेरे सिवा इस रहस्य को अभीतक और कोई नहीं जानता।

आप सब अणुबम की कहानी जानते ही हैं। आप यह भी जानते हैं कि उसके बाद उससे भी भयंकर एक अस्त्र की खोज हुई—वह था उद्जन बम। मेरी तरह आप जानते हैं कि मानवता इन खोजों के भार से लड़खड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रही है। इन खोजों ने मनुष्य के हाथ में संहार की कल्पनातीत शक्ति पकड़ा दी है। अगर मैं अपनी इन खोजों को प्रकाशित कर दूं, उनके रहस्यों को खोल दूं तो एक विकट संहार की आसुरी शक्ति जिस किसी के हाथ लग सकती है। इसपर सरकारों का कोई अधिकार या नियंत्रण न रहेगा। यूरेनियम और थोरियम को सरकारें आसानी से अपने हाथ में रख सकती थीं क्योंकि वे दुष्प्राप्य थीं और उससे भी बढ़कर इसलिये कि उन्हें परमाणु राशिक के काममें लगाना बहुत कठिन था। आप कल्पना कर सकते हैं कि वह स्थिति कितनी भयंकर होगी जब हर पागल, हत्यारा या मतांध व्यक्ति अपनी कामचलाऊ प्रयोगशाला में ऐसे अस्त्र बना सके जिनसे पैरिस, लंदन या न्यूयार्क को उड़ाया जा सके ? क्या यह मानवजाति के लिये एक घातक प्रहार न होगा ? मैं खुद अपनी खोज के भार से चकरा रहा हूं। मैं बहुत देरतक हिचकिचाता रहा हूं और अभीतक किसी ऐसे निश्चय पर नहीं पहुंच पाया जो मेरे दिल और दिमाग दोनों को संतुष्ट कर सके।

इस भांति अपनी जवानी में जिस पहले सूत्र को लेकर मैं प्रकृति के रहस्यों की खोज करने चला था वह टुकड़े-टुकड़े हो गया। अगर ज्ञान की हर वृद्धि अधिक शक्ति लाती हो तब भी यह नहीं कहा जा सकता कि उससे मानव-कल्याण भी होता है। वैज्ञानिक प्रगति का यह अर्थ है कि उसके साथ ही नैतिक प्रगति भी हो। वैज्ञानिक और बौद्धिक ज्ञान मानव-प्रकृति को बदलने में असमर्थ हैं फिर भी इनकी आवश्यकता अनिवार्य हो उठी है। मानव की लोलुपता और मनोवेग आज भी प्रायः वैसे ही हैं जैसे अश्मकाल में थे। यदि भविष्य में भी वे ऐसे ही बने रहे तो मानव का सर्वनाश निश्चित ही है। अब हम ऐसी अवस्थातक पहुंच चुके हैं कि यदि शीघ्र ही आमूल नैतिक रूपांतर न हो तो मानवजाति अपने ही हाथों इस नयी शक्ति से अपना विनाश कर लेगी।

अच्छा, अब देखें मेरे यौवन की दूसरी स्वतःसिद्ध धारणा का क्या हुआ। क्या मैं कम-से-कम विशुद्ध ज्ञान का आनंद पा सका, क्या मैं निश्चित रूप से प्रकृति की रचना के छिपे तलों को थोड़ा-बहुत भी पकड़ पाया ? क्या मैं यह आशा कर पाया कि प्रकृति को संचालित करनेवाले कुछ नियमों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानने का आनंद ले सकूंगा? खेद की बात तो यह है कि यहां भी मेरे आदर्श ने मुझे निराश कर दिया।... हम वैज्ञानिकों ने कबसे यह विचार छोड़ रखा है कि हर परिकल्पना या सिद्धांत को पूरा-पूरा सत्य या असत्य होना ही चाहिये। हम अब यही कहते हैं कि यह सुविधाजनक है, यह तथ्यों के साथ मेल खाता है और एक कामचलाऊ व्याख्या देता है। मगर यह जानना कि यह सच है या नहीं, अर्थात् वास्तविकता के साथ मेल खाता है या नहीं—यह तो एक और किस्सा है। शायद यह प्रश्न ही निरर्थक है। शायद और सिद्धांत भी हैं, और शायद ही क्यों, अवश्य ऐसे सिद्धांत भी हैं जो इन्हीं तथ्यों को इतनी ही अच्छी तरह स्पष्ट कर सकते हैं, इसलिये वे भी इतने ही न्यायसंगत हैं। आखिर ये सारे सिद्धांत हैं क्या? वे बिंबमात्र ही तो हैं। वे उपयोगी अवश्य हैं क्योंकि उनके द्वारा हम भविष्य की अनेक चीजों को देख सकते हैं। वे यह तो दिखाते हैं कि घटनाएं कैसे घटती हैं पर उनके अस्तित्व के क्यों और कैसे का उत्तर नहीं दे पाते। वे हमें वास्तविकता की ओर नहीं ले जाते। हमें सारे समय यही लगता है कि हम सत्य और वास्तविकता के चारों ओर चक्कर काट रहे हैं, उन्हें भिन्न-भिन्न कोणों से देखते हैं, उनपर भिन्न-भिन्न दिशाओं से नजर डालते हैं पर उसे खोजने में या पकड़ पाने में हमें कभी सफलता नहीं मिलती। वह अपने-आप भी पर्दा हटाकर अपने-आपको प्रकट नहीं करता।

और फिर हम जो कुछ माप-तोल करते हैं, जिससे हम आशा करते हैं कि वह इस स्थूल जगत् के बारे में कुछ बतायेगा उसमें भी मानव-सहायता की जरूरत होती है। और इस माप-जोख की क्रिया से ही हम कुछ-न-कुछ हलचल पैदा कर देते हैं। और यह हलचल जगत् के बाह्य रूप में कुछ तो हेरफेर कर ही देती है। तो इस माप-तौल से मिलनेवाला ज्ञान भी पूरी तरह निस्संदिग्ध नहीं है। इस सब हिसाब-किताब से हम संसार का जो चित्र बनाते हैं वह संभव तो होता है पर सुनिश्चित नहीं। हम भौतिक जगत् के जिस स्तर पर रहते हैं वहां यह अनिश्चितता नगण्य-सी होती है पर इससे अत्यंत सूक्ष्म अणु-परमाणु के जगत् के लिये यही बात नहीं कही जा सकती। यहांपर एक मौलिक अक्षमता है, एक ऐसी बाधा है जिसे पार करने की आशातक नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की जा सकती। इसका कारण हमारी अनुसंधान-पद्धति की त्रुटि नहीं है, चीजों की अपनी प्रकृति ही ऐसी है। हम जिन रंगीन चश्मों से सृष्टि को देखते हैं उन्हें उतार फेंकना असंभव है। मेरे सारे हिसाब में, मेरी परिकल्पनाओं और सिद्धांतों में मेरा अहं छिपा हुआ है। वे सिद्धांत जितने परिमाण में जगत् को पकड़ पाते हैं उतने ही परिमाण में मुझे और मेरे मन को भी लिये रहते हैं। वे जितने वस्तुपरक हैं उतने ही आत्मपरक। और उनका अस्तित्व शायद मेरे मन में ही है।

असीम के तट पर मैंने एक पदचिह्न देखा। बालू पर निशान देखकर मैंने उसकी मूर्ति गढ़नी चाही जिसने यह पदचिह्न छोड़ा था। मुझे आखिर सफलता तो मिली लेकिन मैंने देखा, वह व्यक्ति स्वयं मैं था। तो आज मेरी यह अवस्था है, हम सबकी अवस्था यही है। मुझे कोई मार्ग नहीं दीखता . . .।

लेकिन शायद इस बात से कुछ आशा बंधती है कि मैंने विश्व के बारे में असंख्य संभावनाएं देखीं हैं पर कोई निश्चित ज्ञान नहीं पाया—शायद इसीमें यह आशा छिपी है कि मनुष्य का भविष्य सदा के लिये अवरुद्ध नहीं है।

कलाकार—मेरा जन्म एक संभ्रांत मध्यवर्गीय कुटुम्ब में हुआ था। मेरे घरवाले कला को आजीविका नहीं, मन-बहलाव की चीज मानते थे। उनके मतानुसार कलाकार बड़े हल्के, अनैतिक और धन के प्रति उदासीन होते हैं—और उनकी दृष्टि में यह बड़ी खतरनाक चीज थी। शायद विरोध की भावना से प्रेरित होकर मैंने चित्रकला को ही अपने जीवन का आदर्श बना लिया। मेरी सारी चेतना दो आंखों में केंद्रित थी और मैं शब्दों की अपेक्षा रंग और रेखाओं द्वारा अपने-आपको ज्यादा अच्छी तरह व्यक्त कर सकता था। मैंने पुस्तकें पढ़कर सीखने की अपेक्षा चित्र देखकर अधिक सीखा। एक बार देखे हुए प्राकृतिक दृश्य, मानव-आकृति या रेखांकित चित्रों को मैं कभी न भूलता था।

मैंने कठोर परिश्रम द्वारा तेरह वर्ष की आयु में ही रेखांकन, जल-रंग, पेस्टल और तैलचित्र की तकनीक अच्छी तरह सीख ली थी। अपने माता-पिता के मित्रों और परिचितों के लिये छोटे-मोटे काम करके कुछ कमाने का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवसर मिल गया। और पैसा आते ही मेरे परिवार ने मेरे काम को गंभीरता से लेना शुरू कर दिया। इससे लाभ उठाकर मैंने और गहरा अध्ययन शुरू किया। ठीक आयु होने पर मैं ललितकला-शाला में भरती हो गया और शीघ्र ही मुझे रोम पुरस्कार प्रतियोगिता में भाग लेने का अवसर मिला। वहां मैंने प्रथम पुरस्कार पाया। यह पुरस्कार पानेवाले सबसे छोटी आयुवालों में मैं भी एक था। यह इटालियन कला का गहरा अध्ययन करने के लिये एक अच्छा अवसर था। कुछ समय बाद छात्रवृत्ति पाकर मैंने स्पेन, बेलजियम, हालैंड, इंग्लैंड आदि देशों का भ्रमण किया। मैं एक ही शैली या एक ही युग का कलाकार न बनना चाहता था। मैंने पूर्व और पश्चिम के सभी देशों की सब प्रकार की कला का अध्ययन किया।

इधर मेरा अपना काम भी जारी था। मैं एक नये कला-सूत्र के संधान में लगा था। इसमें महान् सफलता मिली, यश मिला और ख्याति मिली। चित्र-प्रदर्शनियों में प्रथम पुरस्कार मिले, चित्रों की परीक्षा करनेवाली ज्यूरी में स्थान मिला। मेरे चित्र सारे संसार के बड़े-बड़े संग्रहालयों में स्थान पाने लगे, और मेरी चीजों के लिये चित्रविक्रेता पागल हो उठे। चारों ओर से सौभाग्य, उपाधि, सम्मान की वर्षा होने लगी, लोग मुझे प्रतिभाशाली कहने लगे। पर मैं संतुष्ट नहीं हूं। प्रतिभा की मेरी कल्पना कुछ और ही है। प्रतिभाशाली को एक नये ही आधार पर, एक नये उच्चतर, अधिक शुद्ध, अधिक सत्य और अधिक महान् सौंदर्य को नये साधन, नवीन पथ, और पद्धति से अभिव्यक्त करना होगा। जबतक मैं मानव पशुत्व का बंदी हूं, तबतक जड़ प्रकृति के रूप से पूरी तरह छुटकारा पाना संभव नहीं। उसके लिये अभीप्सा तो रही है पर ज्ञान और दृष्टि का अभाव था।

आज जब हम सब मरने लगे हैं तो मुझे लग रहा है कि मैं जैसा सृजन करना चाहता था, न कर पाया। मैं जिस चीज को आंकना चाहता था न आंक पाया। मुझे लगता है कि यश-ख्याति आदि के ढेर के होते हुए भी मैं असफल ही रहा।

उद्योगपति—यहां हम सब ही अपने हृदय खोल रहे हैं, और मैं जो कहूंगा उसका उपयोग मेरे प्रतिरूप, या मेरी सफलता या यूं कहिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथाकथित सफलता से जलनेवाले न कर पायेंगे इसलिये मैं आपको अपनी दृष्टि से अपनी कहानी सुनाता हूं—ठीक वैसी जैसे मैं उसे देखता हूं, वैसे नहीं जैसे अन्य लोग उसका बखान करते हैं।

घटनाएं तो ठीक ही बतायी गयी हैं। मेरे पिता एक छोटे-से गांव में लोहार थे। मैंने उनसे पितृदाय में धातुओं के काम में रस लेना सीखा। उन्होंने मुझे अच्छी तरह किये गये काम में मजा लेना सिखाया, और सिखाया हाथ में लिये हुए काम में अपने-आपको भुला देना। मैंने अपने काम का अतिक्रमण करना और प्रगति करना तथा दूसरों से भी ज्यादा अच्छा करना उनसे ही सीखा। मुनाफा ही उनका मुख्य उद्देश्य न था। फिर भी उन्हें अपने व्यवसाय में सर्वोपरि होने का गर्व जरूर था। वे प्रशंसा सुनकर खिल उठते थे।

इस शताब्दी के आरंभ में जब अंतर्दहन द्वारा चलनेवाला इंजन आया तो उसकी शक्यताओं को देखकर हम छोटे लड़के पागल हो उठे। बिना घोड़े की गाड़ी को—जिसे आज मोटरकार कहते हैं—बनाने के लिये हमें असंख्य प्रयास करने पड़े। सच तो यह है कि उन दिनों जो इने-गिने नमूने बने थे वे भी पूर्णता से बहुत दूर थे।

मैंने कुछ कल-पुरजे इकट्ठे किये और उस भानुमती के पिटारे से मैंने जो पहली मोटर तैयार की उसने जीवन में मुझे सबसे अधिक प्रसन्नता दी। डगमगाती असुविधाजनक सीट पर बैठकर मैंने अपनी गाड़ी को पिताजी के कारखाने से नगरपालिका तक कुल सौ गज चलाया। यह लड़खड़ाता, हांफता-कांपता, अजीबो-गरीब यंत्र राहगीरों को डराता था, और उसे देखकर कुत्ते भौंकते और घोड़े बिदकते थे। फिर भी मेरी दृष्टि में इस यंत्र से बढ़कर सुंदर कोई चीज न थी।

मैं इसके तुरंत बाद की, उन लोगों के द्वेष की बात नहीं कहता जो कहते थे कि भगवान् ने घोड़े को गाड़ी खींचने के लिये बनाया है, रेल बनाकर काफी भ्रष्टाचार फैलाया जा चुका है, अब इस पैशाचिक यंत्र को सड़कों और शहरों में भीड़ बढ़ाने के लिये लाने की जरूरत नहीं। ऐसे लोगों की संख्या बहुत अधिक थी जो कहते थे कि इन तुनकमिजाज मशीनों के लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिन्हें सिर्फ विशेषज्ञ या सनकी ही संभाल सकते हैं, कोई भविष्य नहीं। कुछ ऐसे साहसी भी निकल आये जिन्होंने इस्पात खरीदने और दो-एक कारीगर रखने लायक पैसे उधार दे दिये। इन लोगों में वैसी ही अंध श्रद्धा थी जैसी पिछली शताब्दी में अमरीका के सोने की खोज में भागते हुए सनकियों में, जो वीरान और सब तरह प्रतिकूल प्रदेश में मृगतृष्णा-सी समृद्धि के पीछे भागते थे।

मैं पैसे के पीछे दीवाना नहीं था। अभी-अभी बनी मोटरों से ज्यादा सस्ती और ज्यादा सुविधाजनक मोटर बना सकने का संतोष ही मेरे लिये पर्याप्त था। मुझे कुछ ऐसा लगता था कि यातायात का यह साधन अधिक सस्ता रहेगा क्योंकि उसकी चालक शक्ति को बैठकर नहीं खिलाना होगा। उसमें तेल की तभी जरूरत होगी जब वह काम करे। इसका दाम कम रखा जा सके तो बहुत-से लोग जो घोड़े पालने के खर्च से सकुचाते हैं, इसे ले सकेंगे।

बड़े पैमाने पर गाड़ियां पैदा करने के लिये जिस नमूने का उपयोग हुआ था उसे आज भी याद किया जाता है। वह पहियों से बहुत ऊंचा था ताकि देहातों की ऊबड़-खाबड़ सड़कों पर चल सके। उसे खूब मजबूत बनाया गया था ताकि अक्खड़ किसान भी उसका उपयोग कर सकें। परंतु वे इसे अभीतक बड़े आदमियों के चोंचले ही मानते थे। इस गाड़ी को चलाना बहुत आसान था, उसमें कोई प्रयास न करना पड़ता था। इससे हमें विश्वास हो गया कि शीघ्र ही अच्छी मोटरों को चलाने के लिये भी विशेषज्ञों की जरूरत न होगी।

पहले महायुद्ध ने ही मोटर को घोड़े से आगे बढ़ने का पहला मौका दिया। रोगीवाहक गाड़ियों के लिये, हथियारों के यातायात के लिये और भारी-भारी चीजों के लिये मोटरों की जरूरत हुई। मेरे कारखाने में बहुत जोरों से काम होने लगा। सेना विभाग से बड़ी-बड़ी मांगें आने लगीं जिन्होंने मुझे अपने यंत्रों और संयोजन-विधियों को सुधारने और पूर्णता की ओर ले जाने का अवसर दिया।

युद्ध के बाद मेरे पास एक सुव्यवस्थित संस्था थी। लेकिन ऐसा लगता था कि नागरिक आवश्यकताओं की तुलना में यह बहुत ज्यादा भारी-भरकम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी। मेरे सहायक घबरा उठे। उन्होंने आग्रह किया कि मैं उत्पादन कम कर दूं और स्थिति सुधरनेतक प्रतीक्षा करूं। बेशक, यह बुद्धिमानी की बातें थीं। लेकिन मोटरों को सस्ता करने के लिये यह बड़ा अच्छा अवसर था। ऐसे अवसर बार-बार नहीं आया करते। उत्पादन कम करने का अर्थ होता लागत में वृद्धि, मैंने निश्चय किया कि हमें बिक्री को देखकर उत्पादन कम नहीं करना चाहिये बल्कि उत्पादन के अनुसार बिक्री को बढ़ाना चाहिये। छः महीने की धुंआधार इश्तहारबाजी ने मेरी बात को सत्य प्रमाणित कर दिया।

उसके बाद से मेरी कंपनी मानों अपने-आप आगे बढ़ती गयी। मुझे महत्वपूर्ण निर्णय लेने का भार अपने सहायकों पर छोड़ना पड़ा, मैं अपने-आप केवल सिद्धांत निरूपित करता था। मेरा सिद्धांत था कि अपनी चीजों का स्तर गिराये बिना और मजदूरों के वेतन कम किये बिना (मैं चाहता था कि मेरे कार्यकर्ता दुनिया में सबसे अधिक वेतन पानेवाले हों) हमें अपनी चीजें कम-से-कम खर्च पर तैयार करनी चाहियें और कम-से-कम दाम पर बेचनी चाहियें ताकि हमेशा नयी-नयी श्रेणी के ग्राहकोंतक पहुंचा जा सके। व्यापार की क्षति किये बिना मुनाफा कम करना था, विज्ञापन और प्रचार को इस तरह संगठित करना था कि उत्पादन के खर्च पर ज्यादा भार न पड़े। और अंत में यदि माल देनेवाले हमसे अतिरिक्त मुनाफा लें तो मुझे मशीनरी के भाग, तैयार या आधे तैयार हिस्से तथा कच्चा माल भी अपने-आप तैयार करने में न हिचकिचाना चाहिये।

मेरा व्यवसाय एक जीवित बढ़ते हुए प्राणी की तरह विकसित होने लगा। मैं जिस चीज में हाथ लगाता उसीमें सफलता मिलती। परिणामस्वरूप मैं पौराणिक गाथाओं के नायक जैसा एक छोटा-मोटा देवता बन गया जिसने एक नयी जीवनप्रणाली को जन्म दिया। मैं एक उदाहरण बन गया जिसका अनुसरण किया जाता था। मेरी किसी भी मामूली बात का, मेरे नगण्य से कामों का विश्लेषण किया जाता था और उनके बाल की खाल निकाली जाती थी और उन्हें एक वेद-वाक्य के रूप में जनता के सामने पेश किया जाता था।

इस सबके पीछे सत्य क्या है ? मेरा व्यापार आगे बढ़ता जाता है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसीलिये जीवित है। उसकी प्रगति में कोई रुकावट उसके लिये सांघातिक होगी। उन्नतिशील व्यवसाय में ऊपरी खर्च उत्पादन के खर्च से थोड़ा पीछे रहता है। यदि उत्पादन का खर्च उसके बराबर हो जाये तो वह जो थोड़ा-सा मुनाफा रखा जाता है, उसे निगल जायेगा। मेरा व्यापार इतनी तेजी से बढ़ा कि वह परिपक्वता की ओर बढ़नेवाले स्वस्थ शरीर की अपेक्षा एक फूला हुआ गुब्बारा लगता है। उदाहरण के लिये, मेरे कुछ विभागों में औरों के साथ कदम मिलाये रखने के लिये मजदूरों के साथ गुलामों के जैसा व्यवहार करना पड़ता है। और जैसे ही इस विभाग में मशीनों में सुधार करके स्थिति ठीक की जाती है वैसे ही किसी दूसरे विभाग में यही हाल हो जाता है। मैं इस मामले में अपने-आपको असहाय-सा पाता हूं क्योंकि सारी गति में यदि कहीं भी रुकावट आयी तो कार्यकर्ताओं की और भी अधिक दुर्दशा हो जायेगी।

और मैंने मानवजाति को क्या दिया? लोग ज्यादा आसानी से सफर कर सकते हैं। लेकिन क्या वे एक-दूसरे को ज्यादा अच्छी तरह समझ पाते हैं? मेरा अनुसरण करते हुए जीवन को अधिक सरल बनानेवाली (या कम-से-कम जिनके बारे में ऐसा माना जाता है) बहुतेरी चीजों को बड़े पैमाने पर तैयार करना और अधिक-से-अधिक ग्राहकोंतक पहुंचाना शुरू हुआ। लेकिन इसके परिणामस्वरूप क्या नयी-नयी आवश्यकताएं नहीं पैदा की गयीं और उसके साथ-ही-साथ मुनाफे के लिये लोभ बढ़ता गया। मेरे आदमियों को अच्छा वेतन मिलता है लेकिन ऐसा लगता है कि मैं उनमें अधिक-से-अधिक और उससे भी अधिक, अन्य कारखानों के लोगों से अधिक कमाने की तृष्णा पैदा करने में ही सफल हुआ हूं। मुझे लगता है कि वे असंतुष्ट हैं, दुःखी हैं। मेरी आशाओं के विपरीत उनका जीवन-स्तर उठाने से, उनके योगक्षेम की ठीक व्यवस्था कर देने से उनके अंदर मानव व्यक्तित्व का विकास नहीं हुआ। सच पूछिये तो मनुष्य के दुःखों का भार लगभग जैसे का वैसा ही बना है, आज भी वह पहले जैसा दुःसह है। ऐसा लगता है कि मैंने जो उपाय किये हैं उनसे उसका उपचार नहीं हो सकता। मुझे लगता है कि आधार में ही कोई ऐसी भूल रह गयी है जिसे मेरे उपाय ठीक नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर पाते। इतना ही नहीं, मैं उसे जानता और समझता भी नहीं हूं। मुझे लगता है कि कोई रहस्य है जिसका उद्घाटन करना अभी बाकी है। उसके बिना हमारे सारे प्रयास बेकार हैं।

व्यायामी—मैं कसरती परिवार में पैदा हुआ था। मेरे मां-बाप खेल-कूद, दौड़-भाग और विभिन्न कसरतों में निपुण थे। मेरी मां तैराकी, डुबकी, धनुर्विद्या, पट्टेबाजी और नृत्य में विशेष रूप से कुशल थीं। वह इन चीजों के लिये काफी विख्यात थीं और उन्हें कई स्थानीय पारितोषिक भी मिल चुके थे।

मेरे पिता एक विलक्षण व्यक्ति थे। वे जिस चीज में हाथ लगाते उसीमें सफलता मिलती थी। वे अपने विद्यार्थी-जीवन में फुटबॉल, बास्केटबॉल और टेनिस के जाने-माने खिलाड़ी थे। बाक्सिंग और लंबी दौड़ में वे अपने जिले में सबसे अच्छे थे। फिर वे एक सरकस दल में जा मिले और वहां फ्लाइंग ट्रेपीज तथा घुड़सवारी के खेलों में नाम कमाया। लेकिन उनकी अपनी विशेषता थी शरीर-गठन (बॉडी बिल्डिंग) और कुश्ती। इनके लिये उन्होंने बहुत ख्याति पायी।

स्वस्थ, सबल और सक्षम शरीर पाने के लिये ऐसे परिवार में पैदा होना और पलना—एक आदर्श अवस्था थी। मेरे माता-पिता ने जो शारीरिक उपलब्धियां बड़े कष्ट से परिश्रम कर-करके पायी थीं, वे मुझे सहज प्राप्त हो गयीं। मेरे व्यायामी माता-पिता मेरे अंदर अपने स्वप्नों की सार्थकता देखना चाहते थे। वे मुझे एक महान् और सफल व्यायामी के रूप में देखना चाहते थे। उन्होंने मुझे बड़ी सावधानी के साथ पाला। वे चाहते थे कि मैं स्वास्थ्य, बल, तेज और ओज प्राप्त कर सकूं। इस विषय में उन्हें जितनी भी जानकारी थी, जितना भी अनुभव था, उस सबका उपयोग मेरे लालन-पालन में किया। उन्होंने इसमें कोई कसर न रखी। मेरे जन्म से ही भोजन, वस्त्र, नींद, सफाई और अच्छी आदतों का यथासंभव पूरा ख्याल रखा गया। उसके बाद व्यवस्थित रूप से कसरतों की बारी आयी जिनके द्वारा मेरे शरीर में सौष्ठव, उचित अनुपात, शोभा, छंद और सुसंगति लाने का प्रयास किया गया। फिर तत्परता, फुर्ती, साहस, सतर्कता और अंग-प्रत्यंग की क्रियाओं में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहयोग लाने की शिक्षा दी। और फिर शक्ति और सहनशीलता प्राप्त करना सिखाया।

मुझे एक छात्रावास में भेजा गया। स्वभावतः मुझे शारीरिक शिक्षण का कार्यक्रम सबसे अधिक पसंद आया। मैंने उसमें खूब रस लेना शुरू किया और कुछ ही वर्षों में मुझे विद्यालय के अच्छे खिलाड़ियों में स्थान मिलने लगा। जब मुझे पहली सफलता मिली तो मैं अंतरविद्यालय मुष्टियुद्ध प्रतियोगिता में चैम्पियन बना। यह देखकर मेरे मां-बाप कितने प्रसन्न हुए, उन्हें लगा कि उनके स्वप्न चरितार्थ होने लगे। इस सफलता से मुझे बहुत बढ़ावा मिला। मैंने पूरी दृढ़ता, बड़े ही यत्न और परिश्रम के साथ शारीरिक शिक्षण की विविध शाखाओं के कौशल को सीखना और उनमें निष्णात होने का प्रयास शुरू कर दिया। मुझे सब प्रकार के खेल-कूद और कसरतों में भाग लेकर शरीर की नाना प्रकार की क्षमताओं को विकसित करना सिखाया गया। मेरा ख्याल था कि शारीरिक शिक्षण की एक व्यापक प्रणाली के द्वारा आदमी एक से अधिक या यूं कहिये, कई प्रकार की शारीरिक प्रवृत्तियों में दक्ष हो सकता है। इसलिये जिस-जिस खेल में मौका मिला, मैंने उस-उसमें भाग लिया। मैंने बरसों खुली प्रतियोगिताओं में कुश्ती, बाक्सिंग, भार उठाना, शरीर-गठन, तैराकी, दौड़-भाग, कूद-फांद, टेनिस, कसरत आदि में प्रथम पुरस्कार लिये।

अब मैं अठारह वर्ष का था। मैं खेलों की राष्ट्रीय प्रतियोगिता में भाग लेना चाहता था। मैं सर्वांगीण विकास का पक्षपाती था इसलिये मैंने राष्ट्रीय प्रतियोगिता के लिये डेकाथलेन को चुना। यह सबसे अधिक कठिन होता है। इसमें तेजी, बल, सहनशक्ति और सब अंगों का समन्वय आदि गुणों की बड़ी कड़ी परीक्षा होती है। मैं कठिन अभ्यास के लिये मैदान में उतर पड़ा और छः महीने के कठोर परिश्रम के बाद आसानी से मैंने राष्ट्रीय चेम्पियनशिप प्राप्त कर ली। मेरे बाद का व्यक्ति मुझसे बहुत दूर रह गया था।

राष्ट्रीय शरीर-शिक्षण संस्था के व्यवस्थापक मेरी सफलता देखकर स्वाभाविक रूप से मुझे विश्व ओलिम्पिक में भेजने के बारे में सोचने लगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगले दो वर्ष के अंदर विश्व ओलिम्पिक होनेवाली थी और मुझे वहां डेकाथलेन में देश का प्रतिनिधित्व करने का निमंत्रण मिला। विश्व-प्रतियोगिता में भाग लेना हंसी खेल नहीं है। वहां सारे संसार के अच्छे-से-अच्छे खिलाड़ी इकट्ठे होते हैं। अब समय नष्ट करने का अवसर नहीं था।

मैंने पिताजी के निर्देश और मां की देखभाल में प्रशिक्षण शुरू कर दिया। मुझे बड़ा कठिन परिश्रम करना पड़ता था। कभी-कभी प्रगति असंभव-सी लगती थी और हर बात कठिन मालूम होती थी। फिर भी मैं दिन-पर-दिन, मास-पर-मास काम पर पिला रहा। आखिर ओलिंपिक खेलों का दिन आ गया।

मैं शेखी नहीं बघारता, पर मैंने आशा से बहुत अच्छा किया। मैं प्रथम तो आया ही परंतु न मुझसे पहले और न मेरे बाद किसीने मेरे जितने अंक पाये। यह बात किसी को संभव न लगती थी। पर हुआ यही। मेरी और मेरे माता-पिता की ऊंची-से-ऊची महत्त्वाकांक्षा पूरी हो गयी।

मेरे अंदर एक आश्चर्यजनक बात हुई। मैं सफलता और यश के शिखर पर था, फिर भी लगा कि मेरे अंदर एक उदासी और एक खोखलेपन का भाव आ रहा है। ऐसा लगता था मानों कोई कह रहा हो कि कोई कसर रह गयी है, किसी चीज की खोज करनी होगी, अपने अंदर किसी चीज की प्रतिष्ठा करनी होगी। ऐसा लगता था कि मानों वही वाणी कह रही है कि कोई और चीज भी है जिसके लिये मेरी शारीरिक दक्षता, क्षमता और ऊर्जा का अधिक अच्छा उपयोग हो सकता है। परंतु वह चीज क्या है इसका मुझे स्वप्न में भी ख्याल न था। इसके बाद भी मैंने बहुत-सी महत्त्वपूर्ण प्रतियोगिताओं में भाग लिया परंतु प्रत्येक विजय के बाद यह भावना मुझे जोर से आ जकड़ती थी।

मेरी ख्याति के कारण नवयुवकों का एक दल मेरे चारों ओर इकट्ठा हो गया। युवक शारीरिक शिक्षण के भिन्न-भिन्न विषयों में मेरी सहायता चाहते थे। मैंने बड़ी खुशी से सहायता दी, मैंने देखा कि अपने प्रिय विषय में दूसरों की सहायता करने में एक आनंद है। मैं प्रशिक्षक के रूप में सफल हो रहा था। मेरे कई विद्यार्थी खेल-कूद, व्यायाम आदि में आश्चर्यजनक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सफलता पा रहे थे। शिक्षकरूप में अपनी सफलता देखकर और खेल-कूद आदि के लिये अपनी रुचि के कारण मैंने सोचा कि मैं इस शिक्षण-कार्य को ही अपने जीवन का ध्येय बना लूं। शारीरिक शिक्षण के सिद्धांत-पक्ष से भी भली-भांति परिचित होने के लिये मैं शारीरिक शिक्षण के एक प्रसिद्ध महाविद्यालय में भरती हो गया और चार वर्ष में मैंने वहां की उपाधि भी पा ली।

अब शारीरिक शिक्षण के सिद्धांत और प्रयोग में निपुणता पाकर मैं कार्य-क्षेत्र में उतर पड़ा। जबतक मैं केवल व्यायामी था, मेरा मुख्य उद्देश्य था अपने शरीर के लिये स्वास्थ्य, बल, कौशल, शारीरिक सौंदर्य और शारीरिक पूर्णता पाना। अब मैं इसी उद्देश्य को लेकर औरों की सहायता करने लगा। मैंने अपने देशभर में प्रशिक्षकों के लिये शिक्षाकेंद्र खोले। इन केंद्रों का उद्देश्य था साधारण जनता के अंदर स्वास्थ्य, व्यायाम और मनबहलाव को वैज्ञानिक रूप से लोकप्रिय बनाना। इन केंद्रों ने अपना काम बड़ी अच्छी तरह किया और कुछ ही वर्षों में मेरे देशवासियों का स्वास्थ्य बहुत सुधर गया। देश-विदेश में वे खेल-कूद में अच्छे परिणाम दिखाने लगे। खेल-कूद की दुनिया में शीघ्र ही मेरे देश का नाम चमक उठा। मुझे यह स्वीकार करना चाहिये कि मेरे देश की सरकार ने इस दिशा में मेरी बहुत सहायता की और मुझे मंत्रिमंडल में शारीरिक शिक्षण-मंत्री के रूप में स्थान दिया गया। इसी कारण मैं यह सब कर पाया।

शीघ्र ही मेरा नाम देश-देशांतर में फैल गया। मुझे अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में शारीरिक शिक्षण के बारे में प्रामाणिक व्यक्ति माना जाने लगा। मुझे बहुत-से देशों में शारीरिक शिक्षण के बारे में बोलने और अपनी पद्धति का परिचय देने के लिये निमंत्रित किया गया। मेरे पास धरती के कोने-कोने से चिट्ठियां आने लगीं जिनमें मेरी पद्धति के बारे में पूछताछ होती थी और उन देशों की विशेष समस्याओं के बारे में मेरी सलाह मांगी जाती थी।

लेकिन इस सब कार्य-व्यस्तता के बीच मुझे ऐसा लगता था कि मेरी सारी शक्ति, मेरे कौशल, मेरे देशव्यापी संगठन और उससे मिलनेवाली शक्ति और मेरे अंतर्राष्ट्रीय प्रभाव का कुछ और ऊंचा, कुछ और महान्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्देश्य हो सकता था। शायद तब मेरे सब किये-कराये का कुछ अर्थ हो सकता। लेकिन मुझे अभीतक मालूम नहीं हो पाया कि वह उद्देश्य क्या है।

मुझे कई बार अतिमानव कहा गया है पर मैं अतिमानव नहीं हूं। मैं अब भी प्रकृति का दास हूं। मैं एक मनुष्य हूं—अज्ञान से भरा, सीमाओं से घिरा, अक्षम, रोगों, दुर्घटनाओं और इच्छा-वासनाओं का शिकार जो मनुष्य को सारी शक्ति से खाली कर देती हैं। मुझे लगता है कि मैं अभी तक इन चीजों से ऊपर नहीं उठ पाया हूं, कोई और ही चीज है जिसे सीखना और पाना है।

अब जब कि मौत के साथ आमना-सामना हो रहा है, मुझे मौत का जरा भी डर नहीं है। अत्यधिक कष्ट, भूख और प्यास के विचार मुझे नहीं सताते। लेकिन मुझे खेद है कि मैं अपने जीवनकाल में अपनी समस्या को न सुलझा पाया। मैंने अपने जीवन में बहुत सफलता पायी, ख्याति, मान, धन—यानी मनुष्य जिस-जिस चीज के स्वप्न ले सकता है वह सब मुझे प्राप्त है पर मैं संतुष्ट नहीं हूं क्योंकि मुझे इन प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं मिला। सब कुछ होते हुए भी वह कौन-सी चीज है जिसे मैं नहीं पा सका? मेरी शारीरिक पूर्णता और दक्षता का ऊंचे-से-ऊंचा उपयोग क्या हो सकता था? देशभर में फैले हुए मेरे संगठन और मेरे अंतर्राष्ट्रीय प्रभाव का किस उद्देश्य के लिये अच्छे-से-अच्छा विनियोग हो सकता है?

(अज्ञात व्यक्ति की शांत, मधुर, स्पष्ट, अधिकारपूर्ण और गंभीर आवाज सुनायी देती है।)

अज्ञात व्यक्ति—आप लोग जो जानना चाहते हैं, वह मैं आपको बता सकता हूं। आप लोगों के कार्यक्षेत्र भिन्न-भिन्न रहे हैं और कार्य की प्रकृति भिन्न-भिन्न रही है फिर भी आप सबके अनुभव एक जैसे हैं। आप छः के छः बड़े परिश्रम के बाद सफलता प्राप्त करके भी एक ही परिणाम पर पहुंचे हैं क्योंकि आप चेतना के ऊपरी तल पर रहे हैं और आपने चीजों के बाह्य रूप को ही देखा है। आप सब वास्तविकता से अनभिज्ञ ही रह गये।

आप लोग मनुष्यों में अभिजात श्रेणी के हैं। आपने अपने-अपने क्षेत्र में यथासंभव अधिक-से-अधिक सफलता पायी है। आप मानवजाति के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूर्द्धन्य हैं, लेकिन अब मानवजाति के शिखर पर पहुंचकर आगे बढ़ना असंभव हो गया है। आपके सामने एक बड़ी खाई है। आपमें से कोई भी संतुष्ट नहीं है, साथ ही कोई यह भी नहीं जानता कि अब क्या किया जाये। आपकी सद्‌भावना और आपके जीवन ने जो दोहरी समस्या आपके आगे रखी है उसका आपको कोई हल नहीं दीखता। मैंने कहा, दोहरी समस्या, सचमुच समस्या के दो पहलू हैं—व्यक्तिगत और सामाजिक। अपना और दूसरों का कल्याण कैसे किया जाये ? आप लोग इस समस्या को हल नहीं कर पाये हैं क्योंकि जीवन की यह समस्या आदमी के मन द्वारा (चाहे वह कितना भी उन्नत क्यों न हो) हल होनेवाली नहीं है। इसके लिये हमें एक नवीन और उच्चतर, सत्य-रूपी चेतना में जन्म लेना होगा। इन भागते हुए रूपों के पीछे एक अमर वास्तविकता छिपी है, इस निश्चेतन और परस्पर टकराते हुए बहु के पीछे एक प्रशांत चेतना है, इस असंख्य और अनवरत मिथ्याचार के पीछे एक परम पवित्र, दीप्तिमान सत्य विद्यमान है, इस अहंकारमय, विद्रोही अज्ञान के पीछे सर्वजयी ज्ञान है।

और यह वास्तविकता, यह सद्‌वस्तु मौजूद है, बहुत ही नजदीक है, आपकी सत्ता के और इस विश्व की सत्ता के केंद्र में मौजूद है। आपको सिर्फ इसी सत्ता को खोजना होगा और उसे अपने जीवन में मूर्त करना होगा। तब आप सारी समस्याएं हल कर सकेंगे और सब विघ्न-बाधाओं को पार कर सकेंगे।

आप शायद कहें कि यही बात तो नाना धर्मों ने कही है। अधिकतर ने इस सद्‌वस्तु को भगवान् का नाम दिया है परंतु उनमें से कोई भी आपकी समस्या का संतोषजनक हल नहीं कर सका और न आपको आपके प्रश्नों का समुचित उत्तर दे पाया है। वे आर्त मानवजाति के दुःख-दर्द को दूर करने के प्रयास में पूरी तरह असफल हुए हैं।

इनमें से कुछ धर्म संतों द्वारा सुनी गयी आंतरिक वाणी पर आधारित हैं, कुछ दार्शनिक और आध्यात्मिक आदर्श की भित्ति पर खड़े हैं, परंतु शीघ्र ही आंतरिक वाणी का स्थान ले लेते हैं आचार-व्यवहार और कर्मकांड तथा दार्शनिक आदर्श का स्थान कट्टर मान्यताएं ले लेती हैं और उनके अंदर का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्य गायब हो जाता है। प्रायः बिना अपवाद के इन धर्मों ने मनुष्य को एक ही प्रकार का समाधान दिया है और वह इहलोक को छोड़कर परलोक की ही बात करता है, मानों उनका समाधान जीवन पर नहीं मृत्यु पर आधारित है। उनका कहना कुछ-कुछ इस प्रकार का है कि अपनी मुसीबतों को चुपचाप सहते जाओ क्योंकि यह जगत् असाध्य रूप से पापमय है। तुम्हें मृत्यु के बाद इसका पुरस्कार मिलेगा या वे कहते हैं कि जीवन से सब प्रकार की आसक्ति छोड़ दो और तुम जीवित रहने की कठोर आवश्यकता से सदा के लिये मुक्त हो जाओगे। परंतु ये हल धरती पर मनुष्य के दुःख-दर्द के लिये अथवा संसार के लिये कोई इलाज नहीं हैं। परंतु यदि हमें संसार की इस विशृंखलता, अव्यवस्था और दुर्दशा का कोई सच्चा इलाज ढूंढ़ना है तो उसे इस धरती पर ही पाना होगा और वस्तुतः यह समाधान यहां मौजूद है, सिर्फ उसे ढूंढ़ निकालना होगा। वह रहस्यमय या काल्पनिक नहीं है, वह एक ठोस वास्तविकता है और यदि हम ठीक तरह देखना जानें तो पता लगेगा कि स्वयं प्रकृति ने ही उसे यहां प्रस्तुत किया है। प्रकृति की गति ऊर्ध्वमुखी है। वह एक ऐसे रूप, एक ऐसी जीवश्रेणी के सृजन के लिये प्रयत्नशील है जो विश्वचेतना को अधिक अच्छी तरह अभिव्यक्त कर सके। इस सबसे यही प्रमाणित होता है कि धरती के विकासक्रम में मनुष्य ही अंतिम सीढ़ी नहीं है। मनुष्य के बाद निश्चय ही एक ऐसी जाति आयेगी जो मनुष्य के लिये वैसी ही होगी जैसे मनुष्य पशु के आगे है। मनुष्य की वर्तमान चेतना की जगह एक नयी चेतना आयेगी जो मानसिक नहीं अतिमानसिक होगी और यह चेतना एक अधिक उन्नत, अतिमानस, भागवत जाति को जन्म देगी।

अब समय आ गया है जब यह संभावना जिसे आर्ष दृष्टि ने युगों पहले देखा था और जिसके बारे में आदेश भी हो चुका है, वह धरती पर मूर्त्त रूप ले ले। आप लोग इसीलिये इतने असंतुष्ट हैं और आपको लगता है कि आपने जीवन से जिस चीज की मांग की थी वह नहीं मिली। पृथ्वी जिस अंधकार में डूबी हुई है उसमें से उसे निकालने के लिये चेतना में आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है। सच पूछिये तो चेतना का यह रूपांतर, एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उच्चतर और सत्यतर चेतना की अभिव्यक्ति केवल संभव ही नहीं है अनिवार्य है, वही हमारे जीवन का लक्ष्य और पार्थिव जीवन का रहस्य है। पहले चेतना का फिर प्राण का और उसके बाद शरीर का रूपांतर करना होगा। नवीन सृष्टि इसी क्रम से होगी। प्रकृति की भी क्रियाएं जीवन को उस परम वास्तविकता की ओर धीरे-धीरे वापिस ले जा रही हैं जो समग्र विश्व और उसके अणु-परमाणु का लक्ष्य और स्रोत है।

हम सार रूप में जो हैं वही हमें स्थूल रूप में भी बनना होगा। जो सत्य, सौंदर्य, शक्ति और पूर्णता हमारी सत्ता की गहराई में निहित हैं उन्हें समग्र भाव से जीवन में उतारना होगा। तब सारा जीवन ही उस महान्, शाश्वत और दिव्य आनंद की अभिव्यक्ति हो उठेगा।

(सब लोग चुपचाप एक-दूसरे की ओर देखते हैं और सहमति प्रकट करते हैं।)

लेखक—आपकी वाणी में एक मंत्र-शक्ति है, एक जादुई बल है। हमें लगता है कि हमारे लिये एक नया दरवाजा खुल गया है, हमारे हृदयों में एक नयी आशा ने जन्म लिया है। लेकिन उसे सिद्ध करने में समय लगेगा।—शायद अभी बहुत समय की जरूरत हो। परंतु अब तो मृत्यु नजदीक ही है और हमारा अंत आ पहुंचा है। खेद है कि अब बहुत देर हो चुकी।

अज्ञात व्यक्ति—नहीं, बहुत देर नहीं हुई। ऐसी देर कभी नहीं हुआ करती। हम सब अपनी संकल्पशक्ति को एकत्र करके, एक महान् अभीप्सा के साथ भागवत कृपा से प्रार्थना करें। चमत्कार किसी भी समय हो सकता है। श्रद्धा में बड़ी शक्ति होती है। अगर सचमुच भविष्य में होनेवाले महान् कार्य में हमारे लिये कोई स्थान है तो भागवत सहायता आयेगी और हमारे जीवन की रक्षा होगी। आइये, हम एक संत की नम्रता, एक शिशु की सरलता के साथ पूरी सच्चाई से उस नयी चेतना, उस नयी शक्ति, उस सत्य और उस नूतन सौंदर्य का आवाहन करें जिसका अवतरण इस धरती का रूपांतर करने के लिये और यहां, इस पार्थिव जगत् में अतिमानस-जीवन सिद्ध करने के लिये जरूरी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सब लोग एकाग्रचित्त होते हैं और अज्ञात व्यक्ति बोलता है।)

"हे परम सत्य, हमने जिस उत्तम रहस्य को जाना है उसे हम समग्र सत्ता के जीवन में उतार सकें।"

(सब मिलकर यह प्रार्थना करते हैं, फिर नीरव ध्यान)

अचानक कलाकार चिल्ला पड़ता है, "देखो, देखो !"

(दूर क्षितिज से एक बिंदु के समान एक जहाज आता हुआ दिखायी देता है। सब को आश्चर्य होता है।)

अज्ञात व्यक्ति—हमारी प्रार्थना सुन ली गयी।

(जहाज अच्छी तरह दिखायी देने लगता है तो व्यायामी उठकर खड़ा हो जाता है और जेब से रूमाल निकालकर जोर से हिलाता है। जहाज और नजदीक आता जाता है। वैज्ञानिक चिल्ला उठता है।)

"उन लोगों ने हमें देख लिया है। वे हमारी ओर आ रहे हैं।"

अज्ञात व्यक्ति—*(नीची आवाज में धीरे-धीरे)* यही है मुक्ति, यही है नवजीवन !

(परदा गिरता है।)

— — — —

मनुष्य गंगा-जमुना बहाते हैं क्योंकि उनके कोई बेटा नहीं हुआ। दूसरे ऐसे हैं जो दिल को मसोसते रहते हैं क्योंकि उनको धन-दौलत नहीं मिली। लेकिन ऐसे कितने हैं जो इसलिये रोते हैं कि उन्हें भगवान् के दर्शन नहीं हुए? जो भगवान् की खोज करता है उसे वे मिल जाते हैं। जो तीव्र अभीप्सा के साथ भगवान् के लिये आंसू बहाता है वह भगवान् को पा चुका है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिवर बोले :

चबाव

आज ऋषिवर के यहां बड़ा आयोजन दीख रहा था। सामान्यतः वहां विद्यार्थियों और नवयुवकों की भीड़ रहा करती है पर आज दरवाज़े के सामने वर्दी में लैस पुलिस बड़ी सावधानी के साथ इधर-उधर चक्कर लगा रही थी। देहली पर सफेद पोशाक पर लाल पट्टे पर चांदी का चपरास लगाये एक चुस्त चालाक, सजीव चपरासी आने-जानेवालों को सलामें दाग रहा था। रास्ते से आने-जानेवाले जरा रुककर नजर डाल लेते थे कि आखिर बात क्या है।

हमारे देखते-देखते दो चार अन्य मोटरों के पीछे-पीछे एक बड़ी-सी मोटर-गाड़ी आकर ऋषिवर के द्वार पर खड़ी हो गयी और चपरासी ने तेजी से आगे बढ़कर दरवाजा खोल दिया। अंदर से छरहरे बदन का युवक बाहर निकला और इधर उधर देखे बिना सीधा आश्रम में घुस गया। आस-पास खड़े लोगों की बात से मालूम हुआ कि यह प्रदेश का खाद्यमंत्री है।

'ऋषिवर, बड़े जमाने से आपके पास आने की इच्छा थी पर यह सरकारी पद की बेड़ियां किसे छोड़ती हैं! आज किसी तरह आ पाया हूं। आपके साथ व्यक्तिगत जान-पहचान न होने के बावजूद दिल की भड़ास निकालकर ही जाऊंगा। अंदर आने से पहले सचिव ने सावधान कर दिया है कि पंद्रह मिनट से ज्यादा न लगें लेकिन आपके यहां रोज-रोज आने का अवसर कहां मिलता है। आज मन-ही-मन निश्चय करके आया हूं कि आपके सामने दिल खोलकर रख दूंगा, फिर चाहे उसमें आपके धीरज की परीक्षा क्यों न हो जाये।'

ऋषिवर के पास दिल का गुबार निकालने के लिये आनेवालों की कमी नहीं होती और उनमें से हर एक यही सोचता है कि वह ऋषिवर के धीरज की परीक्षा ले रहा है। वह चुपचाप बैठे मंत्रीजी की आंखों में आंखें डाले उनकी बातें सुनते रहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जब मैं मंत्री नहीं था तो यही सोचा करता था कि मेरे हाथ में कुछ अधिकार आ जाये तो मैं अपने साथ संबंध रखनेवाले विभागों को सिर्फ अपने प्रदेश या देश के लिये ही नहीं, सारे जगत् के लिये आदर्श बनाकर रख दूंगा लेकिन आज जब मैं इतने बड़े प्रदेश का खाद्यमंत्री हूं, मंत्रिमंडल में भी मेरी काफी चलती है, फिर भी मैं देखता हूं कि मैं सचमुच कुछ नहीं कर पाता। मैं चारों तरफ से जकड़ा हुआ हूं। इस बेबसी के भाव से दम घुटता है। कहने को मैं सब कुछ कर सकता हूं पर सचमुच देखें तो मेरे हाथ में कुछ भी नहीं है। मेरे दल के लोग और सरकारी अफसर, मिलने-जुलनेवाले और जिन्होंने मेरे चुनाव के समय काम किया है, वे मुझे फिरकी की तरह घुमा सकते हैं।

"लेकिन ऋषिवर आप विश्वास करेंगे, मेरे यहां एक चपरासी है, बहुत ही ईमानदार और सीधा सच्चा। वह मेरा मुंहलगा भी है और मुंहफट भी। वह कभी-कभी एकांत में मुझे बड़ी जली-कटी सुना जाता है। उसे तब यह ख्याल नहीं रहता कि मैं मंत्री हूं और वह चपरासी—और मुझे भी उसका यह भाव अच्छा लगता है। हां, तो उसका कहना है कि अपनी अधिकतर कठिनाइयों के लिये मैं स्वयं जिम्मेदार हूं।

"मेरे पास बीसियों लोग औरों की शिकायतें लेकर या यूं ही चबाव करने के लिये आ जाते हैं। चबाव सुनने में तो बड़ा मजा आता है परंतु उनके जाने के बाद उबकाई आती है, सिर में चक्कर आते हैं और कभी-कभी उल्टी हो जाती है, फिर नींद बुलाने के लिये नींद की गोलियां लेनी पड़ती हैं। मैं हमेशा कहता हूं मुझे बतरस अच्छा नहीं लगता, कि मुझे कर्तव्यवश इसे पीना पड़ता है और इसकी वजह से मेरा पेट गड़बड़ा जाता है। इसे स्वीकार करके मानों मैं अपने कर्तव्य की वेदी पर, परोपकार की नहीं, अपनों का दिल न दुखाने की दृष्टि से यह मुसीबत अपने सिर पर लेता हूं। और सब तो मेरे इस भाव की सराहना करते हैं परंतु यह मुंहजला चपरासी अकेले में मुझसे कहता है यह सब गलत है, मैं ऐसी बातें कहकर औरों को नहीं अपने-आपको धोखा देता हूं, कि मुझे छिद्रान्वेषण में मजा आता है और यह सोचकर मैं फूल उठता हूं कि मैं इतने अपनों और परायों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की सहायता करता हूं और इस सहायता देने की प्रक्रिया में अपने ऊपर मुसीबत बुला लेता हूं।

"ऋषिवर, बात अजीब है। चपरासी होते हुए वह इतना साहस कैसे करता है, मेरे मुंह पर ऐसी-ऐसी खरी-खोटी सुना देता है कि मैं मन मसोस कर रह जाता हूं। कई बार सोचा है उसका तबादिला कर दूं। हुकुम लिखने के लिये कलम भी उठाया है परंतु ठीक समय पर कोई चीज मेरा हाथ पकड़ लेती है और मैं विष का घूंट पीकर रह जाता हूं। आप इस विषय में मेरी कुछ सहायता कर सकते हैं क्या? मुझे स्वयं अपनी बात पर विश्वास नहीं, मेरी राई को पर्वत बनाने की आदत नहीं है फिर भी यह छोटी-सी चीज मुझे बहुत तंग किये हुए है। आशा करता हूं मेरे अंड-बंड में से आप कुछ अर्थ निकाल लेंगे।"

ऋषिवर अभीतक चुपचाप बैठे थे। मंत्री जी की मशीन बंद हुई तो कमरे में एकदम सन्नाटा-सा छा गया और उन्होंने धीरे-धीरे कहना शुरू किया, "मंत्री महोदय, आपका सौभाग्य है कि आपको ऐसा अच्छा चपरासी प्राप्त है जो सच बोलने से नहीं सकुचाता। कहते हैं कि एक बार निज़ाम मस्जिद में बैठे कुरान के पाठ के समय बातें करने लगे। उनके पीछे ही कोई साधारण-सा मुंशी बैठा था। वह भड़क उठा और उसने अपने मालिक, निज़ाम से कहा, 'कुरान पाठ के समय बातें करना अपराध है।' पुलिस अफसर उसकी धृष्टता की वजह से उसे पकड़ने चला तो निज़ाम ने उसे मना कर दिया। निज़ाम ने उस तीस रुपल्ली मासिक पानेवाले मुंशी को खुश होकर ३०० रुपया महीना देना चाहा। मुंशी साधारण धातु का बना हुआ न था। उसने इतनी बड़ी नैयत को लेने से इंकार कर दिया। आपका चपरासी भी उसी धातु का बना हुआ मालूम होता है। आपके सामने आपकी भलाई की बात करता है!

"आप अच्छी तरह जान और समझ लीजिये कि आपके पास आकर लल्लो-चप्पो करनेवालों में से कोई भी आपका सच्चा हितैषी नहीं है। उनमें से कोई ठकुरसुहाती कहकर अपना उल्लू सीधा करना चाहता है, कोई मुंहदेखी कहकर आपसे कोई रहस्य निकलवाना चाहता है और कोई और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ नहीं, विष-वमन के लिये आपको एक अच्छी चिलमची समझकर अपने गले में उंगलियां डालता है। जहांतक हो सके आपको इन लोगों से बचना चाहिये। इनसे आपका कभी कोई भला न होगा। दूसरे की शिकायतें करना अपने-आपमें एक बड़ा दोष है। इसके पीछे प्रायः कोई-न-कोई स्वार्थ छिपा रहता है। कहते हैं बिच्छू कभी जानकर डंक नहीं मारता। वह स्वभाव से डंक इधर-उधर करता रहता है। आपके शरीर का कोई भाग उसके पास आ जाये तो आपका दुर्भाग्य। इसी तरह कुछ लोग हमेशा दूसरों के दोष देखते और उनका बखान करते रहते हैं। वे स्वभाव से ही कीचड़ उछाला करते हैं। आप उनकी बातों पर कान देते हैं तो आप उन्हें कपड़े गंदे करने का दोषी नहीं ठहरा सकते।

"ज्यादा अच्छा यही है कि आप अपने काम से काम रखिये, दूसरे के भले बुरे में अपनी टांग मत अड़ाइये। अपने पद के कारण आपको कुछ चीजें सुननी ही पड़ेंगी। वहां निष्काम भाव से सुन लीजिये और भगवान् से प्रार्थना कीजिये कि वे आपको नीर क्षीर विवेक प्रदान करें और सचाई के साथ कदम उठाने की सामर्थ्य दें। जब कोई आपके सामने व्यर्थ में किसी पर कीचड़ उछालने लगे तो वहां से उठ जायें या अपने मन को किसी और दिशा में फेर दें। जब ऐसे लोग देखेंगे कि आप उनकी बातों में रस नहीं ले रहे तो वे अपने-आप आना बंद कर देंगे। यह बात आज भी ठीक है जब आप मंत्री हैं और तब भी ठीक होगी जब आप मंत्री न रहेंगे। बस अपने कर्तव्य पर ध्यान दीजिये, औरों की चिंता न कीजिये।

"शायद मेरे इस उपाय से आपको कुछ सहायता मिले। नमस्कार।

"हां, आपके जाने से पहले मैं आपके उस चपरासी की शकल देखना चाहूंगा जो आपके नाराज होने की संभावना होते हुए आपकी भलाई की बात करने का साहस करता है।"

और ऋषिवर मंत्री जी के साथ बाहर निकल आये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चैत्य सुगंध, पथ-प्रदर्शन, माताजी की सहायता

तुमने जिन सुगंधों को अनुभव किया है वे हैं तो सच्ची परंतु भौतिक-जगत की नहीं हैं। यह रक्त-मांस का शरीर ही हमारा सब कुछ नहीं है। इन आंखों से न दिखायी देनेवाला एक सूक्ष्म शरीर भी है और जब हमारी आंतरिक चेतना खुल जाती है तभी हम उसे जान पाते हैं। शुद्धि की, प्रेम की, समर्पण की ये सुगंधें वहां की गहराइयों से आयी थीं। तुम्हारे अंदर गहराइयों में चैत्य सत्ता निवास करती है, जब अंतर्मुख आवेश या दबाव आता है तो तुम वहीं जाने की कोशिश करते हो। यही कारण है कि तुम्हें अधिकाधिक शांति का अनुभव हुआ। इसी कारण तुम चैत्य की गहराइयों में जाने की कोशिश कर रहे थे। ये सुगंधें वहीं से आती हैं।

१७-१२-१९३५

भगवान् का पथ-प्रदर्शन

सदा भगवान् से शासित होने के लिये हमें क्या करना चाहिये?

पहली चीज है उसके लिये सतत अभीप्सा, दूसरी है अपने भीतर एक प्रकार की निश्चलता, बहिर्मुख कार्य से अपने-आपको पीछे हटाकर निश्चलता और एक तरह की सुनने के लिये उत्सुकता में ले आओ। यह ध्वनि के लिये नहीं आध्यात्मिक अनुभूति या चैत्य द्वारा आनेवाले मार्गदर्शन के लिये उत्सुकता हो।

११-९-१९३३

माताजी की सहायता

'क' ने मुझे अपनी कठिनाइयों के बारे में बतलाया। मैंने उससे कहा, माताजी की सहायता को पुकारने से सब कठिनाइयां दूर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो सकती हैं। उसने तर्क करना शुरू किया, जहां इतने बड़े-बड़े और विकसित साधक माताजी को पुकारते रहते हैं, वहां उसका पुकारना तो बस अरण्यरोदन ही होगा। मैंने कहा, अगर माताजी हमारी पुकार पर कान नहीं देतीं तो इसके लिये उनके अपने कारण होंगे। हमें श्रद्धा और समता को बनाये रखना चाहिये और अपने अंदर आवश्यक परिस्थितियां तैयार करनी चाहियें। जब कोई सच्ची पुकार होती है तो माताजी उसकी उपेक्षा कभी नहीं करतीं। सच्ची पुकार हृदय से आनी चाहिये।

जब मैं इस विषय में बात कर रहा था तो मेरे मस्तक के बीच से एक शक्ति और दबाव भौंहों के बीच की तरफ जाता हुआ लगा। इसका क्या कारण है ?

'क' के तर्क ठीक नहीं हैं, तुम्हारे एकदम भूल-रहित तो नहीं, हां उसके तर्क से बहुत अच्छे हैं। माताजी भौतिक-मन की सीमा में बंधी हुई नहीं हैं। उन्हें चाहे जितना जरूरी काम क्यों न हो, वह उन्हें अरण्यरोदन या किसी और जगह की पुकार को सुनने से नहीं रोकेगा। आध्यात्मिक बातों में वरीयता का स्थान नहीं रहता। इसलिये यह न सोचना चाहिये कि वे ज्यादा बड़े मामलों में फंसी रहती हैं। जिनको माताजी की जरूरत होती है, माताजी हमेशा उनके साथ रहती हैं। अभी इस समय भी माताजी तुम्हारे अंदर हैं और कार्य कर रही हैं। तुम उन्हें नहीं देख पाते क्योंकि, तुम्हारे भीतर की दृष्टि और अनुभूति खुली नहीं है।

तुम्हें मस्तक पर जिस चीज का अनुभव हुआ वह था, उत्तर या यूं कहें माताजी की उपस्थिति का स्पर्श, उनकी वह शक्ति थी जो तुम्हारे आंतरिक मन, आंतरिक इच्छा-शक्ति, आंतरिक दृष्टि को खोलने के लिये काम कर रही है। जब वह खुल जाये तो तुम उन चीजों को देखने और जानने लगोगे जिन्हें तुम्हारी भौतिक आंख नहीं देख सकती, बाहरी मन नहीं समझ सकता।

११-१०-१९३५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोसायटी समाचार

उत्तरप्रदेश का प्रादेशिक साधना-शिविर ज्वालापुर (हरिद्वार) में १४ तथा १५ सितंबर ९० को होगा। श्रीअरविंद की योग-साधना में रस लेनेवाले इसमें भाग लेने के लिये आमंत्रित हैं। सदस्यों से अनुरोध है कि वे अपने कार्यक्रम के बारे में निम्नांकित पते पर ६-९-९० तक सूचना दे दें ताकि उनके रहने-खाने की व्यवस्था करवायी जा सके—

सेक्रेटरी, श्रीअरविंद योग मंदिर, ज्वालापुर, हरिद्वार, पिन—२४९४०७।

श्रीअरविंद सोसायटी, उत्तर प्रदेश का
२० वां वार्षिक अधिवेशन
गंगा के पावन तट पर
तीर्थस्थल ऋषिकेश में
स्वाध्याय-साधना शिविर के रूप में

नवंबर, १९९० के प्रथम सप्ताह में
संपन्न होगा।

विशेष विवरण, और व्यवस्थासंबंधी
जानकारी के लिये लिखें :

मंत्री, श्रीअरविंद अध्ययन केंद्र
लक्ष्मण झूला मार्ग, ऋषिकेश—२४९२०१
दूरभाष—१२५

बंसल एंड कंपनी, उत्तरकाशी के सौजन्य से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबसे पहली चीज होनी चाहिये 'शांति'। तुम जो कुछ करो उसे शांतिपूर्ण तरीके से करना चाहिये।

सहारनपुर सर्विस स्टेशन

पैट्रोल पम्प, देहरादून रोड

सहारनपुर–२४७००१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Registered with the Registrar of Newspapers for India
No. R. N. 18135/70
REGD. No. M. 8731

कोई महत्त्वाकांक्षा न रखो और सबसे बढ़कर यह कि किसी चीज का दिखावा न करो, हर क्षण, तुम अधिक-से-अधिक जो हो सकते हो, वह बनो।

— श्रीमां

With Best Wishes from:

MRS. KOYAL DEORAH CHARITABLE TRUST

28, VARSHA, 69/B, NEPEANSEA ROAD

BOMBAY - 4000 006

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

r India

1. 8731

ी चीज
ी सकते

— श्रीमां

TRUST

अग्निशिखा

(अ)खिल भारतीय पत्रिका

सितम्बर १९९०

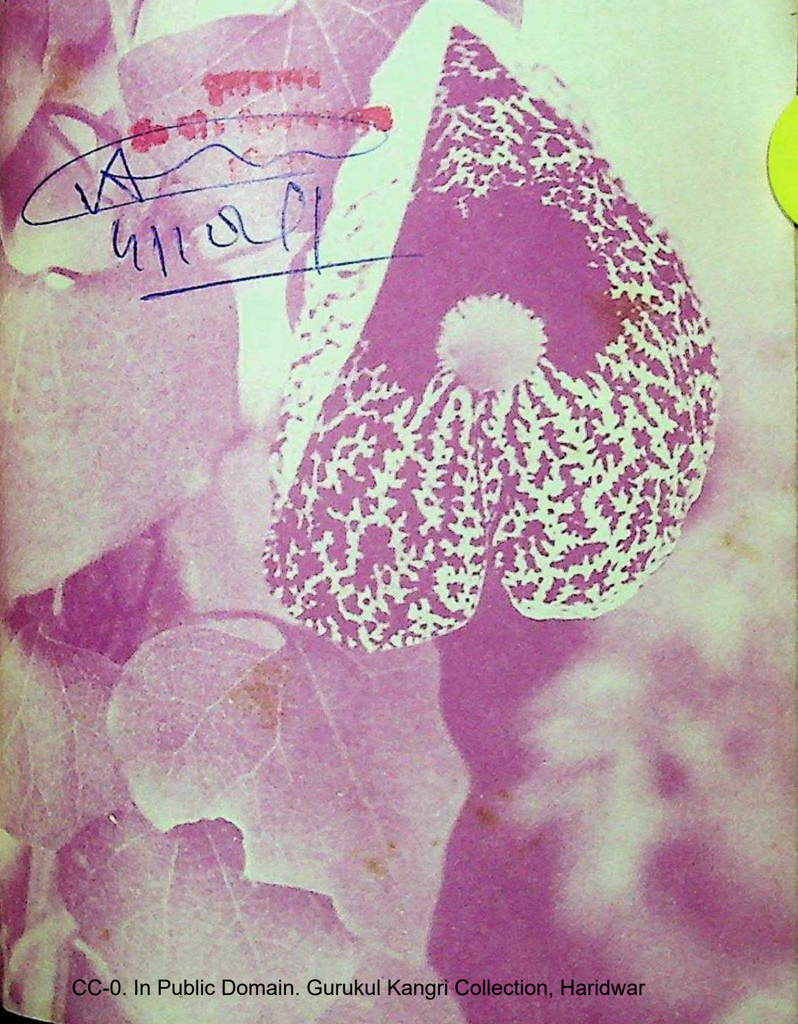

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
सितम्बर १९९० वर्ष २१, अंक २, पूर्णांक २४२

विषय-सूची

सन्देश	श्रीअरविन्द	१
'सम्पादकीय' : सच्चा आर्य !	अनुबेन	२
दैनन्दिनी		४
सद्गुणों के उत्सव में	माताजी	७
नीलम की कहानी	माताजी	९
श्रीअरविन्द के साथ बातचीत		१५
माला के कुछ मनके	वन्दना	१८
आश्रम में फूलों की प्रदर्शनी		२२
मेरी बीमारी		२८
भेडिये ने एक बच्चे को पाला	माताजी	३५
स्फुट वचन		३६
सोसायटी समाचार		३८

मुखपृष्ठ का चित्र — 'अन्तःप्रेरणा'
(माताजी द्वारा दिया गया फूल का आध्यात्मिक अर्थ)

आपका अग्निशिखा/पुरोधा का चंदा ... में समाप्त हो रहा है। कृपया अग्निशिखा के १० और पुरोधा के १४ शीघ्र भेजें अन्यथा अगला अंक वी. पी. पी. से जायगा। वी. पी. पी. लौट आने से हमें बहुत हानि होती है। अलग अनुस्मारक नहीं भेजा जायगा। कृपया चेक न भेजें। चाहें तो २२५ और २७५ एक साथ या किस्तों में देकर अग्निशिखा और पुरोधा के या ५०० देकर दोनों के आजीवन सदस्य बन सकते हैं।

अग्निशिखा वार्षिक १०.०० आजीवन २२५.००

श्रीअरविंद सोसायटी की मासिक पत्रिका

संपादक : रवींद्र, अनुबेन
प्रकाशक : श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी—६०५००२
मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी—६०५००२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संदेश

पश्चिम केवल भौतिक दृष्टि से और वह भी ऊपरी तल पर ही विकसित हुआ है। उसने जीवन की गहराइयों में जाकर जड़ों से शक्ति और स्थिरता नहीं प्राप्त की। बाहरी जीवन तो उस आन्तरिक जीवन की एक अपूर्ण अभिव्यक्ति मात्र है। पिछले दिनों पूर्व और पश्चिम के मौलिक भेद के अच्छे उदाहरण मिले हैं। ऐसा कौन-सा यूरोपीय देश है जो अपने-आपको कुछ ही वर्षों में राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से इतना बदल लेता? जापान बदला है और वह भी कितनी अच्छी तरह, अपनी राष्ट्रीय अर्थनीति या जीवन को जरा भी धक्का दिये बिना। यह घटना-चक्र यूरोप के लिये इतना विजातीय और अनोखा है कि वह अभीतक इसे समझ नहीं पाया। वे बस इसी निष्कर्ष पर आ पाये हैं कि जापान एक जादुई देश है। कौन-सा यूरोपीय देश अपने यहां की बुराइयों से इतनी आसानी से, इतनी तेजी से निबट सकता था जैसे चीन अपने यहां अफीम खाने की लत से निबट रहा है? यूरोपीय आलोचक तो यह मानने को भी तैयार न होते थे कि चीन सचमुच अफीम से पिंड छुड़ाना चाहता है। जरा कल्पना करके देखो, यदि इंगलैंड में शराब की लत को दूर करने के लिये इस तरह का प्रयास किया जाये तो उसकी क्या गति होगी। अगर भारत इस तरह की विजय नहीं दिखा पा रहा तो उसका एक ही कारण है। सौ वर्ष के दयाहीन विदेशी राज्य ने उसे एकदम अस्त-व्यस्त कर दिया है, उसके शक्ति के केन्द्रों को विच्छिन्न करके प्रायः नष्ट कर डाला है। फिर भी भारत आगे बढ़ा है और बढ़ रहा है। संसार के इतिहास में ऐसा कोई देश नहीं है जो इस तरह इतने दिनोंतक विदेशी राज्य के नीचे पिसकर भी ऐसी अदम्य शक्ति दिखला सका हो। यही नैतिक बल, यही जड़तक पहुंच सकने की क्षमता, अपने अन्तर की गहराइयों में पैठकर चमत्कारिक संकल्प-बल को खींच सकना, अपने स्व के ऊपर पूरा अधिकार—ये एशिया की शक्ति के रहस्य हैं। और शास्त्र हमें बतलाते हैं, जो अपने ऊपर शासन कर सके वही जगत् का स्वामी हो सकता है। स्वराट् ही सम्राट् बन सकता है।

—श्रीअरविंद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि

संपादकीय :

सच्चा आर्य !

पिछले महीने सुना कि पांडिचेरी के बाजार में बारह आदमियों ने एक व्यक्ति को घेरकर उसका एक हाथ और एक पांव काटकर उसकी नृशंस हत्या कर दी। यह आश्चर्य और खेद की बात है कि सवेरे ही सवेरे जब बाजार लोगों से भरा होता है, किसी ने भी उस आदमी की सहायता करने की बात न सोची। उल्टा यह सुना कि हर व्यक्ति वहां से जल्दी से जल्दी दूर चला गया। यह कैसी मानवता है ? मुझे किसी ने बताया कि हर एक को यही डर सताता था कि अगर वह सहायता के लिये दौड़ा तो हत्यारे उससे बदला लिये बिना न छोड़ेंगे। मैंने पूछा, "लेकिन अगर सारी भीड़ उनपर टूट पड़ती तो क्या होता ?" लाचारी से हंसकर उस व्यक्ति ने उत्तर दिया, "सबको अपनी जान प्यारी होती है।" मैं चुप रह गयी, मन में सोचा, अपनी खाल के लिये इतना भयभीत प्राणी मनुष्य है या कोई और ही चीज है। तभी मेरी स्मृति में अखबार का एक समाचार कौंध उठा—मद्रास में किसी चौराहे पर दो व्यक्ति एक महिला से उसकी सोने की जंजीर खींच रहे थे और महिला जी-जान से अपना आभूषण बचाये रखने की कोशिश कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रही थी। प्रायः हाथा-पाई हो रही थी और इस दल को घेरकर बड़ी-सी भीड़ तमाशा देख रही थी। यहां भी कोई वीर पुरुष महिला की सहायता के लिये दौड़ नहीं पड़ा था; अन्त में उचक्के जंजीर ले भागे और भीड़ मानों बन्दर का तमाशा देखकर तितर-बितर हो गयी।

हम ऐसे निर्वीर्य, शक्तिहीन कैसे बन गये ? कोई कहेगा कि दोष शिक्षा का है, कोई कहेगा मां-बाप दोषी हैं, दोषी कोई भी हो किन्तु यह हमारे लिये लज्जा की बात है। कुछ साल पहले ही ट्रेन में घटी घटना इससे बिलकुल विपरीत थी। "रिवाल्वर लिये चार डाकू एक डिब्बे में घुस गये, लोगों से पैसा, गहना निकलवाने लगे, अन्त में एक अकेली लड़की पर नजर पड़ी, डाकू नेता ने हुकुम दिया, "चलो हमारे साथ।" डरती-कांपती लड़की उठ खड़ी हुई। डिब्बे में मानों चित्र-लिखित यात्री बैठे थे। दरवाजे के पास पहुंचते ही वहां बैठे एक वृद्ध सज्जन ने तपाक से अपनी लकड़ी पहले डाकू के पांव में फंसा दी, वह लड़खड़ाकर गिरा और उसके गिरते ही डिब्बे के सब यात्री उनपर टूट पड़े। पुलिस को बुलाया गया और डाकू पकड़े गये, आंसू बहाती हुई लड़की वृद्ध सज्जन के गले लग गयी, "बाबा आपका नाम क्या है ?" बूढ़े ने उसकी पीठ थपथपायी और मुस्कुराये, कुछ बोले नहीं। उसकी प्रार्थना व्यर्थ गयी। बूढ़े ने अपना नाम नहीं बताया, केवल इतना ही कहा, "तेरे स्थान पर मेरी बेटी होती तो ?"

इन कई वर्षों में हमें क्या हो गया, भारत का उल्लेख हम बड़े गर्व से 'वीरप्रसू' कहकर करते थे, वे सारे वीर कहां गये ? हमारे पुरुष पुरुषार्थ से इतना डरते क्यों हैं ? अपनी खाल के लिये भयभीत, सोने के टुकड़े के लिये प्रत्येक दुष्कर्म करने को तैयार ? यह कैसा भारतीय चरित्र है ? हमारे पूर्वज कहा करते थे कि आर्य वही है जो निर्भय है, जो सच्चरित्र है, जो सच बोलने से हिचकिचाता नहीं। वे अब अपनी इन संतानों को देखकर लज्जा से सिर झुका लेते होंगे।

क्या हम फिर से 'सच्चे आर्य' नहीं बन सकते ? हमारे युवा दूषित राजनीति और भयंकर हत्याकाण्ड से हटकर इस महत्तर कार्य में नहीं लग सकते ?

—अनुबेन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दैनन्दिनी

सितम्बर

१. भगवान् को निरन्तर याद रखना रूपान्तर के लिये अनिवार्य है।
२. सबसे पहली चीज होनी चाहिये शान्ति। तुम जो कुछ करो उसे शान्तिपूर्ण तरीके से करना चाहिये।
३. हे प्रभो, मेरे अन्दर तुझे जानने की उत्कट अभिलाषा जगा। मैं अभीप्सा करती हूं कि मेरा जीवन तेरी सेवा के लिये समर्पित हो।
४. जानना अच्छा है, जीना ज्यादा अच्छा है और होना पूर्ण है।
५. भगवान् केवल वही नहीं हैं जो मुझे जहाज की उस बरबादी में से बचा लेते हैं जब कि और सब यात्री डूब मरते हैं, वे भी भगवान् ही हैं जो, जब और सब बच निकलते हैं तब मेरे बचाव का आखिरी तख्ता भी मेरे हाथ से छीन लेते हैं और मुझे एकाकी सागर में डुबो देते हैं।
६. फूल हमें मौन की मोहकता सिखाते हैं और इसी तरह आत्मदान की, जो बदले में कुछ नहीं मांगता।
७. समस्त जगत् स्वाधीनता के लिये ललकता है फिर भी हर प्राणी अपनी जंजीरों से प्रेम करता है--यह हमारी प्रकृति का पहला विरोधाभास और न खुलनेवाली गांठ है।
८. एक नया जगत् जन्म लेना चाहता है जो मिथ्यात्व की पुरानी दासता से इंकार करता है। सभी देशों में ऐसे लोग हैं जो इसे जानते हैं, कम-से-कम अनुभव तो करते हैं। उन्हें हमारी पुकार है, ''क्या तुम सहयोग दोगे ?''
९. जीवन की सभी समस्याएं निश्चित रूप से सामंजस्य की समस्याएं होती हैं।
१०. सर्वसम्मत होने के लिये यह जरूरी है कि हर एक अपनी चेतना के शिखरों तक उठे। शिखरों पर ही सामंजस्य पैदा होता है।
११. एकाग्रता का अर्थ है चेतना को एक केन्द्र पर इकट्ठा करना और उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक वस्तु, एक बिन्दु पर, एक विचार या एक स्थिति पर केन्द्रित करना।

ध्यान एक सामान्य परिभाषा है जिसमें कई चीजें आ जाती हैं।

१२. ध्यान में तुम्हारे लिये एकाग्र होना जरूरी नहीं है, तुम शांत मन होकर जो भी विषय आये उसका अवलोकन कर सकते हो।

१३. पहले तुम्हें दिव्य चेतना का अनुभव करना होगा, उसके बाद ही तुम जान सकोगे कि सच्चा प्रेम क्या है ?

१४. ध्यान विस्तृत हो सकता है, उदाहरण के लिये भगवान् के बारे में सोचना, संस्कार ग्रहण करना और उनमें विवेक से काम लेना, प्रकृति में जो कुछ हो रहा है उसे देखना और उसपर क्रिया करना आदि।

१५. ध्यान का अर्थ है अपने-आपको माताजी के प्रति खोलना, अभीप्सा पर एकाग्र होना और माताजी की शक्ति को बुलाना कि वह तुम्हारे अंदर कार्य कर सके और तुम्हें रूपान्तरित करे।

१६. ध्यान केवल एक साधन या उपाय है। सच्ची गतिविधि तो वह होगी जब तुम चलते-फिरते, काम करते और बोलते-चालते भी ध्यान कर सको।

१७. एकाग्रता है चेतना के सभी बिखरे तारों को एक बिन्दु पर, एक विचार पर लाना, जो लोग पूर्ण एकाग्रता प्राप्त कर सकते हैं वे जो भी काम हाथ में लें उसमें सफलता पाते हैं। वे हमेशा तेज प्रगति करते हैं। इस प्रकार की एकाग्रता को उसी तरह विकसित किया जा सकता है जैसे मांस-पेशियों को।

१८. इच्छा-शक्ति और एकाग्रता को प्रशिक्षित करना चाहिये। प्रश्न है पद्धति का, नियमित व्यायाम का, तुम इच्छा करो तो कर पाओगे।

१९. लेकिन इच्छा-शक्ति को कमजोर करने के लिये यह विचार न आना चाहिये कि इससे फायदा ? और यह विचार कि तुम अमुक प्रकार का चरित्र लेकर पैदा हुए हो और उसके बारे में कुछ नहीं कर सकते, मूढ़ता से भरा है।

२०. ध्यान में व्यतीत किये गये घंटों की संख्या आध्यात्मिक प्रगति का प्रमाण नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२१. तुम्हारी प्रगति का प्रमाण यह होगा कि तुम्हें ध्यान के लिये कोशिश न करनी पड़े, तब तुम्हें ध्यान बंद करने के लिये कोशिश करनी पड़ती है।

२२. तब ध्यान बंद करना मुश्किल हो जाता है, भगवान् के बारे में सोचना बंद करना मुश्किल हो जाता है, सामान्य चेतना के स्तर पर आना मुश्किल हो जाता है।

२३. दुःख, कष्ट, पीड़ा, भ्रांति, मिथ्यात्व, दुर्बलता, दुष्टता, अक्षमता, जो किया जाना चाहिये उसे न करना, गलत करना, इच्छा का पथ-भ्रष्ट होना, सीमांकन, या उन सत्ताओं से पृथकता जिनके साथ हमें एक होना चाहिये—ये सब चीजें मिलकर वह बन जाती हैं जिसे हम अशुभ कहते हैं।

२४. ये जगत् चेतना के तथ्य हैं, कहानी नहीं; परन्तु ये ऐसे तथ्य हैं जिनका पूरा भाव या मूल्य वह नहीं है जो हम अपने अज्ञान में मान लेते हैं।

२५. ये सभी अपूर्णताएं हमारे लिये अशुभ हैं लेकिन समस्त अशुभ शाश्वत शुभ की प्रसव पीड़ा है, ये सभी प्रच्छन्न देव की अचेतना में से अभिव्यक्त होने की पहली स्थिति हैं।

२६. जिसे हम पाप कहते हैं वह केवल अतिरंजन और त्रुटि, गलत व्यवस्था, असामंजस्य-भरी क्रिया और प्रतिक्रिया है।

२७. हमारी वर्तमान चेतना के ऊपर एक अतिचेतना है जहां से उच्चतर चेतना हमारे शरीर में उतरती है।

२८. मैं अभी जो नहीं कर सकता वह इस बात का चिह्न है कि मैं उसे बाद में कर सकूंगा। असंभवता का भाव समस्त संभावनाओं का आरंभ है।

२९. मृत्यु एक प्रश्न है जो प्रकृति हमेशा जीवन से पूछती रहती है। यह इस बात का अनुस्मारक है कि उसने अभीतक अपने-आपको नहीं पाया है। अगर मृत्यु का घेराव न होता तो मनुष्य हमेशा के लिये अपूर्ण जीवन में ही बंधा रहता।

३०. मृत्यु द्वारा पीछा किये जाने पर मनुष्य पूर्ण जीवन के विचार की ओर जागता है और उसकी संभावना और उसके साधनों को खोज निकालता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सद्गुणों के उत्सव में

एक समय की बात है। एक भव्य महल था, जिसके बीचों-बीच एक गुप्त मंदिर था। किंतु आजतक उसकी देहली भी किसी ने पार नहीं की थी। और तो और, उसकी बाहरी चहारदीवारी तक भी पहुंचना मर्त्य प्राणियों के लिये सहज नहीं था। क्योंकि महल ऊंचे बादलों पर खड़ा था और आदिकाल से विरले ही वहां का मार्ग ढूंढ़ने में समर्थ हुए थे।

यह था 'सत्य' का महल।

एक दिन, वहां एक उत्सव का आयोजन हुआ; मनुष्यों के लिये नहीं वरन् उनसे अत्यन्त भिन्न प्रकार की सत्ताओं के लिये। इसमें वे छोटे-बड़े देवी-देवता आमंत्रित थे जो इस पृथ्वी पर 'सद्गुणों' के नाम से पूजे जाते हैं।

उस महल के बाहरी भाग में एक बहुत बड़ा कक्ष था। उसकी दीवारें, फर्श और छत स्वयं प्रकाशमान थीं, तिसपर हजारों अग्नि-स्फुलिंगों से और भी जगमगा रही थीं।

यह था 'बुद्धि का महाकक्ष'। यहां फ़र्श के पास प्रकाश बहुत हल्का था, नीलमणि के रंग का अति सुंदर गहरा नीला रंग छत की ओर अधिकाधिक तेज होता गया था। छत में हीरों के शमादान झाड़ों की तरह लटके हुए थे। उनके हजारों मुखों से आंखों को चौंधियानेवाली किरणें चारों ओर फूट रही थीं।

सद्गुण अलग-अलग आये पर शीघ्र ही अपनी-अपनी रुचि के अनुसार टोलियां बनाकर बैठ गये। सभी प्रसन्न थे कि आज ऐसा दिन आया जब वे एक बार इकट्ठा हो सके। वे साधारणतः इस जगत् में और अन्य जगतों में बिखरे रहते हैं, परायों की भीड़ में छितरे रहते हैं।

इस उत्सव की अध्यक्षता की 'दिल की सचाई' ने जिसका वेश जल के समान निर्मल था, उसके हाथों में घनाकार अति विशुद्ध स्फटिक था। उस स्फटिक से वस्तुएं वैसी दिखलायी देती थीं जैसी वे वास्तव में थीं, जैसी वे साधारणतया प्रतीत होती हैं उससे सचमुच में बहुत ही भिन्न, क्योंकि उसमें वस्तुएं हूबहू, बिना किसी विकृति के प्रतिबिम्बित होती थीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके पास ही दो मूर्तियां विश्वस्त अंगरक्षकों की तरह खड़ी थीं; एक थी 'विनम्रता', उसका भाव आदरपूर्ण और साथ ही गर्वीला था, और दूसरी ओर उन्नत ललाट, उज्ज्वल चक्षु, दृढ़ हास्यपूर्ण अधर, प्रशांत, निश्चिन्त भंगिमावाला 'साहस' था।

'साहस' के समीप उसके हाथ में हाथ डाले बुरके में लिपटी एक नारी खड़ी थी। केवल उसकी तीक्ष्ण आंखें ही घूंघट को भेद कर चमकती हुई दीख पड़ती थीं। वह थी 'सावधानता'।

सबके बीच एक-दूसरे के पास आती-जाती, फिर भी हर समय सबके निकट दीखती थी 'उदारता',—एक ही साथ सतर्क एवं शांत, कर्मरत एवं विवेकपूर्ण। उस समूह में वह जिधर निकल जाती उधर ही अपने पीछे उज्ज्वल मृदु प्रकाश की रेखा छोड़ती जाती थी। यह प्रकाश जो उससे छंटकर विकीर्ण हो रहा था वास्तव में उसे अपनी श्रेष्ठ सखी, चिर सहचरी और जुड़वां बहन 'न्यायपरता' से मिल रहा था, किन्तु वह उसके पास सूक्ष्म रूप में, अधिकांश दृष्टियों से ओझल रहकर आ रहा था।

'दया', 'धैर्य', 'सौम्य', 'विनय' और ऐसे अनेकों की उज्ज्वल सेना 'उदारता' को घेरे हुए थी।

सभी आ चुके थे। कम-से-कम सबकी ऐसी धारणा थी।

किन्तु यह लो, वह कौन है ? स्वर्ण-द्वार पर हठात् एक नवागन्तुक!

द्वारपालों ने बड़ी कठिनाई से उसे अन्दर आने दिया था। न तो उन्होंने उसे कभी पहले देखा था और न ही उसकी आकृति में उन्हें कोई प्रभावशाली चीज लगी।

वह नवीन वयस की थी, उसकी देह दुबली-पतली और उसकी सफेद पोशाक साधारण, बल्कि गरीब जैसी थी। वह डरती-सी, झिझकती-सी, कुछ डग आगे बढ़ी। पर स्पष्ट ही वह अपने को ऐसी वैभवशाली उज्ज्वल भीड़ के बीच पाकर खो-सी गयी। वह ठिठक गयी, उसे पता न था कि किसकी ओर जाये।

उधर 'सावधानता' साथियों से कुछ परामर्श करके उनके अनुरोध पर अनजाने मेहमान की ओर बढ़ी। वह जरा गला साफ करके, जैसा कि दुविधा में पड़े लोग थोड़ा सोचने के लिये करते हैं, उसकी ओर अभिमुख होकर बोली :

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हम सब जो इस महल में इकट्ठे हुए हैं एक-दूसरे के नाम और गुण जानते हैं। आपको आते देखकर हमें बड़ा आश्चर्य हो रहा है। आप विदेशी-सी प्रतीत होती हैं। कम-से-कम ऐसा नहीं लगता कि आपको कभी देखा हो। क्या आप यह बताने की कृपा करेंगी कि आप कौन हैं?"

नवागता ने लंबी सांस लेते हुए उत्तर दिया :

"हाय! मुझे आश्चर्य नहीं कि मुझे इस प्रासाद में विदेशी माना जा रहा है। मैं कहीं कदाचित् ही आमंत्रित होती हूं।

"मेरा नाम है 'कृतज्ञता'।"

(१९०४) —श्रीमां

नीलम की कहानी

(यह कहानी माताजी ने १९०६ में अधिमानस-सृष्टि के आदर्श को प्रकट करते हुए लिखी थी।)

सुदूर पूर्व में एक छोटा-सा देश था। वहां हर चीज में सुव्यवस्था थी और हर बात में सामंजस्य था। हर व्यक्ति अपने-अपने स्थान पर, सबके अधिक-से-अधिक भले के लिये अपनी भूमिका पूरी करता था।

किसान, कारीगर, मजदूर, व्यापारी, सबकी एक ही महत्त्वाकांक्षा थी, एक ही चिंता थी—सब अपना काम अच्छे-से-अच्छा करना चाहते थे, और वह भी अपने हित में। पहला कारण तो यह था कि उन्होंने अपना काम अपनी मरजी से, आजादी के साथ चुना था; वह उनकी प्रकृति के साथ मेल खाता था और उन्हें आनंद देता था, और फिर वे जानते थे कि हर अच्छे काम का उचित पुरस्कार होता है। उन्हें, उनके बीवी-बच्चों को फालतू ऐश के सामान तो नहीं, पर जरूरत की सभी चीजें प्रचुर मात्रा में मिलती थीं और जीवन शांत और सुखमय था। लोग संतुष्ट थे।

वैज्ञानिक और कलाकार संख्या में कम थे लेकिन सबको अपने विज्ञान और अपनी कला से प्रेम था। उनका कृतज्ञ देश उनके जीवन-यापन की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यवस्था करता था क्योंकि उनके उपयोगी शोधों और ऊंचा उठानेवाले कर्मों का लाभ और सुख पहले उन्हें ही मिलता था। इस प्रकार जीवन-संघर्ष की चिंताओं से मुक्त वैज्ञानिकों का एक ही लक्ष्य था कि उनके परीक्षण, उनके शोध-कार्य, उनका गंभीर और निष्ठापूर्ण अध्ययन मानवजाति के दुःख दूर करने में लगें; ज्योति और सुख देनेवाले ज्ञान के आगे अंधविश्वास और भय को अधिक-से-अधिक दूर खदेड़ दिया जाये; मानवजाति के तेज, ओज और योगक्षेम में वृद्धि हो। कलाकार अपनी सारी संकल्प-शक्ति को कला पर केंद्रित कर सकते थे और उनकी एक ही इच्छा थी: अपनी उच्चतम, व्यक्तिगत धारणा के अनुसार सौंदर्य को व्यक्त करें।

उनमें मित्र और पथ-प्रदर्शक के तौर पर चार दार्शनिक थे जिनका सारा जीवन गहरे अध्ययन और आलोकमय चिंतन-मनन में बीतता था ताकि मानव ज्ञान के क्षेत्र को निरंतर विस्तृत करते रहें और अभीतक जो रहस्य है उसके परदों को एक-एक करके उठाते जायें।

सभी संतुष्ट थे क्योंकि उनके आगे कोई स्पर्धा या प्रतियोगिता नहीं थी और वे अपनी मरजी के अनुसार अपने-आपको काम या अध्ययन में लगा सकते थे। सब सुखी थे इसलिये उन्हें बहुत-से विधि-विधानों की जरूरत न थी। उनका कानून सबको बस एक सरल-सहज-सी सलाह देता था: "अपने-आप बनो।" सबके लिये बस एक ही विधान था जिसका कठोरता के साथ पालन करना जरूरी था और वह था सद्भाव और उदारता का विधान जिसका उच्चतम तत्त्व है न्याय। यह उदारता किसी प्रकार के अपव्यय को नहीं स्वीकारती और न ही स्वतंत्र विकास में किसी तरह की बेड़ियों को सह सकती है।

इस सुव्यवस्था और सामंजस्य के देश में एक ऐसे राजा का राज था जो केवल इसीलिये राजा बना था क्योंकि वह सबसे बढ़कर समझदार और बुद्धिमान् था, उसीके अंदर यह क्षमता थी कि उन्हें वह सब दे सके जिसकी उन्हें जरूरत हो; केवल वही इतना प्रबुद्ध था कि दार्शनिकों के उच्चतम चिंतन को समझ सके और उनका मार्ग-दर्शन भी कर सके और साथ ही इतना व्यावहारिक था कि अपनी प्रजा की, जिसकी आवश्यकताओं से वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भली-भांति परिचित था, सुव्यवस्था और कल्याण पर नजर रख सके।

हम जिस समय की कहानी कह रहे हैं उस समय यह विलक्षण राजा काफी वयस्क हो चुका था—वह दो सौ वर्ष का था—और यद्यपि उसका दिमाग बिल्कुल साफ था, वह पूरी तरह सजीव और सतर्क था, फिर भी अपने कंधों पर पड़ी भारी जिम्मेदारियों से कुछ थक-सा चला था और अब निवृत्त होने की सोच रहा था। उसने अपने छोटे लड़के, मेओथा को पास बुलाया। राजकुमार साधारण पुरुषों से ज्यादा सुंदर और नाना प्रकार की बातों में प्रवीण था। उसकी उदारता न्याय को छूती थी; उसकी बुद्धि सूर्यालोक की न्याईं थी और उसकी समझदारी की किसी से तुलना नहीं हो सकती थी। उसने अपनी जवानी का कुछ समय मजदूरों और कारीगरों में बिताया था ताकि अपने अनुभव से जान सके कि उनके जीवन की मांगें और आवश्यकताएं क्या हैं। और बाकी समय एकांत में या फिर महल के चतुष्कोण मीनार में दार्शनिकों को गुरु मानकर अध्ययन या ध्यानस्थ विश्राम में लगाया था।

मेओथा ने सादर अभिवादन किया तो बाप ने उसे अपने ही आसन पर बिठाकर कहा : "अच्छा बेटे, मैंने इस देश में एक सौ सत्तर वर्ष से अधिक राज किया है और अभी सभी सद्‌भावनावाले मेरे शासन से संतुष्ट मालूम होते हैं, लेकिन मुझे भय है कि शीघ्र ही प्रौढ़ अवस्था मुझे सुव्यवस्था रखने और सबका कल्याण करने के बहुत भारी दायित्व को खुशी से उठा सकने में बाधा देगी। मेरे बालक, तुम ही मेरी आशा और मेरे आनंद हो, प्रकृति तुम्हारे साथ बहुत उदार रही है, उसने तुम्हारे ऊपर उपहारों की वर्षा की है और बुद्धिमत्तापूर्ण तथा नियमित शिक्षा के द्वारा तुमने उन्हें संतोषजनक रूप में विकसित किया है। सारा देश, सामान्य किसानों से लेकर महान् दार्शनिकोंतक, सबको तुम्हारे ऊपर संपूर्ण और सहानुभूतिपूर्ण विश्वास है। तुमने अपनी उदारता के द्वारा उनका प्रेम और न्याय द्वारा उनका आदर-सम्मान कमाया है, और यह स्वाभाविक है कि जब मैं भली-भांति कमाए विश्राम की मांग करूंगा तो वे स्वाभाविक रूप से तुम्हें ही चुनेंगे। लेकिन तुम जानते हो कि सदा प्रतिष्ठित रिवाज के अनुसार कोई भी इस सिंहासन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर तबतक नहीं बैठ सकता जबतक कि वह दोहरा न हो, अर्थात्, सर्वांगीण अनुकूलता के साथ, उसके साथ एक न हो जाये जो उसे क्षमताओं और रुचियों के पूर्ण संतुलन के द्वारा संतुलन की शांति दे सके। इस रिवाज की याद दिलाने के लिये ही मैंने तुम्हें यहां बुलाया है और साथ ही यह पूछना था कि क्या तुम ऐसी युवती से मिले हो जो हमारी इच्छा के अनुसार अपने जीवन को तुम्हारे जीवन के साथ जोड़ने के लिये योग्य और इच्छुक हो?"

"पिताजी, मेरे लिये बड़े आनंद की बात होती यदि मैं यह कह पाता कि मैंने उसे पा लिया है जिसके लिये मेरी सारी सत्ता प्रतीक्षा कर रही है। पर खेद है, अभीतक बात ऐसी नहीं है। इस राज्य की प्रायः सभी विकसित लड़कियां मेरी परिचित हैं, उनमें से बहुतों के लिये मुझे सहानुभूति है, सच्चा अहोभाव है परंतु किसीने मेरे अंदर वह प्रेम नहीं जगाया जो एकमात्र न्यायसंगत बंधन बन सके, और शायद अपने-आपको धोखा दिये बिना मैं यह भी कह सकता हूं कि उस ओर से भी किसीके अंदर मेरे लिये प्रेम के अंकुर नहीं फूटे। आप सौजन्य के कारण मेरी परख को बहुत मूल्य देते हैं, इसलिये मैं आपको अपने मन की बात बताता हूं। मुझे लगता है कि अगर मैं देश-विदेश के रीति-रिवाज और विधि-विधान जान लूं तो मैं आपकी छोटी-सी प्रजा पर शासन करने के लिये उपयुक्त हो सकूंगा। मेरी इच्छा है कि एक वर्ष के लिये पृथ्वी-भ्रमण कर लूं। सब चीजें देखूं और अपने-आपको ज्यादा अच्छा बना सकूं। इसलिये मेरा निवेदन है पिताजी कि मुझे इस यात्रा के लिये अनुमति दे दीजिये। और कौन जाने, शायद मैं अपनी जीवनसंगिनी को लेकर लौटूं जिसकी सारी सुख-शांति, सारी सुरक्षा मैं ही हो सकूं।"

"यह समझदारी-भरी इच्छा है। जाओ बेटा, पिता के आशीर्वाद तुम्हारे साथ होंगे।"

*

पश्चिम के सागर में एक छोटा-सा टापू है जिसकी निधि उसके वन हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गर्मियों का एक सुहावना दिन है। एक जवान लड़की विशाल वृक्षों की छाया तले चली जा रही है। उसका नाम है लिआन। वह सभी औरतों से बढ़कर सुंदर है। उसका लचीला शरीर हल्के कपड़ों में मनोहर रूप में लहरा रहा है। उसका हल्के रंग का चेहरा लालिमा के कारण और अधिक गोरा लगता है। उसके बालों का जूड़ा अपने जरा-से सुनहरे रंग के कारण और भी चमकदार हो उठा है। ऐसा लगता है कि उसकी आंखें मानों नील गगन में खुलनेवाले दो द्वार हैं जो उसके चेहरे को एक बौद्धिक आभा से चमका देते हैं।

लिआन अनाथ और जीवन में एकदम एकाकी है। उसके अनुपम सौंदर्य और विरल बुद्धि ने बहुतों की वासना या सच्चे प्रेम को आकर्षित किया है। लेकिन उसने अपने स्वप्न में एक पुरुष को देखा है, एक ऐसे पुरुष को जो अपनी वेश-भूषा से किसी दूर देश का मालूम होता था। उस अनजाने व्यक्ति की मधुर, गंभीर दृष्टि ने लड़की के हृदय को जीत लिया और अब वह किसी और से प्रेम नहीं कर सकती। वह तभी से आशा कर रही है, प्रतीक्षा कर रही है और जो भव्य चेहरा उस रात देखा था उसके सपने लेने के लिये स्वतंत्र होने के उद्देश्य से ही वह इन ऊंचे-ऊंचे पेड़ों के बीच इस तरह घूमा करती है।

प्रखर सूर्यालोक पत्तों में से छनकर नहीं आ सकता, चलनेवाले पगों के नीचे की काई पर सिलवटें तो पैदा होती हैं पर कोई आवाज नहीं होती। चारों ओर दोपहर की नींद का वातावरण है लेकिन फिर भी उसे लगता है कि अदृश्य सत्ताएं आस-पास के जंगलों में छिपी हैं और सूक्ष्म जांच करनेवाली आंखें पेड़ों के पीछे से झांक रही हैं।

अचानक किसी पक्षी का स्पष्ट और आनंदमय गान मानों कूद पड़ता है और हर कठिनाई लुप्त हो जाती है। लिआन जानती है कि वन परोपकारी है और अगर उसके अंदर कुछ सत्ताएं रहती हैं तो वे उसका बुरा नहीं चाह सकतीं। उसके अंदर एक मधुर भाव उमड़ आता है और सब कुछ अच्छा और सुंदर लगने लगता है। उसकी आंखें भर आती हैं। अपने अजाने प्रेमी के बारे में उसकी आशा कभी इतनी तीव्र नहीं हुई थी। उसे लग रहा था कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हवा में कांपते वृक्ष, पैरों के नीचे चरमराती हरियाली और मधुर गान गाते हुए पक्षी, सभी उसकी बात कर रहे हैं जो उसकी प्रतीक्षा कर रहा है। इस विचार से ही कि शायद वह उसके मार्ग में मिलने ही वाला है, वह कांपती हुई रुक गयी। हृदय की धड़कनों को संभालने के लिये छाती पर हाथ रख लिया और उत्कृष्ट भावनाओं का पूरा रसास्वादन करने के लिये आंखें बंद कर लीं। संवेदन अधिकाधिक तीव्र हो चला। वह इतना यथार्थ है कि लिआन को लग रहा है जरूर कोई है। ओह ! आश्चर्यजनक चमत्कार ! वह खड़ा है। सचमुच वही है, ठीक वैसा ही जैसा उसने स्वप्न में देखा था . . .। साधारणतः पुरुष जैसे होते हैं उससे बहुत अधिक सुंदर . . .। वह मेओथा ही था।

एक ही चितवन में दोनों एक-दूसरे को पहचान लेते हैं, एक चितवन में ही वे चिर प्रतीक्षा की और खोज के परमानंद की बातें कह लेते हैं, क्योंकि दोनों सुदूर भूतकाल में एक-दूसरे को जानते थे और अब उसकी निश्चिति प्राप्त कर ली है।

वह उसके बढ़े हुए हाथ में अपना हाथ पिरोती है और दोनों लिये-दिये विचारों से भरे मौन के साथ जंगल पार करते हैं। उनके सामने आनंद-विभोर सूर्य के नीचे शांत, हरित् समुद्र फैला हुआ है। समुद्र के किनारे एक बड़ा जहाज डोल रहा है।

विनीत, विश्वासपूर्ण, लिआन मेओथा के पीछे-पीछे उस नौका में चढ़ती है जो उनके लिये प्रतीक्षा कर रही थी और रेत पर आ लगी है। दो मजबूत चप्पू चलानेवाले उसे तेजी से समुद्र में खींचकर जहाज के पास खड़ा कर देते हैं।

जब छोटा-सा टापू क्षितिज में नजरों से ओझल होने लगता है तो युवती अपने साथी से कहती है : "मैं तुम्हारे लिये प्रतीक्षा करती रही, अब तुम आ गये हो, मैं बिना ननुनच के तुम्हारे पीछे हो ली। हम एक-दूसरे के लिये बने हैं; मैं यह अनुभव करती हूं; मैं जानती हूं। और मैं यह भी जानती हूं कि अब और हमेशा के लिये तुम मेरा सुख और मेरी सुरक्षा होगे। लेकिन मैंने अपने निवास-स्थान, इस टापू से और उसके सुंदर वनों से प्रेम किया है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और मैं यह जानना चाहूंगी कि तुम मुझे किस समुद्र-तट की ओर लिये जा रहे हो?"

"मैं तुम्हें सारी दुनिया में खोजता फिरा हूं और अब जब कि तुम मुझे मिल गयी हो और बिना कुछ पूछे-ताछे मैंने तुम्हारा हाथ पकड़ लिया है, तुम्हारी चितवन में ही मैंने यह पढ़ लिया है कि तुम मेरी प्रतीक्षा कर रही थीं। इस क्षण से और हमेशा के लिये मेरी प्रियतमा ही मेरी सब कुछ होगी, और अगर मैंने उससे छोटे-से वनों का टापू छुड़वाया है तो इसलिये कि उसे उसके अपने राज्य में पहुंचा दूं जो इस धरती पर एकमात्र ऐसा देश है जहां सामंजस्य है, वही एकमात्र प्रजा है जो उसके योग्य है।

(अक्तूबर १९०६)

श्रीअरविंद के साथ बातचीत

(परमाणुओं में जीवन, गुरु-शिष्य के संबंध इत्यादि के बारे में)

शिष्य—परमाणुओं का जीवन क्या है?

श्रीअरविंद—परमाणुओं के जीवन से तुम्हारा मतलब क्या है?

शिष्य—विद्युदणुओं की क्रियाशीलता, रासायनिक सादृश्य और ऐसी ही चीजें।

श्रीअरविंद—ये यांत्रिक हैं। हम परमाणु में ऐसी कोई चीज नहीं देखते जिसे हम जीवन कहते हैं लेकिन अणुओं में एक प्रकार का जीवन है, बहुत ज्यादा अंतर्लीन और यांत्रिक है, जिसमें व्यष्टि-भाव बिल्कुल नहीं होता। साधारणतः हम परमाणुओं में ऐसे लक्षण नहीं पाते। लेकिन वहां जो जीवन और चेतना होती है वह परमाणु के भीतर नहीं उसके चारों ओर चक्कर लगाती है, वैश्व सत्ता जीवन और चेतना के किसी रूप द्वारा परमाणु को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहायता देती है और जो कोई वैश्व सत्ता और चेतना में प्रवेश कर सके वह परमाणु के जीवन को अनुभव कर सकता है। जब मेज पर चोट पड़ती है तो यह शुद्ध रूप से यांत्रिक स्पंदन है लेकिन मेज के बाहर एक चेतना होती है जो उन स्पंदनों से क्षुब्ध होकर प्रत्युत्तर देती है। धातुओं में भी एक प्रकार का जीवन होता है। जगदीश बसु ने धातुओं को छोड़कर वनस्पतियों में जीवन की खोज करनी शुरू कर दी क्योंकि यह ज्यादा आसान है। अगर उन्होंने धातुओं के साथ अपने परीक्षण जारी रखे होते तो वे उनमें जीवन और चेतना की बहुत-सी विशिष्टताएं पाते।

निम्नतर सत्ताओं, परमाणुओं और भौतिक वस्तुओं की तुलना में मनुष्य व्यष्टि है, लेकिन कहा जा सकता है कि अभीतक वे भी व्यष्टि नहीं बने हैं। जब सामुदायिक अंतरात्मा पूरी तरह विकसित हो जायेगी तभी वे सच्चे व्यष्टि बन पायेंगे।

शिष्य—लौह शलाका जैसे भौतिक पदार्थ पर कुछ परीक्षण करने से लगता है कि वह कुछ कणों को अपने शरीर में सुस्थिर बनाये रखना चाहता है।

श्रीअरविंद—निश्चय ही यह आत्म-संरक्षण और परिरक्षण की वृत्ति जीवन का लक्षण है और धातुओं में थकान भी जीवन का लक्षण है।

६-९-१९२६

शिष्य—आध्यात्मिक साधना में गुरु-शिष्य का आदर्श संबंध क्या होना चाहिये ?

श्रीअरविंद—यह स्वयं शिष्य को ठीक करना चाहिये। सभी के लिये कोई सामान्य मापदंड नहीं बनाया जा सकता। केवल मन ही ऐसे आदर्शों और मापदंडों की मांग करता है। वह नियम बनाकर सारी चीज को कृत्रिम बना देता है।

शिष्य—क्या गुरु अपने शिष्यों में से अमुक को अधिक पसंद करते हैं?

श्रीअरविंद—दिव्य गुरु जो देते हैं निर्वैयक्तिक चीज होती है और दिव्य शक्ति के अंदर कोई पसंद नहीं होती, गुरु का मानव रूप भूलें करता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है—वह अपने-आपसे ऊंची किसी चीज का प्रतिनिधित्व करता है। गुरु में प्राणिक या मानसिक पसंद हो सकती है लेकिन वह जो देते हैं उसका निश्चय इसके द्वारा नहीं होता। हां, जब साधारण मनुष्य गुरु बन बैठते हैं तो उनमें अपनी पसंद-नापसंद हो सकती है।

शिष्य—क्या अहैतुकी भक्ति नहीं हो सकती?

श्रीअरविंद—अहैतुकी से तुम्हारा क्या मतलब है? दिव्य शक्ति कोई चीज मौज में आकर या मनमाने तरीके से नहीं करती, वह जो कुछ करती है उसके पीछे कारण होता है, लेकिन वह मानव कारण नहीं होता।

शिष्य—तब फिर भागवत कृपा का क्या अर्थ है?

श्रीअरविंद—इसका अर्थ यही है कि अगर तुम्हारे अंदर दोष हैं उनके होते हुए भी यदि उचित प्रकार की अभीप्सा है तो उच्चतर शक्ति तुम्हारे अंदर उतरेगी। दिव्य शक्ति विरोधी परिस्थितियों और दीखनेवाली असंभाव्यताओं पर विजय पाती है। भागवत कृपा में यह सत्य है कि वह श्रद्धा के लिये अनंत आधार प्रदान करती है। अगर तुम कुछ शर्तें पूरी कर सको और अपने-आपको उच्चतर शक्तियों के प्रति खोलो तो दोषों और कठिनाइयों के बावजूद शक्ति उतरेगी।

शिष्य—क्या वे शक्तियां शर्तें पूरी करने में सहायता नहीं देतीं?

श्रीअरविंद—हां, अन्यथा यह असंभव होता।

शिष्य—तो अंततः सब कुछ भगवान् की कृपा पर निर्भर है।

श्रीअरविंद—यह एक बहुत ऊंचे दृष्टिकोण से ठीक है, हमारी वर्तमान स्थिति में हमें शक्तियों की व्यवस्था को देखना और परिस्थितियों को स्वीकार करना होगा। मनुष्य को अपनी भूमिका निभानी है।

—***—

भक्ति मार्ग पर, धार्मिक मनुष्य को, एक अवस्था में साकार भगवान् में तृप्ति मिलती है। एक और अवस्था में निराकार भगवान् में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माला के कुछ मनके

पूज्य संपादिकाजी,

आपके द्वारा बहुत पहले लिखे संपादकीय ''पौरुष को चुनौती'' के उत्तर में लिखे पत्रों को पढ़कर मेंरे अंदर भी इस माला में कुछ मनके जोड़ने की तीव्र इच्छा जागी। मैंने सोचा, अनीति, अत्याचार, धोखा-धड़ी, की बातें तो हम लोग सुनते ही रहते हैं, यह लेखमाला ग्रीष्म ऋतु में समीर का काम देगी।

बात कुछ वर्ष पुरानी है। मेरी जीजी अपनी सहेली के विवाह-उपलक्ष्य में उड़ीसा गयीं। उस रोज रात को ११ के करीब मित्र-मंडली रिक्शा से घर जा रही थी। जीजी के साथ रिक्शा में उनकी सहेली बैठी थीं। बिचारा दुबला-पतला मरगिल्ला-सा रिक्शेवाला बाकी रिक्शाओं के साथ न चल पाने की वजह से पीछे छूट गया। सुनसान इलाका, गली-कूचों का रास्ता, अनजान शहर। दोनों का दिल बैठने लगा। रिक्शावाले को जल्दी और जल्दी चलने की हिदायतें देने लगीं और वह बिचारा अपनी भरपूर शक्ति लगाकर भी उसे तेज चलाने में असमर्थ निकला—जिसकी आशंका थी, वही हुआ, एक नुक्कड़ से एक साइकिल सवार इनके साथ हो आवाज़े कसने लगा, दोनों का दिल बैठने लगा, अभी तो कसर बाकी थी, साइकिल सवार की सीटी के साथ-साथ मोटर साइकिल पर सवार दो और लफंगे इनके पीछे-पीछे हो लिये। अब तो दोनों लड़कियों का खून जमने लगा। गुंडों ने रिक्शा का हत्था पकड़ा और जबर्दस्ती उसे एक गली में घुसाने की कोशिश करने लगे। दोनों लड़कियां अपनी पूरी शक्ति के साथ रिक्शावाले पर बरसीं, उसने भी अपनी एड़ी-चोटी का जोर लगाकर मुख्य सड़क पर ही बने रहने का प्रयास किया। कम-से-कम पांच मिनटतक इसी तरह गुंडों और रिक्शावाले के बीच रस्साकशी-सी चलती रही, उस जर्जर, हड्डियों के ढांचे मात्र में न जाने कौन-सा शक्तिमंत्र फूंक दिया गया था, वह किसी भी तरह गली में न घुसा और निरंतर रिक्शा को आगे बढ़ाता रहा !

प्रभु ने आशा का दीप झलकाया। कुछ ही दूर पर एक पेट्रोल स्टेशन नजर आया। रोशनी देखकर गुंडे जरा परे हटकर चलने लगे। सबकी जान में जान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयी। पेट्रोल स्टेशन रात के सन्नाटे में श्मशान-सा पड़ा था। जीजी और उनकी मित्र ने तबतक वहीं रोशनी में रुकने का निश्चय किया जबतक कि दूसरे साथी उन्हें ढूंढ़ते-ढूंढ़ते यहांतक न आ जायें। इधर रिक्शावाला भी उनके अंगरक्षक की भांति वहीं बना रहा। ये देखती क्या हैं; गुंडे ठीक उनके सामने सड़क के उस पार अंधेरे में खड़े हैं।

दोनों लड़कियों की तीव्र प्रार्थना शायद ऊपरवाले के पास पहुंच चुकी थी। कुछ देर बाद एक स्कूटरवाला पेट्रोल भरवाने आया। संभ्रांत दीखनेवाले उस युवक ने हवाइयां उड़े चेहरे देखकर माजरे को भांपने की कोशिश की। डरते-डरते दोनों ने उन सज्जन को अपनी मुसीबत का हवाला दिया। पहले तो उन्होंने दोनों को कसकर डांट पिलायी कि इतनी रात गये जरीदार कपड़ों और गहनों से लैस होकर स्वयं उन्होंने मुसीबत को निमंत्रण दिया। फिर बोले, डरने की जरूरत नहीं है, मैं तुम लोगों को घरतक पहुंचाकर आऊंगा। उधर गुंडे अपनी दाल गलती न देखकर पलक झपकते न झपकते नौ दो ग्यारह हो गये। उस वृद्ध रिक्शावाले ने भी सज्जन को बार-बार दुआएं दीं।

घर पहुंचकर उन सज्जन को धन्यवाद के चंद शब्द कहे तो बोले—मेरे प्रति आभार प्रकट करने का यही तरीका है कि यूं अपने-आप अपनी जान जोखिम में फिर कभी न डालना।

उस वृद्ध, गरीब रिक्शावाले को पुरस्कार देना चाहा तो उसने लेने से साफ इंकार कर दिया, बोला, बहन, मैंने नहीं ऊपरवाले ने सही-सलामत पहुंचाया है, उसका कर्ज तुम पैसे से नहीं चुका सकतीं।

निरुत्तर कर देनेवाला उत्तर थमाकर झुग्गी-झोंपड़ों में रहनेवाला वह वृद्ध फरिश्तों की कतार में जा पहुंचा।

इसी तरह की एक और घटना याद आ रही है—

पांडिचेरी आश्रम के स्कूल की छुट्टियां हुईं। २०, २२ विद्यार्थियों के एक दल ने उड़ीसा की सैर करने का कार्यक्रम बनाया। मद्रास के दर्शनीय स्थलों को देखकर सब स्टेशन पर जमा हो गये। जिस लड़के के पास टिकटों का लिफाफा था उसे किसी काम से कुछ टिकट निकालने की जरूरत पड़ी। पर्स का कोना-कोना छान मारा कहीं लिफाफा ही नहीं मिला, बिचारे के पैरों तले की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जमीन खिसक गयी। सबके चेहरे फक् पड़ गये। इधर रेल के चलने का समय करीब आ रहा था उधर ये लोग टी. टी. स्टेशन मास्टर और न जाने किसके-किसके पास जाकर दौड़-धूप कर रहे थे। रेल-अधिकारियों ने टका-सा जवाब दे दिया—आपके टिकट खोने के हम जिम्मेदार नहीं हैं, सफर करना है तो दुगने पैसे भरकर गाड़ी में बैठ जाओ।

गाड़ी चलने में दस मिनट रह गये। तभी भीड़ को चीरते हुए एक सज्जन पहुंचे और बोले, क्या आपके टिकट खोये हैं, सब एक साथ हां, हां कहकर चिल्ला उठे। तभी उन्होंने पास खड़े सुपरिन्टेण्डेन्ट से कहा कि दोपहर को उन्हें बस में गिरा टिकटों का एक लिफाफा मिला था जिसे वह यहां आफिस में खुद जमा कर गये थे। सुपरिन्टेंडेन्ट जब आफिस खोलने में आनाकानी करने लगा तो सज्जन ने अपनी जेब से कार्ड निकाल कर दिखाया कि वे 'इंडियन एक्सप्रेस' अखबार के रिपोर्टर हैं और अगर इन बच्चों को उनके टिकट न मिलेंगे तो कल अखबार की सुर्खियों में यह खबर छापेंगे। कहते हैं कि लातों के भूत बातों से नहीं मानते। रेल के जो कर्मचारी अबतक हाथ पर हाथ धरे बैठे थे वे ही आफिस की चाबी का पता लगाने चकरघन्नी बन गये। आखिर चाबी मिली, दराज में टिकटों का लिफाफा सुरक्षित रखा था, सज्जन टिकट लेकर गाड़ी के पास पहुंचे तो देखा वहां पुलिस जमा है। मामला समझ में आया कि समय होने पर गाड़ी चल पड़ी, तो दल के एक लड़के ने जंजीर खींच दी, अब यह पुलिस केस बन गया था। यहां भी वही सज्जन आगे आये और बोले इन बच्चों को जाने दीजिये मैं इनकी तरफ से जमानत भर दूंगा।

रेल चल पड़ी—कृतज्ञता के दो शब्द आंसुओं की झड़ी बन झड़ रहे थे।

लेख खत्म करते-करते चलिये एक और घटना सुनाती चलूं—

हमारे एक परिचित मद्रास-स्टेशन कुछ टिकट बनवाने गये। थके-मांदे पहुंचे तो देखा टिकट-घर बंद हो चुका था, कुछ देर वहीं बैठे रहे, जब झपकियां आने लगीं तो सोचा विश्राम-घर में कुछ देर आराम कर लें। सवेरे-सवेरे टिकट खिड़की पर पहुंचे, जेब में हाथ डाला और लकवा मार गया। बटुआ गायब। उस बटुए में उनके किसी मित्र के तीन-चार फ्रांस के टिकट भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे जिनको उन्हें बदलवाना भी था। कुल मिलाकर ३५, ४० हजार की जोरदार चपत पड़ी थी उनपर।

आस-पास बहुतों से पूछताछ की लेकिन क्या कोई आशा थी ?

दुःख से पागल हो उठे बेचारे। आखिर हवाई टिकटों के गुम हो जाने की इत्तला देने 'एयर इंडिया' के ऑफिस पहुंचे, जानकारी देकर बाहर निकले, अपना एक-एक कदम उन्हें मन मन का लग रहा था, मस्तिष्क में हथौड़े बज रहे थे और उन्हें इसकी भनकतक न मिली कि कोई उन्हें पीछे से पुकार रहा है। आखिर तब जाकर होश में आये जब 'एयर इंडिया' के सज्जन ने उनका कंधा झकझोर कर कहा कि महाशय शायद आपका खोया हुआ बटुआ मिल गया है . . .

ऐसी तेजी से वे अपने जीवन में शायद कभी न भागे होंगे। वहां जाकर देखा एक नवयुवक उनकी प्रतीक्षा में बैठा है। पहले उस युवक ने पर्स, उसके अंदर की चीजों का हुलिया पूछा, जब उसे विश्वास हो गया कि यह इन्हींका बटुआ है तो उन्हें थमा दिया।

यह कहने की जरूरत नहीं कि अंदर की पाई-पाई सही-सलामत थी। उस युवक ने बतलाया कि वह भी रात को स्टेशन गया था और बुकिंग ऑफिस के पास ही उसे यह बटुआ पड़ा मिला, अंदर की चीजें देखकर उसने यही ठीक समझा कि एयर इंडिया के ऑफिस में जाकर पता लगाये। अगर वहां से कोई जानकारी न मिलती तो वह पांडिचेरी आकर उन सज्जन से मिलता क्योंकि सौभाग्यवश पर्स के अंदर पांडिचेरी का पता पड़ा था।

न जाने कितनी देरतक वे युवक को अपने आलिंगन में बांधे रहे।

फिर उन्होंने बहुत ही सकुचाते हुए उससे कहा कि वे उसे दो हजार रुपये देना चाहते हैं। युवक ने हाथ जोड़कर अस्वीकार करते हुए कहा कि अगर उसे रुपये ही चाहिये होते तो यहांतक आने का कष्ट न उठाता। एयर इंडियावाले सज्जन को भी कुछ देने को उद्यत हुए तो वे बोले —कृपया, इनके सामने मुझे शर्मिंदा मत करिये।

हमारे परिचित ने युवक से बहुत आग्रह किया कि कम-से-कम उनके साथ दोपहर का भोजन वह स्वीकार कर लें। अपने बुजुर्ग का दिल रखने के लिये उसने होटल चलकर एक कप कॉफी पीना स्वीकार कर लिया।

—आपकी वन्दना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आश्रम में फूलों की प्रदर्शनी

शाम के यही कोई चार बजे होंगे, अचानक खट से दरवाजा खुला और किसी सिर के अंदर घुसने से पहले गले में लटकती माला अंदर आयी और उसके पदचिह्नों पर चलती हुई आवाज भी आ पहुंची। 'कल तीसरे पहर हमारे यहां फूलों की नुमाइश है और आप देखने आ रहे हैं'।

मैं सकपकाया। कैसी नुमाइश और कहां का निमंत्रण। यह तो निमंत्रण नहीं अदालत का समन मालूम होता है। 'कल तो दर्शन से पहले का दिन है, मुझे अवकाश ही कहां मिलेगा', मैंने बड़ी होशियारी के साथ बात काटने की कोशिश की। 'अच्छा तो फिर ठीक है, आप परसों सवेरे नौ बजे आ रहे हैं', फूलों से लदी वनबाला ने निश्चयात्मक लहजे में कहा और फट से मेरा दरवाजा बंद करने लगी। मैं उसे समझाना चाहता था कि मैं कहीं किसी प्रदर्शनी या किसी अन्य समारोह में नहीं जाया करता। 'मैं... मैं... तो...', 'जी, हां, मैं समझ गयी, आप परसों सवेरे ठीक नौ बजे आ रहे हैं। मैं आपकी प्रतीक्षा करूंगी', कहते हुए उसने दरवाजा बंद कर दिया और यह जा वह जा।...

हे भगवान्, यह अच्छी मुसीबत आयी। इधर बिना किसी विशेष काम-काज के अपनी मांद से निकलना मुश्किल और उधर वनबाला बनी हुई संचायिका का आग्रह। मानना भी मुश्किल और न मानना भी मुश्किल। खैर, अभी तो हजारों मिनट बाकी थे। हमने दिमाग के चिंतन-कक्ष का द्वार बंद कर दिया।

बीच का दिन तो पलक झपकाते बीत गया और वनबाला का परसों सिर पर आ गया। अब चिंता भूत की तरह सवार हुई और ऊपर से मजाक यह कि हमने अपने-आपको गुनगुनाते पाया :

दरवाजे को खोल दे माली
मुझे बुलाती डाली-डाली

इसका यही अर्थ हुआ कि वनबाला ने हमारे ऊपर जादू की छड़ी फेर दी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी और न चाहते हुए भी हम सम्मोहित हो गये थे। इसी अवस्था में नौ बजने को हुए।

उधर घड़ी की सूई नौ बजने को हुई
इधर पांव चकराये आज चढ़ेंगे गैल नयी।

और हमने अपने-आपको नुमाइश के दरवाजे पर पाया। लेकिन इतनी यात्रा काफी न थी।

सितारों के आगे जहां और भी हैं

खैर साहब, जब ओखली में सिर दिया तो फिर मूसलों से क्या डरना। हमने चढ़ाई शुरू कर दी। सबसे पहले कागज के कटे फूल दिखायी दिये। मन को कुछ अच्छा नहीं लगा। सादगी, पवित्रता, मैत्री आदि सुंदर-सुंदर नाम भले लिखे थे पर फूल तो कागजी ही थे। तो क्या इनसे मिलनेवाले संदेश भी कागजी फूल ही न होंगे? चार कदम आगे जाकर ही हमारी शंका का समाधान हो गया। एक बड़े सुंदर कागज पर कलात्मक ढंग से लिखी गयी एक कविता पुकार-पुकारकर ध्यान आकर्षित कर रही थी। उसकी पहली पंक्ति थी—

फूल नाम रख मेरा माली

एक छोटा-सा कागज का फूल भगवान् अंशुमाली से प्रार्थना कर रहा था कि उनकी करुणा उसे वास्तविक फूल में बदल दे, उसकी कृत्रिमता हटाकर उसे सत्य जीवन प्रदान करे और अपनी पूजा के योग्य बना ले। क्या अच्छे भाव थे! मुझे ख्याल आया, हमारे जीवन में भी बहुत कुछ कृत्रिम है। क्या इस नन्हें फूल की तरह हम भी करुणाघन से प्रार्थना नहीं कर सकते?

मैं वहीं ठिठक गया। अचानक मेरे हाथ को एक कोमल-से स्पर्श का अनुभव हुआ और एक मधुर ध्वनि सुनायी दी, 'ओह, आप आ गये, चलिये मेरे साथ'। आंख घुमाकर देखा, और कोई नहीं हमारी संचायिका हरे परिधान में सजी, गले में कदंब की माला और हाथों में मोतिया के गजरे पहने, कानों में हर-शृंगार लगाये सामने खड़ी थी। क्षण भंर के लिये लगा साक्षात् वनदेवी खड़ी हैं। अपना यह मान देखकर मैं बहुत खुश हो गया और उसके पीछे-पीछे चल पड़ा, मानों 'जित खेंचे तित जाऊं'।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हमारी नुमाइश कोई ऐसी वैसी चीज नहीं है', उसने कहा; 'राजाओं ने फूलों को विलास की सामग्री बना लिया था, सुंदर-सुंदर फूल उनकी सेज का काम देते थे। आपने दिल्ली में होनेवाली फूलवालों की सैर के बारे में तो पढ़ा ही होगा। बड़ा ही मादक दृश्य होता था, चारों ओर फूलों के ढेर लगे रहते थे। फूलवाले और गजरेवालियां बतियाने और लोगों को भरमाने में एक-दूसरे से आगे बढ़ जाते थे और देखनेवाले शौकीन अपना सब कुछ दांव पर लगा देते थे। दूसरी ओर भक्त लोग फूलों को भगवान् पर चढ़ाते थे, उनके हिंडोले बनाते थे और न जाने क्या-क्या उपयोग करते थे। लेकिन माताजी ने इन्हें एक और ही काम सौंपा है। मैं नहीं जानती कि इससे पहले फूल अपनी इस गरिमा से परिचित थे या नहीं पर इतना जरूर कह सकती हूं कि माताजी ने इन्हें भगवान् का सचेतन संदेशवाहक बना दिया है। अब हमें पता है कि हर फूल भगवान् की किसी विशेष देन का प्रतीक है। देखिये, मेरे हाथों के मोतिये पवित्रता का संदेश देते हैं और मेरे कान में पिरोये हुए हर-शृंगार, अभीप्सा, या भगवान् की ओर बढ़ने की इच्छा का प्रतीक हैं और भगवान् श्रीकृष्ण का प्यारा यह कदंब हमें ऊंची-से-ऊंची ज्योति की, अतिमानस सूर्य की याद दिलाता है'।

मैं वनबाला का भाषण सुन-सनकर मुग्ध हो रहा था। अचानक उसने एक सफेद सूखे से फूल की ओर इशारा किया, 'इसे देख रहे हैं? देखने में कैसा नीरस-सा लगता है, यह है बहुत विरल। ऐसे फूल भी ज्यादा नहीं मिलते और यह जिसका प्रतीक है वह तो और भी ज्यादा विरल है—निःस्वार्थता। और उस तरफ देखिये वे छोटे-छोटे सदा-बहार के फूल हमें और आपको प्रगति का संदेश दे रहे हैं। आप तो जानते ही होंगे, हमारे शास्त्रों ने हमेशा आगे बढ़ते रहने का आदेश दिया है। वे कहते हैं चरैवेति, चरैवेति। ये फूल भी यही कह रहे हैं। और उधर देखिये वह आकका पौधा, आपने भी बचपन में यही सुना होगा कि इससे सावधान रहना। इसका दूध आंख में लगते ही अंधे हो जाओगे, इसके पत्ते आपकी चोट पर लगाये गये होंगे, यह हनुमान जी का प्यारा फूल है और माताजी ने इसे नाम दिया है, 'साहस'!'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामने से कोई मूक संकेत हुआ और वनबाला हमें जहां-का-तहां खड़े रहने का आदेश देकर सामने के कमरे की ओर लपकी और हम इधर-उधर देखने और साथ ही गुनगुनाने लगे :

कर भूतल को अभिनयशाला
तुम कहां चलीं ओ वनबाला

अभी आगे की पंक्तियां याद करने की कोशिश चल ही रही थी कि उसने फिर से हाथ पकड़ा और दृढ़ता के साथ 'चलिये' का हुकुम मिल गया—कहां, क्यों, किसलिये, या तो भगवान् जाने या फिर जाने वनबाला। खैर, हमें ले जाकर एक अंधेरे कमरे में जमा कर दिया गया लेकिन इतनी छूट मिली कि कुरसी पर डटना चाहें तो कुरसी पर डटें और चाहें तो फर्श पर पसर रहें। एक आध मिनट के मौन के बाद अंधेरे में उजाला हुआ, रोशनी में बड़े-बड़े फूल हमारी आंखों के आगे आने लगे और पीछे से वनबाला तथा उसके सजातीय लोगों की आवाजें आने लगीं जो हमें फूलों के बारे में जानकारी दे रही थीं। तरह-तरह के रंग-बिरंगे फूल चित्रपट पर आने लगे और पीछे से तरह-तरह की ध्वनियां उनके नाम, तथा आध्यात्मिक अर्थ, उनसे संबद्ध सूक्तियां सुनाने लगीं। सचमुच सुंदर समन्वय था रेखा, रंग, भाव और ध्वनि का।

पंद्रह मिनट न जाने कहां खिसक गये। कमरे की खिड़कियां खुल गयीं और हमें आगे कूच करने का संकेत मिला। हम एक मेज पर आये जहां कुछ अंक लिखे थे और कई तरह के फूल सजे हुए थे। बात कुछ समझ में न आयीं। नीरस अंकों का इन सुंदर फूलों के साथ कैसा गठबंधन, शायद ये भी आधुनिकता से ग्रस्त हैं ? लेकिन रहस्य ज्यादा देरतक रहस्य न रहा। हमारी मार्गदर्शिका ने कहा, 'यह हमारी फूल-घड़ी है। कहते हैं कि जब लक्ष्मीजी धरती पर आयीं तो उन्हें समय का कुछ ख्याल न था क्योंकि समय विशेष रूप से धरती की चीज है और वे यहांपर नयी थीं, यहां सभी काम समय के हिसाब से किये जाते हैं। इससे लक्ष्मीजी को असुविधा होती थी। यह देखकर वनदेवियों ने उनके लिये घड़ी का आविष्कार किया। लक्ष्मीजी सौंदर्यप्रिय हैं अतः उनके लिये घड़ी भी सुंदर बनायी गयी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋतुओं की रानी ने फूलों के साथ यह समझौता कर लिया कि अमुक-अमुक फूल अमुक-अमुक समय खिला करेंगे। देखिये, यहां हमने उसी घड़ी का एक छोटा-सा नमूना पेश किया है। आप फूलों के जमघट के बीच जो अंक देख रहे हैं वे यह बताते हैं कि कौन-से फूल किस समय खिलते हैं। यहां ब्राह्म मुहूर्त से लेकर गोधूलितक खिलनेवाले सब तरह के फूल रखे हैं जो अपने-अपने खिलने का समय बता रहे हैं। आज का मनुष्य प्रकृति से दूर हो गया है अतः इनकी भाषा नहीं समझ पाता।'

बात सचमुच मजेदार थी। मुझे तो क्या, शायद मेरे पुरखों को भी इसका ख्याल न आया होगा। मैंने सोचा, घड़ी के साथ-ही-साथ शायद हमारे जाने का समय भी आ गया। अपनी मांद की ओर जा पाने की खुशी थी तो इस सौंदर्य-जगत् को छोड़ने की उदासी भी। लेकिन नहीं, वनबाला ने सूक्ष्म रूप से तो डोरे डाले ही थे, साथ ही इस भय से कि पघा तुड़ाकर रफूचक्कर न हो जायें हाथ भी पकड़े हुए थी। हमने एक और कमरे में प्रवेश किया। उसने कहा, 'यहां आप जैसे उपयोगितावादी भी कुछ संतोष लाभ करेंगे। यह देखिये, ये रहे नीम के फूल। माताजी ने इन्हें आध्यात्मिक वातावरण का नाम दिया है, यह है केवड़ा या आध्यात्मिक सुरभि, उधर अमलतास आपको कल्पना-लोक में ले जाने को तैयार है। यह करेले का फूल है जिसे माताजी ने मधुरता का नाम दिया है, उसके साथ ही 'प्रचुरता' है जिसे हिंदी में कहीं काशीफल, कहीं सीताफल तो कहीं कोल्हा कहते हैं। और यह जानते हैं क्या है? कृपणता यानी कटहल। उधर से शिवजी का प्रिय बिल्व भक्तिभीने शब्दों में इच्छा और कामना से ऊपर उठने की सलाह दे रहा है। इधर देखिये, ये लाल-लाल टमाटर 'प्रेम' का और ये अंगूर के गुच्छे 'सच्चे आनंद' का संदेश दे रहे हैं।'

वनबाला ने मेरी आंखों में आंखें डालते हुए कहा, 'आप आसानी से पकड़ में नहीं आते, आज आ गये हैं तो आसानी से कन्नी न कटा पायेंगे। यह देखिये, अगले कमरे में एक चित्र रखा है, ऊपर एक सफेद गोला-सा है और नीचे फूल-पत्ते किसी विशेष भाव के साथ खड़े हैं। और क्या है, क्या नहीं है यह आप स्वयं देखिये और इस चित्र को एक नाम दे दीजिये'।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह अच्छे रहे, यहां तो परीक्षा भी शुरू हो गयी। सचमुच जीवन में पग-पग पर परीक्षा होती रहती है, उससे पिंड छुड़ाना असंभव है। सफेद गोले को किसीने सूर्य माना था, किसीने चंद्रमा और कोई उसे धरती माता का प्रतिबिंब ही माने बैठा था। इच्छा न होते हुए भी परीक्षा देनी पड़ी और हमने शीर्षक दे दिया, 'प्रकाश की ओर उठते हुए'। सूर्य-चंद्र आदि की बहस में से निकलने के हमारे इस प्रयास से वनबाला के आनन पर स्मित-रेखा दौड़ गयी। अब आखिरी परीक्षा थी। मेज पर बहुत सारे फूल फैले हुए थे। उनपर एक नजर डालकर आंखें बंद कर लेने का आदेश हुआ, हमने ऐसा ही किया। अब वनबाला हमारी नाक के पास एक-एक फूल लानेवाली थी और हमें बिना देखे, सिर्फ जरा-सा सूंघकर यह बताना था कि वह कौन-सा फूल है। खैर साहब, पहला फूल नाक के पास आया और उसके साथ ही हमने कहा :

सुर्खरू होता है इनसां आफतें आने के बाद।
रंग लाती है हिना पत्थर पै घिस जाने के बाद॥

हिना या मेंहदी, हमें बताया गया, इसका अर्थ है समस्त शक्तियों का भगवान् की ओर मुड़ना।

अभी आंखें खोलने की इजाजत न थी। दूसरा फूल नाक के पास आया और हमने कहा :

यही आस अटक्यो रह्यो अलि गुलाब के मूल।
ऐहें बहुरी वसंत ऋतु इन डारिन वे फूल॥

'गुलाब' वनबाला ने बताया, 'यह भगवान् के प्रति समर्पण का प्रतीक है।'

इस बार गंध से पहचानने में कुछ देर लगी। गंध परिचित तो थी पर बहुत समय पहले बिछुड़े परिचितों की तरह कुछ अजनबी-सी, आखिर हमने माथे पर तेवर डालकर कहा,

गुलिस्ता में जहां में फूल भी हैं और कांटे भी।
जो यां पर गुल के शैदा हैं उन्हें क्या खार का खटका॥

'बबूल' उसने कहा, 'यह ज्ञान है। लीजिये, परीक्षा में उत्तीर्ण होने के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपलक्ष्य में तीनों फूल आपको उपहारस्वरूप मिलेंगे, इसका मतलब यह हुआ कि आप हमारी प्रदर्शनी से यह संदेश लेकर जा रहे हैं कि आपकी सभी शक्तियां भगवान् की ओर मुड़ी होंगी तो आप भगवान् के प्रति समर्पण कर पायेंगे और तब आपको सच्चा ज्ञान प्राप्त होगा। ऊपर से यह एक छोटा-सा फूल और लेते जाइये। ये एक छोटी-सी नौका है जिसमें नन्हें-नन्हें सफेद फूल बैठे हैं। यह आपके हृदय में विराजमान दिव्य सत्ता के प्रतीक हैं। यह फूल है 'दिव्य उपस्थिति', मेरे मुंह से निकला :

फूलों में हंसता दीख पड़ा
मेरा प्रियतम साकार मुझे

अब हम दरवाजेतक आ पहुंचे थे। यहांतक आने की अनख तो कब की दूर हो चुकी थी। वनबाला के लिये कृतज्ञता प्रकट करना तो उसे पसंद न आता . . .

अदब से चूमके हम आस्ताना लौट पड़े !

मेरी बीमारी

कहने को तो लोग बहुत-सी बातें कहा करते हैं, परंतु जब अपने सिर पर मुसीबत आती है तो सब-के-सब लंबी-चौड़ी बातें भूल जाया करते हैं। अब मेरी ही बात ले लो न ! कितनी बार मैंने औरों को समझाया है कि स्वर्ग और नरक कहीं और नहीं है, हम अपने-आप ही अपने लिये स्वर्ग को नरक और नरक को स्वर्ग बना लेते हैं।

परंतु जब मैट्रिक की अंतिम परीक्षा सिर पर आयी तो अध्यापकों की पढ़ाई हुई ये सब बातें तो दिमाग से ऐसे गायब हो गयीं जैसे गुडूची खाने से ज्वर। बड़ों से सुना था कि अंतिम परीक्षा बहुत ही कड़ी होती है। उसपर जीवन का सारा भविष्य निर्भर है। अगर उसमें अच्छे अंक आ गये तो कॉलिज में स्वागत होता है, नौकरी भी अच्छी मिल जाती है और ससुराल भी दीया लेकर ढूंढ़ने आती है, और उसमें फिसड्डी रह गये तो नियुक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करनेवाले भी थर्ड क्लास कहकर मुंह मोड़ लेते हैं और दूसरी ओर भी किसी अच्छे घर की आशा नहीं रह जाती।

खैर, ऐसे अवसर पर अच्छे विद्यार्थियों के उदाहरण सामने आते रहते हैं। सुना है, इसी विद्यालय में सुमन जी पढ़ा करते थे जो आज भारत सरकार में सचिव के पद पर हैं। कहते हैं, पढ़ते समय न उन्हें खाने का होश होता था न पहनने का। मां ने जबर्दस्ती करके कुछ खिला दिया तो दो कौर खा लिये और नहीं तो वह भले और उनकी किताबें भलीं।

एक बार तो नौबत यहांतक पहुंच गयी कि घरवालों के बातचीत करने से चिढ़कर उन्होंने सामने बगीचे में नीम के पेड़ पर बैठकर पढ़ना शुरू कर दिया। सवेरे साढ़े पांच के आस-पास पेड़ पर चढ़ जाते और शाम को सात से पहले न उतरते। बीच में कोई खाना देने जाता तो उसे ऊपर से ही ढेले मारकर भगा देते थे। रात को उनके कमरे में हमेशा रोशनी जलती ही दिखायी देती थी। किसी की हिम्मत थी भला जो उनको टोक देता। इस तरह से पढ़-पढ़कर सुमन जी बी. ए., एम. ए. ही नहीं, आई. सी. एस. में भी पहले आये और आज उनकी स्थिति देखकर सबको ईर्ष्या होती है। बस, मैंने भी निश्चय कर लिया है कि कल से सुमन जी की तरह परिश्रम करूंगा और उसके बाद भी पहला न आया तो अपना नाम बदल डालूंगा।

अब सवाल यह पैदा हुआ कि मैं नीम का पेड़ कहां से पाऊं! सुमन जी तो छोटे-से गांव के रहनेवाले थे। मकान के आस-पास ही बहुत से खेत और बगीचे थे, पर मैं तो बीच शहर में रहता हूं। यहां तो नीम का पेड़ क्या पत्ता भी नहीं दिखायी देता। हरियाली के नाम पर छत पर दो-चार गमलों में पौदीना लगा है।

काश, मैं परियों की तरह हल्का-फुल्का होता और इसीपर बैठकर काम कर सकता। परीक्षा सिरपर आ रही थी और यहां नीम का पेड़ तलाश करने में ही एक सप्ताह बीत गया। नीम का पेड़ तो न मिला, हां, इतना लाभ अवश्य हुआ कि सब परिचित-अपरिचित मुझे कनखियों से देखकर मूंछों में मुस्कराने लगे। मैंने यह सब देखा तो जरूर, पर उसकी परवाह न की।

अब मेरे सामने समस्या थी कि मैं कहां बैठकर पढ़ूं। मैंने सोचा, पेड़ों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवनी-शक्ति होती है इसीलिये सुमन जी पेड़ों पर बैठकर पढ़ा करते होंगे। मैं बाजार जाकर दो-चार क्रोटन के पौधे ले आया। उनके ऊपर न सही, उनसे घिरकर पढ़ूंगा। पौधों के गमले छत पर रखवा दिये और डांट-डपटकर छोटी बहन मुन्नी को राजी कर लिया कि वह रोज चुपके-से सवेरे पांच बजे उठा दिया करे। उसने उठा दिया और हम भी शहीदों की तरह कफन बांधकर आई. ए. एस. में पहले आने के स्वप्न लेते हुए ऊपर चढ़े। घर में अभी सब सो रहे थे।

माघ की सर्दियां थीं। मैं किताबें लिहाफ में लपेटे जीने पर चढ़ रहा था। सारा शरीर कांप-कांप उठता था, दांत बजने लगे थे, पर मैं अपने दृढ़ निश्चय पर अडिग, ऊपर चढ़ता ही गया। लेकिन यह क्या, अभीतक सूर्य नारायण क्यों नहीं आये ? क्या उन्हें भी ठंड लग रही है या सर्दियों के कारण रेवड़ियां और गजक खाते देर हो गयी है ? रोज तो वे मेरे उठने से काफी पहले आ जाया करते हैं, आज मुझे विशेष पढ़ाई करनी है तो आज ही उन्होंने देर कर दी। खैर, मैं ऊपर पहुंच गया और क्रोटन के गमलों के बीच में जा बैठा। बैठने को तो लिहाफ में किसी तरह से लिपटकर बैठ गया, पर बोरसी की याद बहुत सता रही थी। मैं सूर्य नारायण की प्रतीक्षा करने लगा।

अचानक किसी ने लिहाफ खींचा। मैं चौंक पड़ा। देखा, मैं ७ का अंक बना हुआ लिहाफ में लिपटा हुआ हूं। किताबें पास ही पड़ी हुई, स्याही में नहा रही हैं और सूर्य भगवान् झुक-झुककर मुझे देख रहे हैं। मैं कुछ समझ न पा रहा था कि आखिर मामला क्या है, मैं कौन हूं और यहां क्या कर रहा हूं और यह सब क्या है ?

इतने में पिता जी की आवाज आयी, "ओहो ! बरखुर्दार यहां बैठकर पढ़ रहे हैं। ऐसे तो तुम हो चुके मैट्रिक में पास। उधर सारा घर परेशान है कि आखिर तुम कहां चले गये। तुम्हारी मां मुझे कोस रही हैं कि मैंने कल जो जरा सख्त-सुस्त कह दिया था उससे कहीं बेटा रूठ न गया हो। घर के लोग, अड़ोसी-पड़ोसी, सब तुम्हें तलाश करने में लगे हैं और तुम यहां मैट्रिक पास कर रहे हो।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात कोई भी कड़ी न थी, पर कहने का ढंग कुछ ऐसा था कि एकदम मुझे पसीना आ गया और मैं नीचे को भागा।

इसके परिणामस्वरूप और कुछ हुआ हो न हुआ हो, हमारी जान-पहचानवालों में यह जरूर फैल गया कि मैं बहुत जोर से पढ़ाई कर रहा हूं और आई. ए. एस. की आशा में खून-पसीना एक कर रहा हूं। बात यह है कि मेरे गुम हो जाने की बात देखते-देखते सब जान-पहचानवालों में फैल गयी थी और उसकी बदनामी से बचाने के लिये मां ने यह किस्सा शुरू कर दिया था। फिर क्या था ? मेरे शुभचिंतकों की सेना तैयार हो गयी। कोई शाबाशी देता तो कोई कहता, "बेटा, इतनी मेहनत न करो, जरा शरीर का भी ख्याल रखो। शरीर ठीक न हुआ तो पढ़ाई किस काम की ?"

इसी तरह मुझे उपदेश की खुराकें पिलायी जाने लगीं। पिताजी बहुत बड़े आदमी हैं, उनसे बहुतों को काम पड़ता है, लेकिन वह किसीसे एक छदामतक नहीं लेते, इसलिये उनसे काम निकालने की चिंता में लोग आ-आकर मुझे सलाह की घूंस देने लगे और मां के सामने भी मेरी चिंता में दुबले होने लगे। कोई मूसली दे गया, कोई शतावरी ले आया, किसी ने सच्ची ताजी असगंध मंगा दी। और हर एक यही कहता था कि मैं परिश्रम के मारे कमजोर हुआ जा रहा हूं। पहले तो मैं उनकी बातों पर हंस देता था। फिर धीरे-धीरे मुझे शंका होने लगी कि कहीं उनकी बात ठीक ही न हो।

एक दिन मां ने बड़े प्यार से कहा, "देख, बेटा, जरा संभलकर चल, इतने ही दिनों में तेरी कमर निहुर आयी है और आंखों के नीचे काले चक्कर से दीखने लगे हैं। चेहरे का रंग भी फीका पड़ गया है। न हो तो किसी डॉक्टर, वैद्य को दिखा ले। भाड़ में जाये तेरी परीक्षा, अपने घर में खाने की कौन कमी है जो तू इतनी तन-तोड़ मेहनत कर रहा है !"

मेरे लिये शुरू से ही मां की बात आकाशवाणी के जैसी होती है। उनके कहने से मुझे भी विश्वास हो गया कि मैं परीक्षा के लिये जो मेहनत के नाम पर थोड़ा-बहुत कर रहा हूं वह भी मेरे लिये बहुत है। आखिर बढ़िया छुरी कसाई के बुगदे का काम तो नहीं कर सकती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी दिन मैं पड़ोस में नये आये हुए डा० कैलास सिंह के यहां जांच करवाने गया। यह डाक्टर अभी नये-नये आये हैं। कुछ दिन सेना में काम कर चुके हैं और अब अपनी दुकान खोली है। पैसा जल्दी-जल्दी इकट्ठा करना ही इनका उद्देश्य है। मुझे देखते ही इनकी बांछें खिल गयीं। मेरे साथ दो-चार मिनट बातें करके ही उन्होंने मेरे रोग का निदान कर लिया और जान लिया कि मुझे एक भयंकर बीमारी है जिसके लिये मुझे बहुत दिनोंतक दवाई खानी पड़ेगी।

डाक्टर बड़े ही हितैषी थे, मेरी मां से मिलकर सब कुछ ठीक करने के लिये मेरे घर आ गये। उन्होंने बताया कि मैं ठीक समय पर उनके पास गया था, जरा और देर हो जाती तो वह कुछ न कर पाते। इस बीमारी के लिये सारे हिंदुस्तान में कोई ढंग की दवाई नहीं मिलती। सरकार ने विदेशी मुद्रा पर इतने प्रतिबंध लगा दिये हैं कि बाहर से भी मंगाना संभव नहीं है। वह तो मेरा भाग्य अच्छा है कि यूरोप से लौटते हुए डाक्टर साहब गलती से अपने थैले में कुछ गोलियां डाल लाये थे।

उन्हें अगर पैसा ही कमाना हो तो इन गोलियों को बेचकर हजारों कमा सकते हैं, परंतु पड़ोसी के नाते मेरी मां से एक-एक गोली के दस-दस रुपये ही ले लेंगे, देखें, कितनी गोलियां निकलें उनके थैले में से।

मेरी मां सचमुच डर गयीं और मैं भी घबरा उठा। लेकिन डाक्टर साहब का अभय हस्त हमें आश्वासन दे रहा था, "आप चिंता न करें, मैं लड़के को तीन महीने में बिल्कुल ठीक कर दूंगा। हां, मेरी एक शर्त है, फीस का मेरे सामने नामतक न लें। जैसा आपका बच्चा वैसा मेरा बच्चा। सिर्फ दवाई का दाम देना पड़ेगा। वह लेते हुए भी मुझे शर्म आती है, पर क्या करूं? अभी पैर नहीं जमे हैं इसलिये . . .।"

दूसरे दिन से मेरी पढ़ाई बंद हो गयी। सवेरे-शाम थोड़ी सैर के सिवाय और सब हलचल बंद। मैं भला और मेरी खाट भली। कभी दूध, कभी कोई फल, कभी पौष्टिक दवाइयां और कभी वह विशेष गोली। बस, मेरे दिन भर का कार्यक्रम यही रह गया। जो आता यही कहता, "अरे रे, देखो तो कैसा सूखा-सा मुंह निकल आया है।" कोई कहता, 'चेहरे का रंग उड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया है।' कोई चिपके हुए गाल देखता और कोई घोषणा कर देता कि मुझे उठने-बैठने में भी तकलीफ हो रही है।

शुरू में मैं इन सब बातों पर मन-ही-मन हंसा करता था, मुझे यह सारी व्यर्थ की खटर-पटर लगती थी और मैं इसका विरोध करता था परंतु धीरे-धीरे मुझे भी विश्वास होता गया। आईने में चेहरा देखने पर मुझे भी यही शंका होने लगी कि कहीं मैं अपने दिन तो नहीं गिन रहा। मैं सचमुच दो कदम चलकर थक जाता था। डाक्टर की जेब भरती जा रही थी, हितैषियों की सहानुभूति गाढ़ी हो रही थी और मैं धीरे-धीरे मौत के मुंह में जा रहा था मानों जीते-जी नरक में . . .।

मेरे बड़े भाई कहीं बाहर गये हुए थे। लौटकर आये तो देखा कि घर पर मुर्दनी छायी है। वह कुछ समझ न पाये और मेरे बारे में लोगों की बातें सुनकर सहम गये। लेकिन हैं वह जरा फक्कड़ स्वभाव के। जब कुछ ठीक कर लेते हैं तो चाहे दुनिया इधर की उधर हो जाये, वह अपनी करके ही छोड़ते हैं। औरों की बातें सुनकर, मां से मेरी बीमारी का सारा किस्सा जानकर सीधे मेरे कमरे में आये और दहाड़े, "क्या स्वांग कर रखा है तूने? हुआ क्या है तुझे जो यूं पड़ा रहता है?"

इतनी कटु, तीक्ष्ण भाषा, मुझे गुस्सा आ गया। मैंने कहा, "मैं मर रहा हूं और आप इस समय ऐसी बातें करते हैं . . ." मैं अपनी बात पूरी न कर पाया, मेरी आंखें छलछला आयीं।

मेरे भाई को मेरे साथ बहुत ही प्रेम है। वह मेरी खाट पर बैठ गये और बोले, "मैं विश्वास दिलाता हूं, तुम्हें कुछ नहीं हुआ है। यह तो सहानुभूति दिखानेवालों का कारनामा है और तुम्हारे दिल की कमजोरी है कि तुम उनके विष को गटकते गये। तुम बिल्कुल स्वस्थ हो, जरा मन को मजबूत करो और चलो मेरे साथ।"

"लेकिन मैं तो चार कदम चलकर ही थक जाता हूं, चलूं कैसे?" मैंने उत्तर दिया।

"मैं कहता हूं, इन विचारों को जड़ से उखाड़ फेंको। भगवान् के भरोसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खाट छोड़कर चलो। अगर मरना ही है तो खाट पर पड़े-पड़े क्यों मरते हो ? कुछ करते-करते मरो", यह कहते हुए मेरे भाई बाहर चले गये।

मुझे उनकी बातों से बहुत चोट पहुंची। मैंने मन में सोचा, "चलो, यही सही, जब ठीक होने के कोई लक्षण नहीं दीखते तो मर ही क्यों न जाऊं!" बस, मैंने हितैषियों की बातों से ठीक उल्टा करने की ठानी। मैंने डटकर मनचाहा नाश्ता किया और धूप में घूमने के लिये निकल पड़ा।

लेकिन यह क्या ? कहां चार कदम चलने में थक जाता था और कहां आज एक-एक कदम नयी स्फूर्ति ला रहा था। अभी मैं थोड़ी दूर ही गया था कि मैंने देखा कि मेरे भाई का कुत्ता जंजीर के साथ भागा जा रहा है। यह कुत्ता घर भर को बहुत प्रिय है, कहीं इधर-उधर चला गया तो किसी की मोटर के नीचे न आ जाये। मैं उसे पकड़ने के लिये दौड़ा। कुत्ते ने समझा उसके साथ खेल हो रहा है। वह और भी तेज भागा। थोड़ी देर रुक जाता था और जैसे ही मैं नजदीक आता कि फिर दौड़ पड़ता था।

गनीमत यह थी कि अभी मोटरों का तांता शुरू नहीं हुआ था। खैर, तीन-चार फरलांग दौड़कर मैं कुत्ते को पकड़ पाया। जंजीर हाथ में लेते ही मुझे होश आया। तीन-चार कदम चलकर थक जानेवाला मजे से इतना दौड़ आया। आश्चर्य है ! घर की ओर को मुड़ा तो देखा मेरे भाई खड़े हंस रहे हैं। अब समझ में आया। यह सारी कारस्तानी इन्हींकी थी। मेरे कंधे पर हाथ रखकर बोले, "देख, जो मिले उसे मजे से खा ले, अच्छी तरह से मेहनत कर और सहानुभूति दिखानेवालों की बात न सुना कर, इतना कर और भगवान् पर भरोसा रख। बीमारी तेरे नजदीक न फटकेगी। मालवीयजी की बात याद रख :

"दूध पियो, कसरत करो, जपो हरि का नाम।
यह तीनों जो करोगे, पूरन होंगे काम॥"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भेड़िये ने एक बच्चे को पाला

उत्तर भारत में एक भेड़िये ने एक बच्चे को पाला है।

क्या, क्या ?

भेड़िये ने पाला है।

ओह, हां। मैंने फोटो देखे थे।

यह कैसे हुआ ?

यह कैसे हुआ ? लेकिन मुझे उसके बारे में पता नहीं है। मैं इस साहसकार्य के बारे में कुछ नहीं जानती। मैंने एक फोटो देखा है, बस; और मुझे वह जरा भी रोचक नहीं लगा। मैंने सोचा, एक बिल्कुल नीरस चीज के बारे में बहुत शोर मचाया जा रहा है। बच्चा बहुत बदसूरत था। कुछ-कुछ दानव जैसा। बस, इतना ही।

उसके अंदर जिस चैत्य पुरुष ने जन्म लिया था, उसने जन्म से पहले ही कुछ अनुभव चाहा था, है न? लेकिन जन्म से ही ऐसी दुर्घटना . . . क्या होगा ?

शायद वह यह दुर्घटना चाहता था, उसके बारे में तुम्हें क्या पता ? उसके अंदर इस प्रकार के अनुभव की ठीक यही इच्छा हो सकती थी। पता नहीं। मैंने फोटो देखा था . . . उसमें तो कोई विशेष चैत्य नहीं दिखायी दिया। (हंसी) वह कोई बहुत ही प्रारंभिक चीज थी, कोई ऐसी संभावना जो शताब्दियों-पर-शताब्दियां बीतने के बाद सिद्ध हो सकेगी। फिर भी, यदि वह सचेतन चैत्य भी था, तो हो सकता है उसने कोई अनुभव, यह विशेष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुभव चाहा हो, शायद उसने अपने-आपसे पूछा होगा : "मां के द्वारा पाले जाने की जगह भेड़िये के द्वारा पाले जाने से कैसा लगता होगा ?" यह बहुत उत्तेजक तो न रहा होगा; फिर भी हो सकता है कोई ऐसा हो जिसने रोम की स्थापना की कहानी से प्रभावित होकर यह इच्छा की हो कि चलो, देखें, अगर यह सच हो तो कैसा लगता है; बहरहाल, वह सफल तो नहीं हुआ। इस सच्चे इतिहास से किपलिंग की कहानी ज्यादा अच्छी है। कहानी में छोटे बच्चे का पालन-पोषण भेड़िये ने किया था . . . उसका नाम था . . . मोगली, था न ? कम-से-कम वह अच्छा था, सुंदर था; जब कि यह बच्चा तो भयंकर है। यह कुछ-कुछ . . . यह रोचक नहीं है।

—श्रीमां

स्फुट वचन

दो व्यक्तियों के बीच, गिरगिट के रंग पर खूब गरमा-गरम बहस चल रही थी। एक कह रहा था : "इस ताल-वृक्ष के गिरगिट का रंग बहुत सुंदर लाल है।" दूसरा इसका विरोध करते हुए कह रहा था : "आप गलती कर रहे हैं। यह गिरगिट लाल नहीं है, नीला है।" लेकिन बहस के द्वारा किसी निष्कर्ष पर न पहुंच पाने के कारण वे दोनों उस आदमी के पास गये जो हमेशा उसी वृक्ष के नीचे रहता था। वह गिरगिट का असली रंग-रूप अवश्य जानता होगा। पहले व्यक्ति ने कहा : "महोदय, क्या यह सच नहीं है कि इस पेड़ का गिरगिट लाल है ?" उस आदमी ने उत्तर दिया : "जी हां।" लेकिन दूसरा व्यक्ति बोल उठा : "आप क्या कह रहे हैं ? यह हो ही कैसे सकता है ? वह गिरगिट लाल नहीं, नीला है।" बड़े विनम्र भाव से उस आदमी ने फिर वही उत्तर दिया : "जी हां।" वह जानता था कि गिरगिट एक ऐसा प्राणी है जो हर वक्त रंग बदलता रहता है; इसीलिये उन दोनों परस्पर-विरोधी वक्तव्यों के उत्तर में उसने "हां" कह दिया था।

(माताजी द्वारा संकलित रामकृष्ण के वचन) (श्रीमातृवाणी खंड २ से)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोसायटी समाचार

घोषणाएं

सोसायटी को पांडिचेरी या अन्य केंद्रों में हुए ध्वन्यांकित भाषणों को लिख लेने में सहायता करनेवालों की जरूरत है। जो लोग आशुलिपि या टंकण अच्छी तरह से जानते हैं, और सेवा के रूप में यह काम करने के लिये तैयार हैं, वे श्री विजय, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी से पत्र-व्यवहार करें। उन्हें अपने टेप रेकार्डर पर भाषण सुनने और अपने टंकण-यंत्र पर उन्हें टंकित करना होगा। उन्हें टेप यहां से भेज दिया जायेगा। स्टेशनरी और डाक का खर्च सोसायटी के जिम्मे होगा।

सोसायटी में पिछले दिनों 'चेतना द्वारा व्यवस्था' पर एक वर्कशाप हुई थी। अब हमारी इच्छा है कि इस काम को आगे बढ़ाया जाये और माताजी, श्रीअरविंद की शिक्षा के आधार पर इस विषय में शोधकार्य किया जाये और उसके कुछ वीडियो भी तैयार किये जायें। जिन लोगों को इस विषय में रस और अनुभव हो और साल दो साल इस काम में लगाने के लिये तैयार हैं वे अपना पूरा परिचय देते हुई श्री विजय, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी को लिखें।

जो लोग 'ऑल इंडिया मैगेजीन' का अगस्त अंक अपने मित्रों को भेजना चाहें वे एक प्रति के लिये पांच रुपये भेजकर भिजवा सकते हैं। यह 'शब्द' से 'स्वर्ग से भी महान् हमारा भारत' पुस्तकाकार उपलब्ध है।

हमारे जाइंट सेक्रेटरी श्री गोपाल भट्टाचार्य, जो हमारे विदेशी कार्य-कलाप की देख-भाल करते हैं, अंतर्राष्ट्रीय गैर सरकारी संगठनों में जो यूनेस्को के साथ काम करते हैं, उन्होंने पैरिस में ११ से १५ जूनतक उसके अधिवेशन में भाग लिया।

१४ और १५ सितंबर को ज्वालापुर (हरिद्वार) में प्रादेशिक साधना-शिविर होगा। विस्तृत सूचना के लिये मंत्री, श्रीअरविंद योग मंदिर ज्वालापुर—५४९४०७ से पत्र-व्यवहार करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सावित्री' के बारे में अध्ययन-शिविर—पिछले वर्ष नवंबर में श्री मंगेश नांडकरणी ने पांडिचेरी में 'सावित्री' पर एक अध्ययन-शिविर का आयोजन किया था। इस शिविर को जारी रखने के लिये बार-बार आग्रह किया जा रहा है। इस वर्ष भी वे ८ नवंबर से १५ नवंबर तक सावित्री शिविर लगायेंगे जिसमें पहले सर्ग का अध्ययन होगा। विचार यह है कि पुस्तक समाप्त होनेतक हर वर्ष इसी तरह व्यवस्था की जाये।

जो लोग इसमें भाग लेना चाहें वे हमारे पांडिचेरी कार्यालय से पत्र-व्यवहार करें। आवास के लिये प्रति व्यक्ति के लिये ५० रु. पेशगी भेजकर अपना स्थान सुरक्षित करवा लें। योग्य व्यक्तियों के लिये—जिनके पास पैसे की कमी हो—निःशुल्क शयनागार की व्यवस्था है। एक भक्त, उसी तरह के योग्य व्यक्तियों के लिये भोजन का खर्च देने के लिये भी तैयार है।

श्रीअरविंद सोसायटी, उत्तर प्रदेश का

२० वां वार्षिक अधिवेशन

गंगा के पावन तट पर तीर्थस्थल ऋषिकेश में

स्वाध्याय-साधना शिविर के रूप में

नवंबर, १९९० के प्रथम सप्ताह में संपन्न होगा।

विशेष विवरण और व्यवस्था-संबंधी जानकारी के लिये लिखें:

मंत्री, श्रीअरविंद अध्ययन केंद्र

लक्ष्मण झूला मार्ग, ऋषिकेश, २४९२०१

दूरभाष—१२५

बंसल एंड कंपनी, उत्तरकाशी के सौजन्य से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

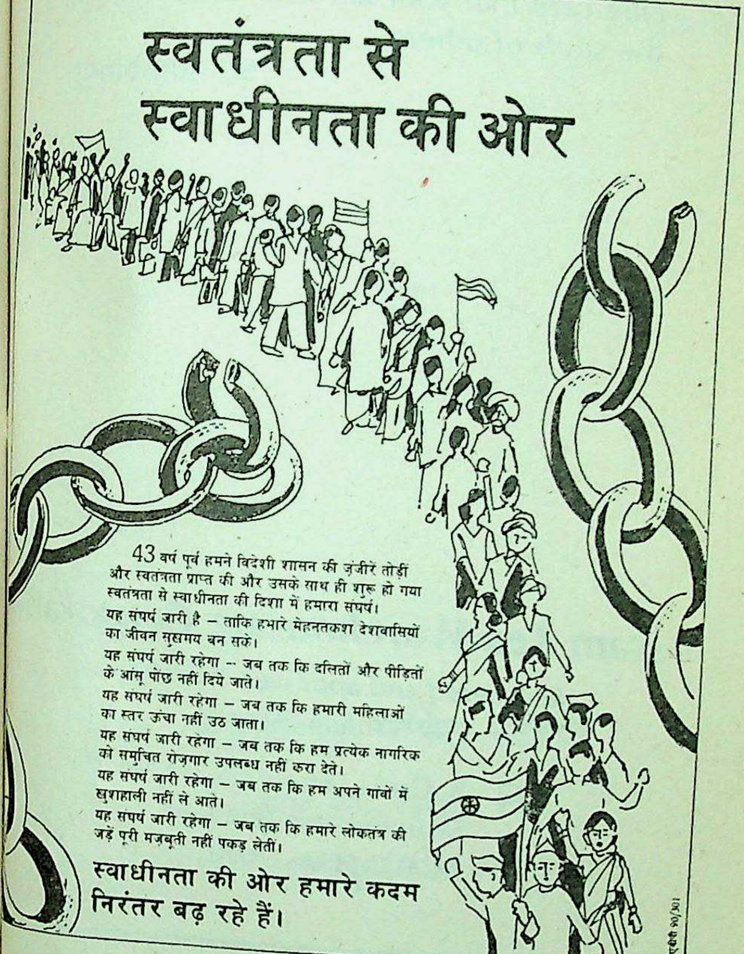

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Selfishness kills the soul; destroy it. But take care that your altruism does not kill the souls of others.

Sri Aurobindo

Assam Tea Warehousing Corporation

Registered and approved Warehouse
at Gauhati (Assam)

H.O.: 8, Camac Street, Room No. 7
Shantiniketan Building
CALCUTTA – 700 017

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुमसे सबसे अधिक मांग की जाती है प्रकाश की ओर मुड़ने में अध्यवसाय की। प्रकाश हम जितना समझते हैं उससे कहीं अधिक हमारे निकट है और किसी भी क्षण उसका मुहूर्त आ सकता है।

— श्रीअरविन्द

सहारनपुर सर्विस स्टेशन

पैट्रोल पम्प, देहरादून रोड

सहारनपुर–२४७००१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Registered with the Registrar of Newspapers for India
No. R. N. 18135/70
REGD. No. M. 8731

दूसरों पर नियंत्रण रखने के लिये स्वयं अपने ऊपर पूर्ण नियंत्रण पाना अनिवार्य शर्त है।

— श्रीमां

With Best Wishes from:

MRS. KOYAL DEORAH CHARITABLE TRUST

28, VARSHA, 69/B, NEPEANSEA ROAD

BOMBAY - 4000 006

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

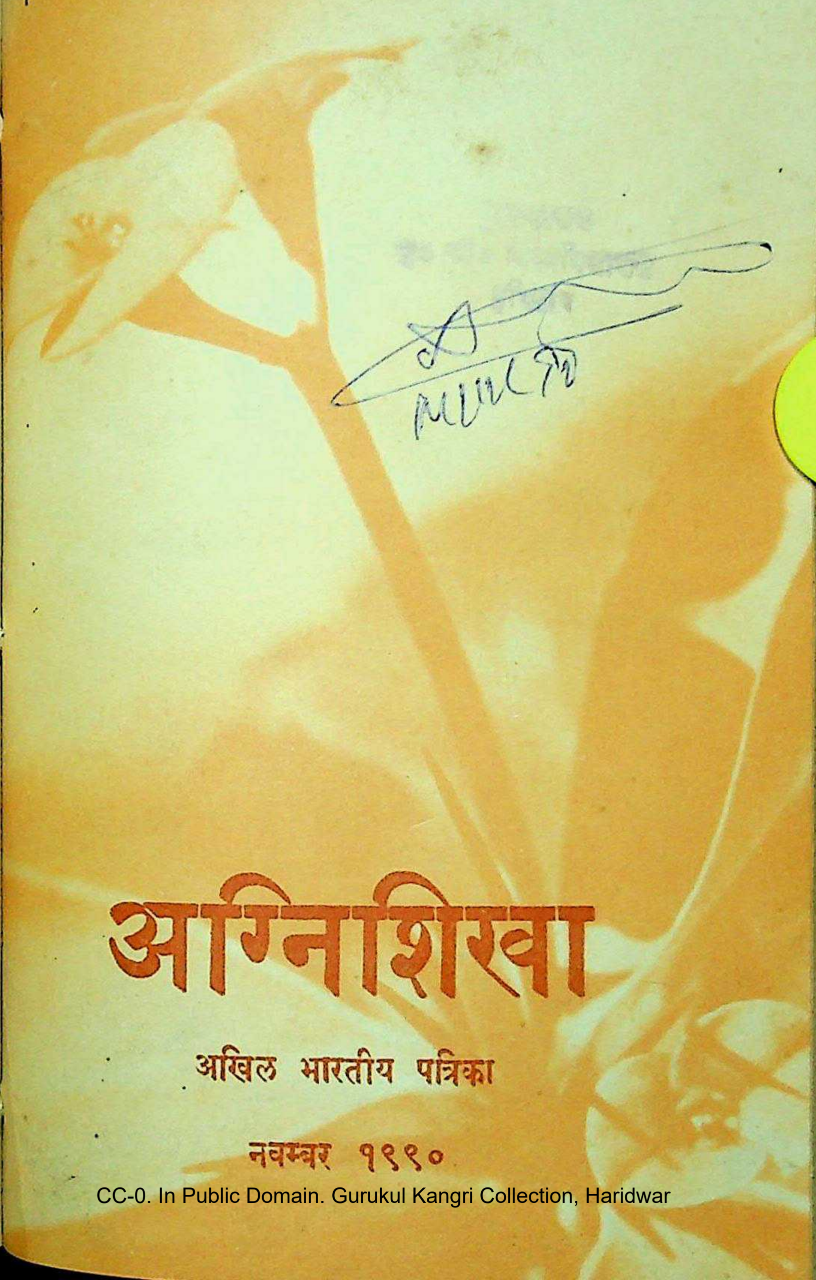

अग्निशिखा

अखिल भारतीय पत्रिका

नवम्बर १९९०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवम्बर १९९०   वर्ष २१, अंक ४, पूर्णांक २४४

विषय-सूची

सन्देश	माताजी	१
'सम्पादकीय' : पहला कदम	अनुबेन	२
कुछ पत्रों के उत्तर	अनुबेन	४
दैनन्दिनी		६
प्रेम		९
निचली श्रेणियों में प्रेम		१७
ब्रह्मचर्य		२०
प्रेम का सच्चा हेतु		२५
माताजी की कहानी		२६
प्रेम क्या है ?		२८
प्रेम के अवतरण के पहले क्या था ?		२९
प्रेम की प्रथम अभिव्यक्तियां और उसका शिखर		३१
सुख की खोज		३४
सृष्टि		३६
सोसायटी समाचार		३७

मुखपृष्ठ का चित्र — 'एकाग्रता'
(माताजी द्वारा दिया गया फूल का आध्यात्मिक अर्थ)

अग्निशिखा वार्षिक १०.००   आजीवन २२५.००

श्रीअरविंद सोसायटी की मासिक पत्रिका

संपादक : रवींद्र, अनुबेन
प्रकाशक : श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी–६०५००२
मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी–६०५००२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि

संदेश

Every obstacle must disappear, in every part of the being, the darkness of the ignorance must be replaced by the Divine knowledge.

With my blessings.

–The Mother

हर बाधा को लुप्त हो जाना चाहिये, सत्ता के हर भाग में अज्ञान के अंधेरे का स्थान भागवत ज्ञान को ले लेना चाहिये।

मेरे आशीर्वाद के साथ।

—माताजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संपादकीय :

पहला कदम

सहेली से बहुत वर्षों के बाद बातचीत हुई। देश-विदेश और कई विषयों की चर्चा के बाद अपने-अपने परिवारों की बात चली। रिश्तेदारों के बच्चों के बारे में बड़े उत्साह से उसने जो सुनाया वह सुनकर मेरा मन भी बल्लियों उछलने लगा। कारण कुछ और ही था, उसने सुनाया कि एक लड़का सवेरे छह बजे फुटबॉल खेलने जाता है, सात बजे लौटकर नाश्ता कर स्कूल जाता है, स्कूल से आकर झटपट खाना खाकर चित्रकारी की कक्षा में जाता है, चित्रकारी के बाद किसी अखाड़े में जाकर या तो कुश्ती लड़ता है या कोई और कसरत करके नौ बजे के आस-पास घर आकर गृहकार्य करता है। उसी घर की बेटी के बारे में कहते हुए उसकी आंखें चमकने लगीं, वह भी सवेरे बैडमिंटन खेलने जाती है, चित्रकारी करती है, गाना सीखने जाती है, स्कूल के नाटकों में भाग लेती है और जहां कहीं इन विषयों की प्रतियोगिता हो तो उनमें भाग लेने की जिद करती है। उसने हंसकर कहा, "मैंने तो बचपन में इतना कुछ किया नहीं था, पता नहीं इन बच्चों में इतनी शक्ति कहां से आ जाती है।"

मैंने जो सोचा उसे कह न पायी, उसका परिवार अमीर नहीं, बस खाता-पीता घर है, फिर भी बच्चों की यह जीवनी-शक्ति देखकर मुझे वर्तमान समय में जो सर्वग्राही अंधकार दीखता है उसमें एक छोटी-सी आशा-किरण दिखायी दी, और मेरा मन बरसों पीछे मुड़कर देखने लगा।

सन् १९४७ में जब श्रीमां ने आश्रम के स्कूल में खेल-कूद और कसरत का एक विभाग खोला और उसे इतना महत्त्व दिया कि आश्रमवासी विस्मय में पड़ गये, मां के पास बहुत-सी चिट्ठियां और मौखिक प्रश्न आये जिनका तात्पर्य एक ही था, "आप बच्चों के खेल-कूद को इतना महत्त्व क्यों देती हैं, आप स्वयं रोज-रोज क्रीड़ांगण में जाकर अपना इतना समय क्यों व्यतीत करती हैं ?" इन सभी प्रश्नों के लिये उनके दो ही उत्तर थे। उन्होंने कहा कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलकत्ता-हत्याकांड और विभाजन के समय स्त्रियों की जो दुर्दशा हुई उसके बारे में सुनने और पढ़ने के बाद उन्होंने निश्चय किया कि लड़कियों को साहसी, निर्भीक, सामर्थ्यवान् और शक्तिशाली बनाना आवश्यक है ताकि वे पुरुषों के साथ शारीरिक क्षेत्रों में भी कंधे से कंधा मिलाकर जूझ सकें और अपनी सुरक्षा अपने-आप कर सकें।

उनका दूसरा उत्तर था कि भारत की दासता का एक कारण उसकी जीवनी-शक्ति का ह्रास था, भारतीयों ने किसी कारण से तमस् को अपना लिया था और इसलिये उनकी जीवनी-शक्ति क्रमशः क्षीण होती गयी और ऐसे समय ही, पहले मुगल और बाद में अंग्रेजों ने हमला करके इस विशाल देश को गुलाम बना लिया यद्यपि जनसंख्या के हिसाब से वे कहीं न थे। वैसे तो श्रीअरविंद ने भी, "भवानी मंदिर" नामक लेख में यही बात कही है। उसमें उन्होंने कहा कि भारत में क्षमता है, बुद्धि है, भक्ति है किंतु शक्ति का अभाव है इसलिये यद्यपि भारतीय बड़े उत्साह से योजनाएं शुरू करते हैं किंतु उन्हें सफल बनाने के लिये जिस परिश्रम और अध्यवसाय की जरूरत है उन्हें नहीं जुटा पाते, क्योंकि उनके अंदर शक्ति का अभाव है। श्रीमां ने कहा कि "मैं आशा करती हूं कि यहां, इन बच्चों के अंदर मैं जो प्रयोग कर रही हूं, उसका प्रभाव सारे भारत में फैलेगा और भारत की जीवनी-शक्ति का पुनर्जन्म होगा।"

इतने बरसों के बाद नयी पीढ़ी की जीवनी-शक्ति की प्रचुरता देखकर मुझे लगा कि मां का कार्य इस क्षेत्र में सचमुच सफल हुआ है और सारा भारत जल्दी ही इस जीवनी-शक्ति के कारण ऊपर, बहुत ऊपर उठेगा। किंतु साथ ही मेरी दृष्टि के सामने भारत माता का लहू-लुहान शरीर आया और उसपर वे घाव हमने, उनकी संतानों ने ही किये हैं; फिर चाहे वह पंजाब हो, कश्मीर हो या कोई और प्रदेश, हैं तो सब हमारी माता के ही अंग। क्या जीवनी-शक्ति के आगमन के साथ हम अपनी बुद्धि को भी सही मार्ग पर नहीं चला सकते ? ये किशोर-किशोरियां जो इस समय भविष्य की आशा के प्रतीक हैं, क्या वे भी युवा बनकर आजकल के हत्या-कांड को अपनायेंगे ? हम आशा करें कि तबतक गुमराह युवाओं की बुद्धि भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सही मार्ग पर आ जायेगी और कूप-मंडूक की तरह अपने-अपने दायरों की बात न सोचकर उनकी बुद्धि इतनी विशाल बन जायेगी कि वे सारे भारत की बात सोच सकेंगे, सारे भारत को अपना घर मान सकेंगे। यह सही दिशा में केवल पहला कदम होगा और अभी न जाने कितने कदम हमें इस दिशा में उठाने हैं।

"अभी इश्क के इम्तहां और भी हैं
सितारों के आगे जहां और भी हैं॥"

—अनुबेन

कुछ पत्रों के उत्तर

आपके प्रश्नों के उत्तर अपनी क्षमता के अनुसार दे रही हूं।

१—आपने भागवत चेतना को अपने मन, प्राण, शरीर में उतारने की बात पूछी है। जहांतक मुझे मालूम है भागवत चेतना को उतारने से पहले हमें बहुत-सा काम करना होता है। सबसे बड़ा काम अपने मन, प्राण और शरीर को अच्छी तरह समझ लेना चाहिये और उन्हें शुद्ध करने के लिये अपनी ओर से प्रयास करते हुए भागवत सहायता को पुकारना चाहिये। साथ ही भागवत चेतना को पुकारते हुए, उसे स्वीकार करने के लिये अपने सब भागों को खुला रखना चाहिये। पुकारने की बात ऐसी है कि प्रत्येक को जब एक बार अपने भागों का परिचय हो जाये तो उसके अंदर जो कमी है उसकी पूर्ति के लिये दिव्य चेतना को पुकारना चाहिये ताकि जो आवश्यक हो उसे वह कर सके।

माताजी ने कहा है कि ध्यान करने के लिये सबसे अच्छा चक्र है हृदय। लेकिन प्रत्येक के लिये जिस चक्र में स्वाभाविक रूप से एकाग्रता हो वही उसके लिये उत्तम है।

२—ब्रह्मचर्य-पालन के कई उपाय हैं। एक उपाय जिसका सभी समर्थन करते हैं वह है काफी शारीरिक श्रम करना। दूसरा उपाय है सारे समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदात्त विचारों से अपने मन को व्यस्त रखना और साथ ही मनोवृत्ति के ऊपर नजर रखना ताकि वह भटकने न पाये। तीसरा उपाय जो माताजी ने सुझाया है वह है हर समय यही मानना कि माताजी आपको देख रही हैं। अगर यह आपके लिये एक ठोस अनुभूति हो जाये तो आप बहुत-से निरर्थक और नुकसानदेह कार्यों से बच सकेंगे। अगर आप यह अनुभव कर सकें कि आपके ऊपर एक प्रकाश का सागर है और आप उसे अपने अंदर पुकारें तो जहांतक आप ग्रहणशील होंगे वह प्रकाश उतर आयेगा।

३—अंतःप्रेरणा पाने के लिये अपनी चैत्य सत्ता के साथ संबंध जोड़ना चाहिये। चैत्य सत्ता की अत्यंत धीमी, आग्रह से वंचित आवाज ही अंतःप्रेरणा बनकर आती है अगर उसकी आवाज को आप सुन सकें और उसके अनुसार कार्य कर सकें तो जीवन-यात्रा काफी सरल हो सकती है। इसका यह अर्थ नहीं कि बाधाएं आयेंगी ही नहीं लेकिन अंतः प्रेरणा की सहायता से आप उन्हें कुछ आसानी से पार कर सकेंगे।

४—श्रीमां के संकल्प को जानने के लिये अपनी पसंद-नापसंद, आग्रह, आकर्षण, अनाकर्षण से मुक्त होना चाहिये। उसके बाद ही धीरे-धीरे उनका संकल्प आपके आगे स्पष्ट होता ज़ायेगा। केवल जानने से काम न चलेगा। आपके मन, प्राण और शरीर को भी सहमत होना चाहिये।

५—अपने समर्पण को अधिक पूर्ण बनाने के लिये आपको हर क्षण, हर क्रिया में अपने-आपसे यह पूछना होगा कि यह कार्य मां को समर्पित है या नहीं। अगर जवाब न में आये तो उस काम को तुरंत त्याग देना चाहिये। इस तरह सतत चौकस रहकर आप अपने समर्पण को अधिक पूर्ण बना सकते हैं।

—अनुबेन

— — — —

शाश्वत प्रभु सभी मनुष्यों में विद्यमान हैं। लेकिन सब मनुष्य शाश्वत प्रभु में नहीं हैं। इसी कारण वे कष्ट पाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दैनन्दिनी

नवंबर

१. बोला गया प्रत्येक झूठ, विघटन की ओर एक कदम होता है।
२. अगर तुम ऐसी कोई बात नहीं कहना चाहते जो सच्ची है तो झूठ बोलने की जगह चुप रहो।
३. अगर हम किसी मिथ्यात्व को, वह चाहे कितना भी छोटा क्यों न हो, अपने मुख या अपनी लेखनी द्वारा प्रकट होने दें तो हम सत्य के पूर्ण संदेशवाहक होने की आशा कैसे कर सकते हैं ? सत्य के सच्चे सेवक को छोटी-से-छोटी अयथार्थता, अतिशयोक्ति या विकृति से बचना चाहिये।
४. केवल विरले लोगों में ही वह शक्ति होती है कि वे तुरंत दिव्य अनंतता के सागर में बड़ी डुबकी लगा सकें।
५. योग का अनिवार्य उद्देश्य है हमारी सत्ता का और समस्त सत्ता का दिव्य सद्वस्तु के साथ ऐक्य।
६. हमारा योग भगवान् के लिये किया जाता है, अतिमानस पाने के लिये नहीं।

   अतिमानसिक परिवर्तन से अनिवार्य रूप से शक्ति आती है। पूर्ण कार्य के लिये यह आवश्यक स्थिति है।
७. कइयों ने यह उपदेश दिया है: महत्त्वपूर्ण क्षण केवल वर्तमान है—व्यावहारिक रूप से यह सच नहीं है किंतु मनोवैज्ञानिक रूप से इसे सत्य होना चाहिये। दूसरे शब्दों में, व्यक्ति अगली वस्तु की पहले से योजना बनाये या चाहे या प्रतीक्षा किये बिना या उसके लिये तैयारी किये बिना प्रत्येक क्षण अपनी अधिकतम शक्यता में जिये। कारण तुम हर समय जल्दी, जल्दी, जल्दी में होते हो . . . और तुम कुछ भी अच्छी तरह नहीं कर सकते। तुम एक आंतरिक तनाव की स्थिति में होते हो जो कि मिथ्या, बिल्कुल मिथ्या होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८. आत्म-परिपूर्ति योग का परिणाम है, लेकिन उसका उद्देश्य व्यक्ति की महानता नहीं है।

९. हमें अपनी महान् आत्मा को पाने के लिये लघु अहं को छोड़ना होगा। योग सत्ता का तेज और एकाग्र सचेतन विकास है।

१०. यह ऐसा योग नहीं है जिसमें किसी प्रकार की असामान्यता को—वह चाहे कितनी भी बढ़ी-चढ़ी असामान्यता क्यों न हो—आत्म-परिपूर्ति या आध्यात्मिक उपलब्धि के मार्ग के रूप में प्रवेश दिया जा सके।

११. सभी तरह का प्रकाश आत्मा का प्रकाश नहीं होता और अतिमानस का प्रकाश तो बिल्कुल ही नहीं।

१२. यात्रा का नेता, कूच का कप्तान, हमारे यज्ञ का पहला और प्राचीनतम यज्ञ का होता है संकल्प।

१३. शाश्वत परम प्रभु, सबका प्रवर्तक प्रभु होता है।

१४. विचार से कम नहीं, हृदय, इच्छा, प्राण यहांतक कि शरीर भी दिव्य सचेतन सत्ता के रूप और अति महत्त्वपूर्ण निर्देशक होते हैं।

१५. आध्यात्मिक ज्ञान का लक्ष्य है परम प्रभु, भगवान्, अनंत और परम निरपेक्ष।

१६. प्राण-शक्ति ऐसी चेतना की गतिशीलता है जो उसका अतिक्रमण करती है।

१७. मन एक ऐसी सचेतन सत्ता की अस्पष्ट उपच्छाया है जो मानसिकता से सीमित नहीं होती बल्कि उसका अतिक्रमण करती है।

१८. हमारी परम आत्मा और परम सत्ता, जो विश्व बन गयी है, वह हमारी एकमेव आत्मा और सत्ता है।

१९. व्यक्ति प्रकृति में वैश्व सत्ता की एक अभिव्यक्ति और आत्मा में परात्परता का निःसृत रूप है।

२०. परम प्रभु एकता और बहुलता के विभेद के परे हैं और फिर भी वे समस्त विश्व में एक और अनगिनत बहु हैं।

२१. हर जगह और हर स्थिति में देखनेवाली आंख के लिये जो कुछ दिखलायी देता है वह एकमेव है, दिव्य अनुभूति के लिये सब कुछ भगवान् का एक खंड है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२२. योग शक्ति को विकसित करता है, वह उसे तब विकसित करता है जब हम उसकी कामना नहीं करते, सचेतन रूप से उसे लक्ष्य नहीं बनाते।

२३. शक्ति हमेशा दोधारी तलवार होती है जिसका उपयोग चोट पहुंचाने या नष्ट करने के लिये भी हो सकता है और सहायता करने और रक्षा करने के लिये भी।

२४. सभी विनाश अशुभ नहीं होते।

२५. यौगिक ज्ञान यहां धरती पर एक ऐसी गुप्त चेतना में प्रवेश करने की कोशिश करता है जो यहांपर गुह्य रूप से विद्यमान समस्त सत्ता के आधार में छिपी हुई है।

२६. केवल ज्ञान की हमारी आलोकित आंखों को ही नहीं, सारी चेतना को भगवान् के लिये मांग करनी चाहिये।

२७. हमारी सत्ता के प्रत्येक अंग की शुद्धि दूसरे अंगों की शुद्धि से लाभ पाती है।

२८. यह आत्मा बलहीन को प्राप्त नहीं होती।

२९. आत्मा और प्राण दो बिल्कुल भिन्न शक्तियां हैं; आत्मा दिव्य पुरुष की चिंगारी है जो व्यक्तिगत प्रकृति को समर्थन देती है। मन, प्राण और शरीर प्रकृति की अभिव्यक्ति के लिये उपकरण हैं।

३०. अधिकतर लोगों में आत्मा बाह्य प्रकृति के कर्मों से ढकी और छिपी रहती है। वे प्राण को आत्मा मानने की भूल करते हैं क्योंकि प्राण ही शरीर को अनुप्राणित करता और हिलाता-डुलाता है।
लेकिन यह प्राण कामनाओं और कार्यकारी अच्छी और बुरी शक्तियों से बना होता है। यह सत्य वस्तु नहीं, कामना पुरुष है।

— — — — —

जिसकी अभीप्सा और एकाग्रता जितनी ज्यादा होती है वह शाश्वत को उतनी ही जल्दी पा लेता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम

२ जून १९२९

मानव प्रेम का भागवत प्रेम के साथ क्या संबंध है? क्या मानव प्रेम भागवत प्रेम में बाधक है? क्या यह ठीक नहीं है कि मानव प्रेम को धारण करने की योग्यता भागवत प्रेम को धारण करने के सामर्थ्य का सूचक है? क्या ईसामसीह, रामकृष्ण और विवेकानंद जैसे महान् आध्यात्मिक व्यक्ति स्वभावतः अत्यंत प्रेमी और स्नेही नहीं थे?

प्रेम विश्वव्यापी महान् शक्तियों में से एक है। यह अपने-आपमें स्थित है और जिन पदार्थों में यह प्रकट होता है अथवा जिनके द्वारा अपने-आपको प्रकट करता है उनसे पूरी तरह स्वतंत्र रहता है। इसे जहां कहीं अभिव्यक्त होने की संभावना दीखती है, जहां कहीं ग्रहणशीलता होती है जहां कहीं द्वार खुला होता है, वहीं यह अभिव्यक्त हो जाता है। तुम जिसे प्रेम कहते हो, जिसे तुम निजी या व्यक्तिगत वस्तु समझते हो वह इस विश्वव्यापी शक्ति को ग्रहण करने और अभिव्यक्त करने की तुम्हारी क्षमतामात्र है। परंतु विश्वव्यापी होने के नाते यह कोई अचेतन शक्ति नहीं है, यह एक परम सचेतन दिव्य शक्ति है। यह सचेतन रूप में धरती पर अपनी अभिव्यक्ति और सिद्धि के लिये प्रयत्न करती है, सचेतन होकर अपने उपकरण चुनती है, जो लोग इसके आवाहन का उत्तर दे सकते हैं उन्हें यह अपनी तरंगों के प्रति जाग्रत् करती है और अपने शाश्वत लक्ष्य को उनके अंदर सिद्ध करने का प्रयास करती है, और जब कोई उपकरण अनुपयुक्त होता है तो उसे छोड़कर दूसरों को ढूंढ़ती है। मनुष्य सोचते हैं कि वे एकाएक प्रेम-पाश में बंध गये हैं, वे अपने प्रेम को उत्पन्न होते, बढ़ते और फिर मुरझाते देखते हैं—अथवा, हो सकता है कि कुछ लोगों में, जो उसकी अधिक स्थायी क्रिया के लिये विशेष रूप से उपयुक्त हैं, यह कुछ अधिक टिके। परंतु यह समझना भ्रम है कि यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनका अपना व्यक्तिगत अनुभव था। वह तो विश्वव्यापी प्रेम के सनातन समुद्र की एक लहर मात्र थी।

प्रेम विश्वव्यापी और सनातन है; अपने-आपको सदा अभिव्यक्त करता रहता है और अपने सार-रूप में सदा समरूप रहता है। यह एक भागवत शक्ति है; इसकी बाह्य क्रियाओं में जो विकार दिखायी देते हैं वे इसके उपकरणों के होते हैं। प्रेम केवल मानव प्राणियों में ही अभिव्यक्त नहीं होता; यह सर्वत्र है। इसकी गति वनस्पतियों में भी है, शायद पत्थरों तक में भी है। पशु-पक्षियों में इसकी उपस्थिति का पता लगाना सरल है। इस महान् और दिव्य शक्ति के विकार, इसके परिमित उपकरण की मलिनता, अज्ञान और स्वार्थ से आते हैं। प्रेम में, इस शाश्वत शक्ति में कोई चिपटने की वृत्ति नहीं होती, न कोई इच्छा न स्वत्व की भूख और न स्वार्थभरी आसक्ति होती है। अपनी विशुद्ध गति में वह परमात्मा के साथ एक होने के लिये आत्मा की खोज है, यह एक ऐसी खोज है जो अन्य समस्त वस्तुओं से निरपेक्ष और निर्लिप्त रहती है। भागवत प्रेम अपने-आपको देता है, कोई मांग नहीं करता। मनुष्यों ने इसको क्या बना डाला है यह कहने की आवश्यकता नहीं। उन्होंने इसे एक भद्दी और वीभत्स वस्तु बना दिया है। फिर भी, मनुष्यों में भी, प्रेम का प्रथम संस्पर्श अपने पवित्रतर सार का कुछ अंश ले आता है। क्षणभर के लिये वे अपने-आपको भुला देने में समर्थ हो जाते हैं, क्षण-भर के लिये इसका दिव्य स्पर्श, सभी सुंदर और मनोहर चीजों को जगाता है और बढ़ाता है। परंतु बाद में अपनी अपवित्र मांगों से भरी, बदले में किसी चीज की याचना करती, जो कुछ देती है उसके बदले में कुछ चाहती, अपनी निकृष्ट तृप्तियों के लिये शोर मचाती और जो दिव्य था उसे विकृत और कलुषित करती हुई मानव प्रकृति ऊपरी तल पर उठ आती है।

भागवत प्रेम को अभिव्यक्त करने के लिये तुम्हें उसे ग्रहण करने योग्य होना चाहिये। क्योंकि, उसे वे ही अभिव्यक्त कर सकते हैं जो इसकी नैसर्गिक प्रवृत्ति के लिये स्वभावतः खुले होते हैं। उनमें यह उद्घाटन जितना विशाल और अबाध होगा उतना ही वे दिव्य प्रेम को उसकी मौलिक पवित्रता के साथ अभिव्यक्त कर सकेंगे और जितना ही यह निम्नतर मानव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावों से मिश्रित होता है, उतना ही अधिक विकार इसकी अभिव्यक्ति में आ जाता है। जो प्रेम को उसके असली और सत्य रूप में ग्रहण करने के लिये खुला हुआ नहीं है वह भगवान् के समीप नहीं पहुंच सकता। ज्ञान-मार्ग के अनुयायी भी एक समय ऐसे स्थल पर जा पहुंचते हैं, जहां से यदि वे आगे बढ़ना चाहें तो वे अपने-आपको ज्ञान के साथ प्रेम में प्रवेश करते हुए पाते हैं और अनुभव करते हैं कि दोनों एक ही हैं। ज्ञान भागवत मिलन की ज्योति है और प्रेम ज्ञान का हृदय। आत्मा की प्रगति में एक ऐसा स्थान आता है जहां ये दोनों मिल जाते हैं और तुम एक को दूसरे से अलग नहीं कर सकते। आरंभ में इन दोनों के बीच तुम जो विभाजन करते हो वह मन की रचना है: उच्चतर भूमिका पर उठते ही ये भेद गायब हो जाते हैं।

जो लोग इस जगत् में भगवान् को प्रकट करने और पार्थिव जीवन को रूपांतरित करने के लिये आये हैं उनमें से कुछ ने दिव्य प्रेम को अधिक पूर्णता के साथ अभिव्यक्त किया है। कुछ में इस अभिव्यक्ति की पवित्रता इतनी अधिक थी कि समस्त मानवजाति ने उन्हें गलत समझा। यहांतक कि उनपर कठोर और प्रेमशून्य होने का दोष लगाया गया है, यद्यपि उनमें दिव्य प्रेम विद्यमान है परंतु उनमें इसका रूप भी इसके तत्त्व की तरह मानव नहीं, दिव्य होता है। मनुष्य जब प्रेम की बात करता है तो वह इसे भावावेश और भावुकतापूर्ण दुर्बलता के साथ जोड़ देता है। परंतु मनुष्य आत्मविस्मृति की दिव्य प्रगाढ़ता से, बिना संकोच अपने लिये कुछ भी बचाकर रखे बिना, बदले में कुछ भी मांगे बिना, भेंट के तौर पर अपने-आपको पूर्ण रूप से न्योछावर कर देने की शक्ति से अपरिचित-सा है। और जब यह भागवत प्रेम दुर्बल भावुकता-भरे भावावेशों के बिना, अपने सत्यस्वरूप में आता है तो लोग इसे निष्ठुर और नीरस पाते हैं; वे इसमें प्रेम की उच्चतम और तीव्रतम शक्ति को नहीं पहचान पाते।

जगत् में भगवान् के प्रेम की अभिव्यक्ति उनकी महान् आहुति थी, उनका परम आत्म-दान था। 'पूर्ण चेतना' ने जड़-प्रकृति की अचेतना में निमग्न और विलीन होना स्वीकार किया ताकि अंधकार की गहराइयों में भी चेतना जाग्रत् की जा सके और उनमें शनैः शनैः दिव्य शक्ति उदित हो सके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा सारे अभिव्यक्त विश्व को दिव्य चेतना और भागवत प्रेम की सर्वोत्कृष्ट अभिव्यक्ति बनाया जा सके। अपनी परम दिव्यपूर्ण अवस्था को, उसकी निरपेक्ष चेतना को, उसके अनंत ज्ञान को खोना स्वीकार करके, अचेतना के साथ एक होकर अज्ञान और अंधकार से भरे जगत् में वास करना ही परम प्रेम था। फिर भी शायद कोई भी इसे प्रेम नहीं कहेगा; क्योंकि यह अपने-आपको ऊपरी भावनाओं से नहीं मढ़ता, इसने जो कुछ किया है उसके बदले में कोई मांग नहीं रखता, अपने बलिदान का प्रदर्शन नहीं करता। जगत् में प्रेम-शक्ति उन चेतनाओं की खोज में है जो इस भागवत गति को उसके विशुद्ध रूप में ग्रहण करने और उसे अभिव्यक्त करने के योग्य हों। समस्त जीवों की प्रेम के लिये यह दौड़, समस्त जीवों के तथा जगत् के हृदय में प्रेम के लिये अदम्य आवेग, उस भागवत प्रेम की प्रेरणा के कारण ही है जो मनुष्य की समस्त कामना और चाह के पीछे वर्तमान है। प्रेम-शक्ति करोड़ों उपकरणों का स्पर्श करती है, सदा परीक्षण करती है, सदा असफल होती है; किंतु इसका यह बार-बार का स्पर्श उपकरणों को तैयार कर रहा है और एक दिन आयेगा जब सहसा उनमें आत्म-दान और प्रेम की शक्ति जाग उठेगी।

प्रेम की गति मनुष्यों तक ही परिमित नहीं है और संभवतः मानवजाति की अपेक्षा अन्य सृष्टियों में कम विकृत है। पुष्पों और वृक्षों को देखो। जब सूर्य अस्त होता है और सब कुछ नीरव हो जाता है, तब क्षण-भर के लिये शांत होकर बैठो और अपने-आपको प्रकृति के साथ एक कर दोः तुम अनुभव करोगे कि पृथ्वी से, वृक्षों की जड़ के नीचे से प्रगाढ़ प्रेम और कामना से पूर्ण एक अभीप्सा ऊपर उठ रही है और यह अभीप्सा ऊपर की ओर बढ़ती हुई तथा वृक्षों के तंतुओं में से संचार करती हुई, उनकी उच्चतम शाखाओंतक में उठ रही है—उस वस्तु के लिये कामना जो प्रकाश लाती है और सुख फैलाती है, उस प्रकाश के लिये जो चला गया है, जिसे वे वापस चाहते हैं। उनमें यह चाह इतनी पवित्र और तीव्र होती है कि यदि तुम वृक्षों में होनेवाली गति को अनुभव कर सको तो तुम्हारी अपनी सत्ता भी उस शांति, उस प्रकाश और प्रेम के लिये हार्दिक प्रार्थना करने लगेगी जो अभीतक यहां अभिव्यक्त नहीं है। एक बार भी यदि तुम इस विशाल,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशुद्ध और सत्य दिव्य प्रेम के संस्पर्श में आ जाओ, यदि तुम थोड़ी देर के लिये भी इसके लघुतम रूप का ही अनुभव कर पाओ, तो तुम यह अनुभव कर लोगे कि मनुष्य की वासना ने इसके स्वरूप को कितना नीच बना डाला है। मानव प्रकृति में यह क्षुद्र, पाशविक, स्वार्थमय, हिंसात्मक और कुरूप हो गया है, या फिर यह दुर्बल और भावुक, अत्यंत तुच्छ भावों से भरा हुआ, क्षण-भंगुर, बाहरी और शोषक बन गया है। और इस नीचता और पशुता को अथवा इस स्वार्थ से भरी हुई दुर्बलता को लोग प्रेम कहते हैं !

क्या हमारी प्राणमय सत्ता को दिव्य प्रेम के आविर्भाव में भाग लेना है ? यदि हां, तो इसके सहयोग का उचित और ठीक रूप क्या है ?

क्या भागवत प्रेम की अभिव्यक्ति का कहीं रुक जाना अभीष्ट है ? क्या उसे किन्हीं अमूर्त या अपार्थिव क्षेत्रोंतक ही सीमित रहना होगा ? भागवत प्रेम पृथ्वी पर अपनी अभिव्यक्ति को अत्यंत जड़प्राकृतिक पदार्थ तक में प्रवाहित करता है। यह ठीक है कि मानव चेतना के स्वार्थमय विकारों में उसका पता नहीं चलता; किंतु अपने-आपमें प्राण-तत्त्व दिव्य प्रेम के लिये वैसा ही महत्त्वपूर्ण तत्त्व है जैसा कि समग्र अभिव्यक्त जगत् के लिये। प्राण के माध्यम के बिना गति और प्रगति की कोई संभावना नहीं रहती; किंतु प्रकृति की यह 'शक्ति' इतनी बुरी तरह से विकृत की जा चुकी है कि कुछ लोग यह मानना पसंद करते हैं कि इसे जड़ से उखाड़कर फेंक देना चाहिये। परंतु आत्मा की रूपांतर करनेवाली शक्ति प्राण के द्वारा ही जड़-प्रकृति का स्पर्श करती है। यदि प्राण अपनी गतिशीलता और जीवंत शक्ति को जड़ प्रकृति में संचारित करने के लिये न हो तो जड़ प्रकृति मुर्दा बनी रहेगी, क्योंकि सत्ता के उच्चतर भाग पृथ्वी के साथ संबंध स्थापित न कर पायेंगे, वे जीवन में मूर्त रूप न ले सकेंगे, और असंतुष्ट लौटकर अंतर्धान हो जायेंगे।

जिस भागवत प्रेम के संबंध में मैं कह रही हूं वह ऐसा प्रेम है जो यहां इस भौतिक पृथ्वी पर, जड़-प्रकृति में अभिव्यक्त हो रहा है, किंतु यदि उसे अवतरित होना है तो उसे मानव विकृतियों से सर्वथा मुक्त रहना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्य सभी अभिव्यक्तियों की तरह इसके लिये भी प्राण एक अनिवार्य साधन है। परंतु जैसा कि हमेशा हुआ है, इस अमूल्य वस्तु पर विरोधी शक्तियों ने अपना अधिकार जमा लिया है। प्राण की शक्ति ही इस मंद और संवेदनशून्य जड़-प्रकृति में प्रविष्ट होकर उसे संवेदनक्षम तथा सजीव बनाती है। परंतु विरोधी शक्तियों ने इसे विकृत कर दिया है; उन्होंने इसे हिंसा, स्वार्थ, कामना तथा हर प्रकार के भद्देपन का क्षेत्र बना दिया है, इसे भागवत कर्म में भाग लेने से रोक दिया है। बस, करने लायक काम यही है कि हम इसे रूपांतरित करें, इसकी गति का निग्रह अथवा नाश न करें, इसके बिना कहीं तीव्रता संभव नहीं है। हमारे अंदर प्राण ही वह चीज है जो स्वभाव से ही अपने-आपको दे सकता है। प्राण ही वह तत्त्व है जिसमें हमेशा किसी चीज को लेने का आवेग तथा बल रहता है, इसी कारण जो वस्तु अपने-आपको संपूर्ण रूप से उत्सर्ग कर सकती है, वह भी प्राण ही है; चूंकि वह अधिकार जमाना जानता है, इसलिये वह यह भी जानता है कि बिना कुछ बचाये हुए अपने-आपको कैसे दिया जाये। प्राण की सत्य गति अन्य सभी गतियों से अधिक सुंदर और अत्यंत उत्कृष्ट है किंतु इसे तोड़-मरोड़कर अत्यंत भद्दा, अत्यंत विरूप और अत्यंत घृणास्पद बना दिया गया है। प्रेम-संबंधी मानव कथाओं में जहां कहीं शुद्ध प्रेम का अणुमात्र भी प्रवेश हो पाया है और उसे बहुत अधिक विकार के बिना अभिव्यक्त होने दिया गया है, वहीं हमें एक सत्य और सुंदर वस्तु दीख पड़ती है। और यदि यह गति अधिक देरतक नहीं ठहरती तो इसका कारण यह है कि यह अपने उद्देश्य और खोज़ से सचेतन नहीं है; इसे यह ज्ञान नहीं है कि इसकी खोज का विषय एक जीव की दूसरे जीव के साथ एकता नहीं, बल्कि समस्त जीवों की भगवान् के साथ एकता है।

प्रेम एक परम शक्ति है जिसे 'शाश्वत चेतना' ने अपने-आपमें से निकाल कर धुंधले और अंधकारग्रस्त जगत् में नीचे भेजा है, ताकि वह इस जगत् को और इसके जीवों को भगवान् के पास लौटा लाये। अज्ञान और अंधकार में डूबा हुआ जड़ प्राकृतिक जगत् भगवान् को भूल चुका था। प्रेम उस अंधकार में आया; जो सोये पड़े थे उन्हें जगाया; जो कान बंद थे उन्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खोलकर उनमें यह संदेश फूंका : "एक वस्तु है जो इस योग्य है कि उसके लिये जागा जाये और उसके लिये जिया जाये, और वह है प्रेम !" और प्रेम के प्रति इस जाग्रति के साथ-साथ भगवान् के पास लौट चलने की संभावना भी इस जगत् में प्रविष्ट हुई। प्रेम के द्वारा सृष्टि भगवान् की ओर उठती है और प्रत्युत्तर में भागवत प्रेम और भागवत कृपा सृष्टि से मिलने के लिये नीचे की ओर झुकते हैं। जबतक यह आदान-प्रदान न हो, परमात्मा और पृथ्वी का यह पारस्परिक मिलन न हो, भगवान् की ओर से सृष्टि के प्रति और सृष्टि की ओर से भगवान् के प्रति प्रेम की यह गति न हो तबतक प्रेम अपने शुद्ध सौंदर्य में नहीं रह सकता, अपनी नैसर्गिक शक्ति का और अपनी पूर्णता के प्रगाढ़ आनंद का संचार नहीं कर सकता। यह संसार मृत जड़-प्रकृति का जगत् था। फिर इसमें प्रेम का अवतरण हुआ जिसने इसे जीवन के प्रति जगा दिया। तभी से यह जगत् जीवन के इस दिव्य आदि-स्रोत की खोज में लगा है, किंतु अपनी इस खोज में इसने हर प्रकार के गलत मोड़ लिये हैं, बारंबार उल्टे रास्तों पर पड़ता और अंधेरे में इधर-से-उधर भटकता रहा है। यह समूची सृष्टि किसी अज्ञात को खोजनेवाले एक अंधे की तरह अपने मार्ग पर चली है, इसमें खोज तो है, पर वह यह नहीं जानती कि वह क्या खोज रही है। इसने जो अधिक-से-अधिक प्राप्त किया है, जो मानव प्राणियों को प्रेम का उच्चतम स्वरूप दिखायी देता है, जो उनकी समझ में शुद्धतम और निःस्वार्थतम प्रकार का प्रेम है, वह है माता का अपने बच्चे के प्रति प्रेम। प्रेम की यह मानव गति अबतक जो पा सकी है उससे इतर किसी वस्तु को गुप्त रूप से ढूंढ़ रही है; किंतु उसे नहीं मालूम कि वह वस्तु कहां मिलेगी, वह यह भी नहीं जानती कि वह है क्या। ज्यों ही मनुष्य की चेतना दिव्य प्रेम के प्रति जाग्रत् होती है, उस प्रेम के प्रति जो शुद्ध है, जो मानव रूपों में हुई सभी अभिव्यक्तियों से स्वतंत्र है, त्यों ही वह उसे जान जाती है जिसके लिये वास्तव में उसका हृदय इतने समय से तरस रहा था। यही है आत्मा की अभीप्सा का आरंभ, जिसके फल-स्वरूप चेतना में जाग्रति आती है और भगवान् के साथ एकता के लिये उत्कंठा उत्पन्न होती है। इसके साथ ही अज्ञान से उत्पन्न रूप और उसके लादे हुए विकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुरझाकर लुप्त हो जाते हैं और इन सबके स्थान पर सृष्टि की एक ही प्रकार की गति होती है जो भागवत प्रेम की पुकार का उत्तर भगवान् के प्रति अपने प्रेम द्वारा देती है। ज्यों ही सृष्टि भागवत प्रेम के लिये उन्मुख, सचेतन और जाग्रत् होती है त्यों ही भागवत प्रेम सृष्टि में फिर से अपनी असीम वर्षा करने लगता है। गतिचक्र अंतर्मुख हो जाता है और इसके दोनों छोर आपस में मिल जाते हैं, चरम तत्त्व, अर्थात् परम आत्मा और विकासोन्मुख जड़ प्रकृति एक हो जाते हैं तथा इनका दिव्य मिलन पूर्ण और स्थायी हो जाता है।

दिव्य प्रेम की परम पवित्रता और शक्ति के कुछ अंश को यहां उतार लाने के लिये महान् आत्माओं ने इस संसार में जन्म लिया है। इस संसार में अपनी सिद्धि को एक ही साथ सहजतर और पूर्णतर करने के लिये भागवत प्रेम ने इन लोगों के द्वारा अपने-आपको व्यक्तिगत रूप में प्रकट किया है। भागवत प्रेम जब किसी शरीरधारी व्यक्ति में प्रकट होता है तो उसे अनुभव करना अधिक सुगम होता है; किंतु इसकी अप्रकट या निर्वैयक्तिक गति को अनुभव करना अधिक कठिन होता है। जो मनुष्य इस व्यक्तिगत स्पर्श के कारण, इस व्यक्तिगत प्रगाढ़ता के साथ भागवत प्रेम की चेतना की ओर जाग्रत् होगा वह अनुभव करेगा कि उसका कार्य और उसका रूपांतर अधिक सुगम बन गया है; जिस ऐक्य को वह खोज रहा है वह उसके लिये अधिक स्वाभाविक और अधिक निकट हो जाता है। और यह ऐक्य, यह आत्म-साक्षात्कार उसके लिये पूर्णतर और सिद्धतर हो जायेगा; क्योंकि उसमें एक विराट् तथा निर्वैयक्तिक प्रेम की विशाल एकरूपता प्रकाशमान हो जायेगी और वह भगवान् से जितने प्रकार के संबंध संभव हैं उन सबके रूप-रंगों से अनुप्राणित और प्रकाशित हो जायेगी।

*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निचली श्रेणियों में प्रेम

मेरा ख्याल है कि "प्रेम" किसी ऐसी चीज को अभिव्यक्त करता है जो ऐसी सामान्य सद्भावना से अधिक तीव्र होती है जिसमें केवल चाह या स्नेह का ही समावेश होता है। लेकिन प्रेम हो या सद्भावना, मानव भावना सदा या तो अहंकार पर आधारित होती है या उससे प्रबल रूप से मिश्रित होती और इस कारण वह शुद्ध नहीं हो सकती। उपनिषद् में कहा गया है, मनुष्य पत्नी से पत्नी के लिये प्रेम नहीं करता, बालक या मित्र से उसके लिये प्रेम नहीं करता बल्कि *"आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति"*, प्रायः बदले की, लाभ या किसी तरह के फायदे की आशा रहती है या अमुक सुख या संतोष की, चाहे वह मानसिक, प्राणिक या भौतिक कोई-सा क्यों न हो जो प्रेम-पात्र से मिल सकता है, इन चीजों को अलग कर दो तो शीघ्र ही प्रेम डूब जाता, कम हो जाता, गायब हो जाता या क्रोध, लांछन, उदासीनता या घृणातक में बदल जाता है। लेकिन आदत का तत्त्व भी होता है। कोई ऐसी चीज होती है जो प्रेमपात्र की उपस्थिति को अपरिहार्य-सा बना देती है क्योंकि वह हमेशा से रहती आयी है—और कभी-कभी यह इतनी मजबूत होती है कि स्वभाव के एकदम असंगत होने, भयानक विरोध, घृणा का सा भाव होने के बावजूद वह बनी रहती है और असंगतियों की ये खाइयां भी व्यक्तियों को अलग करने में असमर्थ होती हैं; अन्य लोगों में यह भाव ज्यादा ठंडा पड़ जाता है और कुछ समय के बाद व्यक्ति अलगाव के लिये अभ्यस्त हो जाता है या स्थानापन्न को स्वीकार कर लेता है। और फिर बहुधा एक तरह का सहज आकर्षण या मानसिक, प्राणिक या भौतिक घनिष्ठता होती है जो प्रेम को अधिक प्रबल संसक्ति देती है और अंत में उच्चतम या गभीरतम प्रकार का चैत्य तत्त्ववाला प्रेम होता है जो अंतर्तम हृदय और अंतरात्मा से आता है—एक तरह का आंतरिक ऐक्य या आत्मदान या कम-से-कम उसके लिये चाह, एक ऐसा बंधन या ऐसी ललक जो अन्य परिस्थितियों या तत्त्वों से स्वतंत्र हो, जो किसी मानसिक, प्राणिक या भौतिक सुख, संतोष, रस या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभ्यास के लिये नहीं, अपने ही लिये अस्तित्व धारण करती हो। परंतु सामान्यतः मानव प्रेम में जहां चैत्य तत्त्व होता भी है वह भी अन्यों के साथ इतना अधिक मिश्रित, उनके भार से दबा और छिपा होता है कि उसे अपने-आपको कार्यान्वित करने या अपनी स्वाभाविक शुद्धि और पूर्णता प्राप्त करने का अवसर नहीं के बराबर मिलता है। अतः जिसे प्रेम कहा जाता है वह कभी एक चीज होती है कभी दूसरी, प्रायः उसमें बहुत घालमेल होता है और तुम्हारे प्रश्नों का व्यापक उत्तर देना असंभव है कि इस या उस अवस्था में प्रेम का अर्थ क्या है। यह व्यक्तियों और परिस्थितियों पर निर्भर है।

जब प्रेम भगवान् की ओर जाता है तब भी उसमें यह मानव तत्त्व मिला रहता है। उसमें बदले के लिये पुकार होती है और बदला आता हुआ न दिखायी दे तो प्रेम नीचे खिसकने लगता है, उसमें स्वार्थ होता है, भगवान् उन सब चीजों के दाता होते हैं जिनकी मनुष्य मांग करता है और अगर मांगें पूरी न हों तो आदमी भगवान् से रूठ जाता है, श्रद्धा, उत्साह आदि का क्षय होता है। लेकिन मूलतः भगवान् के लिये सच्चा प्रेम इस तरह का नहीं होता बल्कि चैत्य और आध्यात्मिक होता है। चैत्य तत्त्व अंतर्तम सत्ता की आत्मदान की, प्रेम, आराधना, और ऐक्य की आवश्यकता है जिसे भगवान् ही पूरी तरह से संतुष्ट कर सकते हैं। आध्यात्म तत्त्व है सत्ता के संपर्क की, विलय की, अपनी उच्चतम और समग्र आत्मा और सत्ता के मूल, चेतना और आनंद यानी भगवान् के साथ ऐक्य की आवश्यकता। ये दोनों एक ही चीज के दो पार्श्व हैं। मन, प्राण और शरीर इस प्रेम को सहारा देनेवाले और पानेवाले तो हो सकते हैं पर वे पूरी तरह से तभी होंगे जब उन्हें सत्ता के चैत्य और आध्यात्म तत्त्वों के साथ फिर से गढ़ा जाये और वे अहंकार के निम्नतर आग्रह को न ले आयें।

यह इसपर निर्भर है कि "प्रेम" से तुम्हारा क्या मतलब है? स्वभावतः भागवत प्रेम तो नहीं, परंतु प्राण में सब प्रकार के आवेग, आकर्षण कामनाएं मौजूद रहती हैं। जड़ पदार्थ में दिव्य चेतना के अवरोहण और फैलाव की वजह से इन सब गतियों का गुण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूरी तरह बदल गया है। उसने सच्चे प्रेम की संभावना को जगा दिया है अन्यथा ये सब चीजें, जिन्हें प्रेम माना जाता है, सभी आवेग, आकर्षण और कामनाएं—हड़प जाने की आवश्यकता—ये भली-भांति प्राण में मौजूद हैं। जड़ पदार्थ में प्रेम का पहला रूप है हड़पने की आवश्यकता—मनुष्य अधिकार जमाना, आत्मसात् करना चाहता है और इसे करने का सबसे अच्छा तरीका है निगल जाना और हजम कर लेना ! यह कहा जा सकता है कि जब बिल्ली अपने बच्चों को खा जाती है तो वह उनके लिये प्रेम से भरी होती है और इसी तरह जब शेर मेमने को हड़पता है तो वह उसके लिये प्रेम से भरा होता है।

प्रेम केवल एक ही है, दिव्य प्रेम, शाश्वत, वैश्व, सबके लिये, सभी चीजों के लिये समान।

मनुष्य (मानव सत्ता) सब तरह के भावों, कामनाओं, सभी आकर्षणों सभी प्राणिक आदान-प्रदानों, सभी लैंगिक संबंधों, सभी आसक्तियों, सभी मित्रताओं और इनके अतिरिक्त और बहुत चीजों को प्रेम कहता है।

लेकिन यह सब प्रेम की छाया या प्रेम की विकृतितक नहीं है।

ये मानसिक और प्राणिक क्रिया-कलाप, भावुकता या कामुकताभरी चीजें हैं, इसके सिवा कुछ नहीं।

प्रेम सेक्स का आदान-प्रदान नहीं है।

प्रेम प्राणिक आकर्षण और आदान-प्रदान नहीं है।

प्रेम स्नेह के लिये हृदय की भूख भी नहीं है।

प्रेम सीधा एकमेव से आनेवाला प्रबल स्पंदन है और केवल बहुत शुद्ध और बहुत मजबूत लोग ही उसे ग्रहण और अभिव्यक्त कर सकते हैं।

शुद्ध होने का अर्थ है केवल परम प्रभु के प्रभाव की ओर खुला होना, और किसी के नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मचर्य

उस महाविपुल बौद्धिकता, आध्यात्मिकता और अतिमानवीय नैतिक शक्ति का रहस्य क्या था जिसे हम रामायण और महाभारत में, प्राचीन दर्शन-शास्त्र में, भारत के सर्वोत्कृष्ट काव्य, कला, शिल्प और स्थापत्य में स्पंदित होते हुए देखते हैं ? उन अतुलनीय सार्वजनिक कार्यों और निर्माणकला की सफलताओं का, समृद्ध और परमोत्कृष्ट उद्योगशिल्प का, भौतिकशास्त्र, विद्वत्ता, न्याय-विधान, तर्कशास्त्र और तत्त्व-ज्ञान की महान् विजयों का, उस अनुपम समाज-व्यवस्था का आधार क्या था ? क्षत्रिय, सिख और राजपूत की वीरता और आत्म-त्याग का, राष्ट्र की अजेय प्राणशक्ति और कष्ट-सहिष्णुता का आधार क्या था ? क्या चीज थी उस सभ्यता के पीछे जो अपने आकार की गौरवपूर्ण विशालता अथवा अपनी सर्वांगपूर्णता में अपना सानी नहीं रखती थी ? एक महान् और अद्वितीय अनुशासन के बिना, जिसमें आत्मा और मन की एक सर्वांगपूर्ण शिक्षा निहित हो, ऐसा विशाल और चिरस्थायी परिणाम असंभव होता। प्राचीन आश्रमों और विश्वविद्यालयों में दी जानेवाली शिक्षा-संबंधी बारीक व्योरे की बातों में, जहांतक कि प्राचीन परंपरा से वे हमें प्राप्त हुई हैं, आर्यों की सफलता का रहस्य ढूंढ़ने का प्रयत्न करना एक भूल होगी। हमारे लिये यह जानना आवश्यक है कि वह सिद्धांत और आधार क्या था जिसपर वे व्योरे की बातें प्रतिष्ठित थीं। मानव मनोविज्ञान के एक गंभीर ज्ञान में तथा बौद्धिक प्रशिक्षा और शिक्षा की पद्धतियों के भीतर उस ज्ञान के सूक्ष्म उपयोग में हमें प्राप्त होगा आर्यों की सफलता का रहस्य।

आर्यों की प्राचीन शिक्षा-पद्धति के मूल में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण वस्तु थी ब्रह्मचर्य का अभ्यास। बौद्धिक ज्ञान के एक विशाल भवन का निर्माण करने के लिये सर्वप्रथम आवश्यकता है एक ऐसी सुदृढ़ आधार-शिला की जो उसके भार को वहन कर सके। वे शिक्षा-पद्धतियां जो मानव प्रकृति के अधूरे ज्ञान से आरंभ करती हैं, सोचती हैं कि जब विद्यार्थी को उन अनेक विविध विषयोंसंबंधी, जो तत्कालीन मानव संस्कृति के सर्वोत्तम अंग हों,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विस्तृत या भली प्रकार चुनी गयी ज्ञान की राशि प्रदान कर दी जाती है तो एक संतोषजनक आधारशिला स्थापित करने का कार्य संपन्न हो जाता है। उनका सिद्धांतसूत्र यह है कि विद्यालय सामग्री प्रदान करता है, उसका उपयोग करना विद्यार्थी का काम है। किंतु यहां एक बुनियादी भूल हो रही है। निरी जानकारी बौद्धिक शक्ति का आधार नहीं हो सकती, वह केवल उस सामग्री का एक अंश हो सकती है जिसमें से ज्ञाता ज्ञान का निर्माण करता है, वह केवल नवीन आविष्कार और विशालतर सृजन का आरंभ-बिंदु, केंद्र-बिंदु हो सकती है। वह शिक्षा जो केवल ज्ञान देनेतक ही अपने-आपको सीमित रखती है कोई शिक्षा नहीं है। स्मृति, निर्णय, कल्पना, प्रत्यक्षीकरण, तर्क आदि विविध मानसिक शक्तियों को, जो ज्ञाता के लिये विचार और ज्ञान के भवन का निर्माण करती हैं, न केवल उपयुक्त और पर्याप्त उपकरणों और सामग्रियों से संपन्न करना होगा अपितु, उन्हें नयी सामग्रियां प्राप्त करने के लिये और जो सामग्रियां प्राप्त हैं उनका अधिक कुशलतापूर्वक उपयोग करने के लिये प्रशिक्षित करना होगा। और जिस भवन का उन्हें निर्माण करना है, उसकी एकमात्र आधारशिला हो सकती है शक्ति और ऊर्जा के एक ऐसे भंडार का संचय जो स्मृति, निर्णय और सृजनात्मक शक्ति की चिर-वर्धमान क्रिया की मांगों का भार वहन करने के लिये पर्याप्त हो। वह शक्ति वहां प्राप्त होगी ?

प्राचीन आर्य यह जानते थे कि मनुष्य विश्व-सत्ता से पृथक् नहीं है, अपितु उसका एक समधर्मी अभिन्न अंगमात्र है, जैसे तरंग समुद्र का। एक अनंत शक्ति—प्रकृति, माया या शक्ति—विश्व को व्याप्त किये हुए है, प्रत्येक नाम और रूप में स्वयं को ढाल रही है और मिट्टी का ढेला, पौधा, कीट, पशु, मनुष्य, सब अपनी बाह्य नाम-रूपात्मक सत्ता में इसी शक्ति के कम या अधिक कार्यक्षम आधारमात्र हैं। हममें से प्रत्येक एक डाइनमो है जिसमें उस शक्ति की तरंगें उत्पन्न और संचित की गई हैं और जिसमें नित्य निरंतर उनका संरक्षण, व्यय और परिपूर्ति होती रहती है। वही शक्ति जो नक्षत्र और ग्रह में क्रियाशील है, हममें भी क्रियाशील है, और हमारे समस्त विचार और कर्म उसकी लीलामात्र हैं तथा उसकी क्रियाओं के जटिल जाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से उत्पन्न होते हैं। ऐसी प्रक्रियाएं हैं जिनके द्वारा मनुष्य एक आधार के रूप में अपनी क्षमता को बढ़ा सकता है। दूसरी प्रक्रियाएं भी हैं जिनके द्वारा वह अपने और विश्वात्मक शक्ति के बीच संपर्क की धारा को बाधाओं से मुक्त कर सकता है और उस शक्ति के बृहत्तर-से-बृहत्तर भंडारों को नीचे खींचकर अपनी आत्मा, मस्तिष्क और शरीर में उनको प्रवाहित करा सकता है। आधार की यह निरंतर उन्नति तथा अनुप्राणित करनेवाली शक्ति की क्रिया की मात्रा और सूक्ष्म जटिलता में अधिकाधिक वृद्धि, यही क्रम-विकास का समूचा उद्देश्य है। जब वह शक्ति सर्वोच्च प्रकार की और पूर्णतम मात्रा में होती है, जिसके लिये मानव आधार समर्थ होता है, और जब स्वयं आधार उस शक्ति के प्रबल अंतःप्रवाह और क्रीड़ा को पूर्णतः वहन करने के लिये अभ्यस्त हो जाता है, तब मनुष्य सिद्ध हो जाता है, आप्तकाम या पूर्ण पुरुष बन जाता है, उसका क्रम-विकास पूरा हो जाता है और वह व्यष्टिरूप में उस अधिकतम विकास को पूर्ण कर चुकता है जिसके लिये मानवजाति सामूहिक रूप में युग-युग से कठिन प्रयास कर रही है।

यदि यह सिद्धांत सत्य हो तो बुद्धि की क्रिया के मूल में स्थित शक्ति हमारे भीतर ही होनी चाहिये और उसमें विशालतर विस्तार एवं समृद्धतर उपयोग की इतनी क्षमता होनी चाहिये जो प्रायः असीम हो। और यह भी एक सच्चा और ठोस सिद्धांत होना चाहिये कि हम उस शक्ति की जितनी अधिक वृद्धि कर सकें और जितना उसे अधिक समृद्ध बना सकें, हमारे मन की क्रियाओं के विस्तार, शक्ति और कार्य की अंतर्निहित संभावना तथा उसके परिणामस्वरूप उत्पन्न होनेवाली हमारी बौद्धिकता की शक्ति और हमारी उपलब्धियों की विशालता उतनी ही अधिक महान् होगी। यह वह प्रथम सिद्धांत था जिसे प्राचीन आर्यों ने अपनी शिक्षा का मूल आधार बनाया था और ऊर्जा के भंडार की निरंतर वृद्धि की प्राप्ति के लिये जिन मुख्य पद्धतियों का उन्होंने उपयोग किया, उनमें से एक थी ब्रह्मचर्य का अभ्यास।

*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंतःस्थित शक्ति को बढ़ाने की और उसे ऐसे उपयोगों में लाने की, जिनसे उसे धारण करनेवाले व्यक्ति को या मानवजाति को लाभ हो, पहली और सबसे आवश्यक शर्त है ब्रह्मचर्य का अभ्यास। मनुष्य की सारी शक्ति का एक भौतिक आधार होता है। यूरोपीय जड़वाद के द्वारा की गयी भूल यह है कि वह भौतिक आधार को ही सब कुछ मान लेता है और उसे शक्ति का मूल-स्रोत समझने की गड़बड़ कर बैठता है। जीवन और प्राण-शक्ति का मूल-स्रोत भौतिक नहीं अपितु आध्यात्मिक है, किंतु जिस आधारशिला, नींव पर जीवन और शक्ति प्रतिष्ठित एवं क्रियाशील हैं, वह भौतिक है। प्राचीन हिंदू कारण और प्रतिष्ठा—सत्ता के ऊपरी और निचले छोरों—के बीच भेद को स्पष्ट रूप से समझते थे। पृथ्वी या स्थूल भौतिक तत्त्व प्रतिष्ठा है और कारण है ब्रह्म या आत्मा। भौतिक तत्त्व का आध्यात्मिक सत्ता में उत्कर्षण ही ब्रह्मचर्य है, क्योंकि दोनों के सम्मिलन से वह शक्ति जो एक (ब्रह्म या आत्मा) से निस्सृत होकर दूसरे (भौतिक तत्त्व) को उत्पन्न करती है, वृद्धि को प्राप्त होती और स्वयं को चरितार्थ करती है।

यह ब्रह्मचर्य का तात्त्विक सिद्धांत है। इसका क्रियात्मक उपयोग निर्भर होता है शक्ति के मानव आधार की भौतिक और मनोवैज्ञानिक रचना के ठीक-ठीक ज्ञान पर। मूलभूत भौतिक इकाई है रेतस्, जिसमें कि मनुष्य के अंतःस्थित तेजस्, अर्थात्, ऊष्मा और प्रकाश और विद्युत्-शक्ति अंतर्निहित और छिपे पड़े हैं। सारी ऊर्जा रेतस् में निगूढ़ रूप से विद्यमान है। यह शक्ति या तो स्थूल भौतिक रूप में व्यय की जा सकती है या सुरक्षित रखी जा सकती है। समस्त आवेग, भोगेच्छा, कामना, इस शक्ति को स्थूल रूप में या एक उत्कृष्ट सूक्ष्मतर रूप में शरीर से बाहर फेंककर उसे नष्ट कर देती है। अनैतिक आचरण उसे स्थूल रूप में बाहर फेंक देता है; अनैतिक विचार सूक्ष्म रूप में। दोनों में से प्रत्येक दशा में शक्ति व्यर्थ नष्ट होती है, और अब्रह्मचर्य जैसे शारीरिक होता है वैसे ही मानसिक और वाचिक भी। इसके विपरीत समस्त आत्म-संयम रेतस् में निहित ऊर्जा की रक्षा करता है और रक्षा के साथ सदा वृद्धि होती है किंतु भौतिक शरीर की आवश्यकताएं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीमित हैं और अतिरिक्त शक्ति से अवश्य ही उसके एक संचित भंडार का निर्माण होगा जो भौतिक के अतिरिक्त अन्य किसी उपयोग में प्रयुक्त होना चाहिये। प्राचीन सिद्धांत के अनुसार रेतस् जल है जो प्रकाश और ऊष्मा और विद्युत् से, एक शब्द में, तेजस् से परिपूर्ण है। रेतस् का विशेष संचय सर्वप्रथम ऊष्मा या तपस् में परिवर्तित होता है, जो सारे शरीर को प्रदीप्त करता है, और इसी कारण आत्म-संयम और तपस्या के सभी रूप तपस् या तपस्या कहलाते हैं क्योंकि वे ऊष्मा या उस प्रेरक शक्ति को उत्पन्न करते हैं जो शक्तिशाली कर्म और सिद्धि का मूल-स्रोत है; द्वितीयतः वह वास्तविक तेजस्, अर्थात् प्रकाश, ऊर्जा में परिवर्तित होता है जो समस्त ज्ञान का मूल उद्‌गम है; तृतीयतः वह विद्युत् में रूपांतरित होता है जो सारे शक्तिशाली कर्म का आधार है, चाहे वह कर्म बौद्धिक हो या शारीरिक। और फिर विद्युत् में निहित है ओजस् या प्राण-शक्ति जो आकाश से उत्पन्न होनेवाली मूलभूत शक्ति है। रेतस् जल से तपस्, तेजस् और विद्युत् में तथा विद्युत् से ओजस् में परिष्कृत होकर शरीर को शारीरिक बल, ऊर्जा और मस्तिष्क को शक्ति से भर देता है और अपने अंतिम स्वरूप ओजस् के रूप में ऊर्ध्वगामी होकर मस्तिष्क में पहुंचता है तथा उसे उस मूल ऊर्जा से अनुप्राणित कर देता है जो जड़-तत्त्व का सबसे परिष्कृत रूप है तथा आत्मा के सबसे अधिक निकट है। वह ओजस् ही है जो आध्यात्मिक शक्ति या वीर्य को उत्पन्न करता है जिसके द्वारा मनुष्य आध्यात्मिक ज्ञान, आध्यात्मिक प्रेम और श्रद्धा, आध्यात्मिक बल को प्राप्त करता है। इसका निष्कर्ष यह है कि हम ब्रह्मचर्य के द्वारा तपस्, तेजस्, विद्युत् और ओजस् के भंडार को जितना ही अधिक बढ़ा सकें, उतना ही अधिक हम स्वयं को शरीर, हृदय, मन और आत्मा के कार्यों के लिये पूर्ण एवं विशुद्ध शक्ति से भर देंगे।

*

किंतु भारत में सर्वोच्च प्रतिभासंपन्न पुरुष ही सबसे अधिक बहुमुखी संसिद्धिवाले व्यक्ति हुए हैं और उन्होंने अपनी उच्चता को एक इंच भी खोये या अपनी सृजनात्मक शक्ति की तीव्रता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का कण-भर भी त्याग किये बिना, सरलतापूर्वक, सुस्थिर चरणों से, सुनिश्चित अधिकारपूर्वक संसिद्धि के एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में पदार्पण किया है। इस सहज और निश्चित ज्ञानोद्‌भासन का—जो ब्रह्मचर्य के द्वारा उत्पन्न अमोघ शक्ति की चरम परिणति है—कारण वह आत्म-साधना थी, जो सत्त्व या आंतरिक प्रकाश का विकास करती थी। यह आंतरिक प्रकाश ज्ञानप्राप्ति को तथा अन्य समस्त बौद्धिक क्रियाओं को सरल, सहज-स्वाभाविक, क्षिप्र, सुनिश्चित, तथा शरीर या मस्तिष्क के लिये अपेक्षाकृत कम थकानेवाला बना देता है। इन्हीं दो वस्तुओं में कार्यों की बौद्धिक उपलब्धि का रहस्य निहित है, ब्रह्मचर्य और सात्विक विकास ने भारत के मस्तिष्क का निर्माण किया था : योग के द्वारा उसे पूर्ण बनाया गया था।

प्रेम का सच्चा हेतु

जब चेतना अपने मूल से अलग हुई और निश्चेतना बन गयी तो 'मूल' ने प्रेम को निस्सृत किया ताकि वह निश्चेतना की गहराइयों से चेतना को जगाये और उसे फिर से अपने 'मूल' के साथ संपर्क में ले आये।

यह कहा जा सकता है कि अपने मूल में प्रेम आकर्षण की वह परम शक्ति है जो उत्तर-स्वरूप एक निरपेक्ष आत्मदान की अप्रतिरोध्य आवश्यकता को जगाती है; ये संपूर्ण विलय की ओर ले जानेवाली ललक के दो ध्रुव हैं।

व्यक्ति के निर्माण से पृथक्ता की जो खाई खुद जाती है उसपर पुल बनाने का काम इस गति से अच्छा और निश्चित और कोई नहीं हो सकता। जो चीज आकाश में प्रक्षिप्त की गयी थी उसे इस तरह निर्मित विश्व को नष्ट किये बिना अपनी ओर वापिस लाने के लिये यह जरूरी था।

इसीलिये ऐक्य की अप्रतिरोध्य शक्ति, प्रेम उछल पड़ा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब रोटी बनानेवाला अपने गुंथे हुए आटे को उठाना चाहता है तो वह उसमें खमीर डालता है और आटे के अंदर से ही रूपांतर शुरू होता है।

जब भगवान् जड़ पदार्थ को उठाना और प्रभु की ओर जगाना चाहते थे तो उन्होंने अपने-आपको प्रेम के रूप में पदार्थ में डाला और भीतर ही से रूपांतर हो रहा है।

माताजी की कहानी

सृष्टि-संबंधी जो बहुत-सी कहानियां कही गयी हैं हम उनमें से किसी एक को चुन सकते हैं जो न्यूनाधिक रूप से सच्ची, न्यूनाधिक रूप से पूर्ण और न्यूनाधिक रूप से अभिव्यंजक हैं। मैं बहुत संक्षेप में तुम्हें एक कहानी सुनानेवाली हूं, उसे शास्त्र के रूप में न मानकर कहानी के रूप में लो।

जब परम प्रभु ने अपने-आपको मूर्त्त रूप देना चाहा ताकि वे अपने-आपको देख सकें तो उन्होंने अपने अंदर से जिस पहली चीज को मूर्त्त रूप दिया वह थी जगत् का ज्ञान और उसका सृजन करने की शक्ति। इस ज्ञान-चेतना और शक्ति ने अपना काम शुरू किया और परम इच्छा में एक योजना थी और इस योजना का पहला मूल तत्त्व था तात्त्विक आनंद और तात्त्विक स्वाधीनता की अभिव्यक्ति जो इस सृष्टि के सबसे अधिक रुचिकर रूप मालूम होते थे।

इसलिये बिचौलियों की आवश्यकता हुई जो इस आनंद और स्वाधीनता को रूपों में प्रकट करें। पहले-पहल चार सत्ताएं इस वैश्व विकास को शुरू करने के लिये निस्सृत हुईं जो उस सबका क्रमिक विषयीकरण हैं जो संभाव्य रूप से परम पुरुष में समाया हुआ है। ये सत्ताएं अपने अस्तित्व के तत्त्व में चेतना, प्रकाश, जीवन या आनंद, प्रेम और सत्य हैं।

तुम भली-भांति कल्पना कर सकते हो कि इनमें बहुत शक्ति, बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बल, किसी आश्चर्यजनक विशाल वस्तु का भाव था क्योंकि ये तत्त्वतः इन चीजों का ही तत्त्व थीं। और फिर उन्हें चुनाव करने की पूरी आजादी थी क्योंकि यह सृष्टि स्वयं 'स्वाधीनता' होनेवाली थी . . . जैसे ही वे काम में लगीं,—उनके अंदर अपनी ही धारणा थी कि उसे कैसे किया जाये—पूरी तरह स्वतंत्र होने के कारण उन्होंने उसे स्वतंत्र रूप से करने का चुनाव किया। अर्थात् भगवान् का सेवक और यंत्र होने की वृत्ति अपनाने की जगह उन्होंने स्वामी की वृत्ति अपनायी। और यह—जिसे मैं भूल कह सकती हूं—पहला कारण, विश्व की सारी अव्यवस्था का पहला कारण था। जैसे ही पृथक्करण हुआ, क्योंकि पृथक्करण ही तत्त्वतः पहला कारण था, जैसे ही परम पुरुष और जो कुछ निस्सृत हुआ था उनमें अलगाव हो गया, चेतना निश्चेतना में, प्रकाश अंधकार में, प्रेम घृणा में, आनंद दुःख में, जीवन मरण में और सत्य मिथ्यात्व में बदल गया और वे स्वतंत्र रूप से अलगाव और अव्यवस्था के अपने सृजन की ओर चल पड़े।

परिणाम है वह जगत् जिसे हम देखते हैं। इसे उत्तरोत्तर, एक-एक कदम करके बनाया गया। तुम्हें यह सब बताने में बहुत अधिक समय लगेगा लेकिन अंत में उसकी निष्पत्ति है जड़ पदार्थ—अंधकारमय निश्चेतन और दुःखी . . .। जिस सर्जक शक्ति ने इन चार सत्ताओं को निस्सृत किया था, विशेष रूप से सृष्टि के उत्पादन के लिये, उसने देखा कि क्या हो गया है और परम प्रभु की ओर अभिमुख होकर उसने, जो अशुभ हो गया था उसके उपचार और प्रतिकार के लिये प्रार्थना की।

तब उसे यह आदेश मिला कि वह अपनी चेतना को इस निश्चेतना में, अपने प्रेम को इस पीड़ा में, अपने सत्य को इस मिथ्यात्व में फैला दे। और पहले जो चीजें निस्सृत हुई थीं उनसे अधिक महान् चेतना, अधिक पूर्ण प्रेम, अधिक पूर्ण सत्य ने जड़-द्रव्य के संत्रास में डुबकी लगायी ताकि उसमें चेतना, प्रेम और सत्य को जगा सके और पुनःप्राप्ति की उस क्रिया को शुरू कर सके जो जड़ भौतिक विश्व को अपने परम उद्भव की ओर वापिस ला सके।

यही है मेरी कहानी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम क्या है ?

सचेतन अनुभव ही हमें इसकी झांकी दे सकता है कि प्रेम क्या है, उसका हेतु और उसकी प्रक्रिया क्या है। कोई भी शाब्दिक आलेखन अनिवार्यतः किसी ऐसी चीज की मानसिक नकल है जो सब प्रकार की अभिव्यक्ति से हर तरह से बच निकलती है। दार्शनिक, रहस्यवादी, तत्त्वज्ञानी, सबने प्रेम की व्याख्या करने की कोशिश की है परंतु व्यर्थ। जहां वे असफल हुए हैं वहां मैं सफल होने का दावा नहीं करती। लेकिन मैं यथासंभव सरल से सरल भाषा में वह कह देना चाहती हूं जो उनके लेखों में इतना अमूर्त्त और जटिल रूप ले लेता है। मेरे शब्दों का इसके सिवा कोई उद्देश्य न होगा कि वे तुम्हें जीवित अनुभूति की ओर ले जायें। मैं छोटे-से बालक को भी उस ओर ले जाना चाहती हूं।

प्रेम अपने सार तत्त्व में तादात्म्य का आनंद है; वह अपनी चरम अभिव्यक्ति ऐक्य के आनंद में पाता है। इन दोनों के बीच वैश्व अभिव्यक्ति के सभी पक्ष आ जाते हैं।

इस अभिव्यक्ति के आरंभ में, उसके मूल की शुद्धि में, प्रेम दो गतियों से बना होता है, दो पूरक ध्रुवों से जो पूर्ण ऐक्य की ओर ले जाते हैं। एक ओर है आकर्षण की परम शक्ति और दूसरी ओर है पूर्ण आत्मदान की अप्रतिरोध्य आवश्यकता। जब व्यक्तिगत सत्ता में चेतना अपने मूल से अलग हुई और निश्चेतना बन गयी तो उससे जो खाई बनी थी उसे और कोई गति इतनी अच्छी तरह न पार कर सकती थी।

जो चीज आकाश में प्रक्षिप्त की गयी थी उसे इस तरह से बने हुए विश्व को नष्ट किये बिना स्वयं अपनी ओर वापिस लाना था। इसीलिये प्रेम ने ऐक्य की अप्रतिरोध्य शक्ति का विस्फोट किया।

उसने अंधकार और निश्चेतना को सेया। वह अगाध रात्रि के वक्षस्थल पर फैलकर टुकड़े-टुकड़े हो गया। तब जागरण और आरोहण, जड़ द्रव्य की आनुक्रमिक रचना और उसकी अंतहीन प्रगति शुरू हुई। वस्तुतः यह भ्रष्ट और अंधेरे रूप में प्रेम ही है जो भौतिक और प्राणिक प्रवृत्ति के सभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवेशों के साथ सभी गतियों और समूहनों में जुड़ा हुआ है, जो वनस्पति जगत् में स्पष्ट रूप से दिखायी देता है। पौधों और पेड़ों में अधिक स्थान, अधिक प्रकाश और अधिक हवा पाने के लिये बढ़ने की आवश्यकता होती है, फूलों में अपने सौंदर्य और सुरभि का प्रेममय प्रस्फुटन में उत्सर्ग होता है। फिर मनुष्यों में प्रेम ही भूख और प्यास के पीछे होता है, विनियोग, प्रसार, प्रजनन, संक्षेप में कहें तो हर सचेतन या अचेतन कामना के पीछे प्रेम ही होता है। उच्चतर जातियों में मादा का अपने बच्चों के लिये आत्मोत्सर्ग-भरा प्रेम होता है। स्वभावतः यह हमें मानवजातितक ले आता है जिसमें मानसिक क्रिया-कलाप के विजयी आगमन के साथ यह संपर्क अपने शिखर पर पहुंच जाता है क्योंकि तब यह सचेतन और संकल्पित होता है।

प्रेम के अवतरण से पहले क्या था ?

क्या प्रेम के अवतरण से पहले भी सत्ताएं थीं ? क्या वे सचेतन थीं ?

कोई पार्थिव सत्ताएं नहीं थीं। निश्चेतना में अवतरण के बाद ही पार्थिव सत्ताएं और पृथ्वी अस्तित्व में आयीं, उससे पहले नहीं।

परम प्रभु से लेकर पूर्णतया भौतिक क्षेत्रतक सत्ता की विभिन्न स्थितियों की रचना निश्चेतना के बाद की है। (मैं जो कहती हूं उसे एकदम शाब्दिक रूप में इस तरह न लो मानों यह किसी और देश का इतिहास हो क्योंकि यह ऐसा नहीं है, मैं तुम्हें समझाने की कोशिश कर रही हूं, बस इतना ही), जब चेतना ने अपना सृजन "शुरू किया" तो सृजनात्मक चेतना की पहली अभिव्यक्ति चेतना की—सचेतन प्रकाश की—एक निस्सृति थी और जब इस निस्सृति ने अपने-आपको अपने उद्गम से अलग किया तो विरोध द्वारा निश्चेतना का जन्म हुआ, इसे कैसे कहा जाये ? . . . हां, निश्चय ही विरोध द्वारा, फलतः निश्चेतना का जन्म जगत् के निर्माण से पहले का है, और जब यह मालूम हुआ कि सारे विश्व का निर्माण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यर्थ में होनेवाला है तभी पुकार हुई और दिव्य प्रेम ने उसे चेतना में बदलने के लिये निश्चेतना में डुबकी लगायी। इसलिये यह कहा जा सकता है कि जड़ जगत्, जैसा कि हम उन्हें जानते हैं, परम चेतना के निश्चेतना में अवतरण का परिणाम हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि उससे पहले भी कुछ था, उस तरह की कुछ चीजें थीं जिन्हें हम जानते हैं। (मैं अपने शब्दों की अस्पष्टता के लिये क्षमा मांगती हूं, लेकिन तुम समझ सकते हो कि इन चीजों को हमारे सामान्य शब्दों में नहीं कहा जा सकता)।

क्या भागवत अवतरण के पहले जड़ भौतिक द्रव्य का अस्तित्व था?

मुझे नहीं लगता कि यह कहा जा सकता है कि कोई भौतिक द्रव्य था। निश्चेतन . . . वह निश्चेतन था। पता नहीं इस चीज को तुम्हें कैसे समझाया जाये। अगर किसी चीज का अभाव था तो वह निश्चेतना थी, वह हर चीज का अभाव है। उसमें रिक्तता की क्षमता भी नहीं है। वह क्या है इसे जानने और समझाने के लिये जरूरी है कि तुम उसके अंदर उतरो। शब्द उसका वर्णन नहीं कर सकते। वह सभी चीजों का अभाव है क्योंकि सब कुछ चेतना से ही शुरू होता है। चेतना के बिना कुछ नहीं होता।

आपने कहा, "प्रेम हर जगह है, उसकी गति पेड़ों में, शायद पत्थरों तक में है . . ." अगर पत्थर में प्रेम है तो हम उसे कैसे देख सकते हैं?

शायद वे विभिन्न तत्त्व जिनसे पत्थर बनता है उनका समन्वय प्रेम की चिंगारी के द्वारा हुआ था। मुझे विश्वास है कि जब भागवत प्रेम भौतिक पदार्थ में उतरा तो पदार्थ बिल्कुल निश्चेतन था, उसका कोई रूप न था। यह भी कहा जा सकता है कि सामान्यतः रूप हैं प्रेम के द्वारा जड़ पदार्थ में चेतना को लाने के प्रयास का परिणाम। मेरे अंदर अपने सन्देह हैं, फिर भी यदि तुममें से कोई नीचे निश्चेतना में उतरे, शुद्ध निश्चेतना में, तो तुम अनुभव कर सकोगे कि वह क्या है। तब तुम्हें तुलना में पत्थर अद्भुत रूप से सचेतन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पदार्थ मालूम होगा। तुम पत्थर के बारे में घृणा से बोलते हो क्योंकि तुम्हारे अंदर उसकी अपेक्षा कुछ अधिक चेतना है, लेकिन पत्थर की चेतना और समग्र निश्चेतना में जो अंतर है वह शायद उसकी अपेक्षा अधिक है जितना तुम्हारे और पत्थर के बीच है। और निश्चेतना से बाहर निकलना शुद्ध रूप से भगवान् के बलिदान के तथा भागवत प्रेम के इस निश्चेतना में अवतरण के कारण है। फलतः जब मैंने कहा "शायद पत्थर में," तो मैं "शायद" शब्द को हटा सकती थी। मैं दावा कर सकती हूं कि पत्थर **में भी**। इस भागवत प्रेम की उपस्थिति के बिना कुछ भी न होता, न पत्थर, न धातु और न अणुओं का कोई और संगठन।

प्रेम की प्रथम अभिव्यक्तियां
और
उसका शिखर

कहा जाता है कि शेर की निगल जाने की आवश्यकता जगत् में प्रेम की पहली अभिव्यक्ति है। मेरा ख्याल है कि शेर से पहले समुद्र की गहराई में ऐसे प्रारंभिक प्राणी रहे होंगे जिनका एकमात्र कार्य रहा होगा खाना। उनका अस्तित्व केवल पेट के रूप में रहा होगा अतः वे निगलते ही जाते थे—यही उनका एकमात्र कार्य था। स्पष्टतः प्रेम की शक्ति के भौतिक पदार्थ में प्रवेश करने के प्रथम परिणामों में से एक यह था क्योंकि इससे पहले कुछ न था: संपूर्ण निश्चेतना थी, पूरी निष्क्रियता थी, कोई चीज हिलती तक न थी। प्रेम के साथ गति शुरू हुई और साथ ही चेतना की जाग्रति और रूपांतरण की गति। यह कहा जा सकता है कि पहले रूप जड़-पदार्थ में प्रेम की पहली अभिव्यक्ति थे। तो हम निगलने की आवश्यकता से जो एकमात्र चेतना है—निगलने की, एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने की आवश्यकता से शुरू कर सकते हैं—क्षमा करो, हम कहते हैं कि प्रेम जगत् की शक्ति है—लेकिन यह चीजों को जोड़ने का आदिम तरीका है, लेकिन है बिल्कुल सीधा तरीका। तुम चीज को निगल कर आत्मसात् कर लेते हो। वस्तुतः शेर उसमें बहुत आनंद का अनुभव करता है। तो लो, आनंद आ ही गया, यह प्रेम का एक उच्च रूप है। तुम इससे ऊपर, और अधिक ऊपर मनुष्यों में प्रेम की उच्चतम अभिव्यक्ति तक जा सकते हो—जिससे प्रेम किया जाये उसके लिये संपूर्ण आत्मदान; जैसे अपने देश के लिये जान देना, किसी को बचाने के लिये अपने प्राण देना या इस तरह की चीजें। यह अपने-आपमें काफी ऊंचा है। फिर भी यह कुछ कीचड़ से मिला हुआ है। यह उच्चतम रूप नहीं है, फिर भी कुछ चीज तो है ही, और तुम सभी चरण देखते हो, देखते हो न? हां, तो सच्ची अभिव्यक्ति तक पहुंचने के लिये, मैंने जिसका वर्णन किया है वहांतक पहुंचने के लिये, जो आरोहण का शिखर है, तुम्हें काफी ऊपर चढ़ना होगा। (माताजी 'चार तपस्याएं' नामक पुस्तक में से पढ़ती हैं) :

"प्रेम अपने सारतत्त्व में अभिन्न होने का आनंद है, वह अपनी अभिव्यक्ति ऐक्य के आनंद में पाता है।"

पहले, प्रेम की निस्सृति से पहले, एक ऐसी चीज है जिसे हम बड़े भद्दे ढंग से "तादात्म्य का आनंद" कह सकते हैं। उसकी धारणा करना बहुत कठिन है क्योंकि मानव विचार वस्तुओं के बारे में उनके विपरीत रूप के बिना नहीं सोच सकता। चरम पक्ष तब आता है जब प्रेम सारे विश्व का पूरा चक्कर लगाकर अपने उद्गम तक लौट आता है। तब उसे उन सारे अनुभवों का परिणाम प्राप्त होता है जो उसने पाये हैं और वह अपने आरंभ-बिंदु तक लौट आता है। वह अपने आरंभ-बिंदुतक किसी ऐसी चीज के साथ लौटता है जो चलते समय उसके पास न थी, वह है विश्व का अनुभव। और वस्तुतः यही सृष्टि का प्रयोजन है। अगर चेतना अपने-आपको सृष्टि में प्रकट न करती तो वह न होती जो अब है। हां, तो सृजन से लौटते हुए—यह ख्याल रखो कि यह कोई ऐसी चीज नहीं है जो काल में घटती है, उसकी कल्पना करना बहुत कठिन है क्योंकि हम देश और काल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की कल्पना करते हैं और हमारे लिये चीजें उत्तरोत्तर होती हैं, एक चीज दूसरी के बाद आती है, लेकिन अगर एक समग्र गति की कल्पना करना संभव होता जो सभी चीजों को अपने अंदर समा ले, जो एक ही साथ आदि और अंत हो, जिसमें हर चीज आ जाये तो यह लौटना काल में लौटना नहीं होगा, वह होगा चेतना में लौटना। मैं भला इसे तुम्हें कैसे समझाऊं ? प्रेम का अपने उद्‌गम की ओर लौटना, सामान्य रूप से तादात्म्य का आनंद होने की जगह, वह स्पष्ट रूप से ऐक्य का आनंद हो जाता है। अगर तुम शुद्ध मनोवैज्ञानिक दृष्टि-बिंदु से देखो तो यहां चेतना की समृद्धि होती है जो विश्व में प्राप्त किये गये अनुभवों से आती है। मतलब यह कि इसमें पदार्थ की समृद्धि और चेतना की बहुलता होती है जो अभिव्यक्त विश्व के अभाव में न आती। यही सबसे अधिक तर्क-संगत व्याख्या और सृष्टि का अधिक-से-अधिक बुद्धिसंगत कारण है।

*

वस्तुतः पृथकता के भाव के गायब होने के लिये तुम्हें पहले अपने अंदर पूर्ण तादात्म्य का अनुभव करना चाहिये; और एक बार यह पूर्ण तादात्म्य प्राप्त हो जाये तो सारी कहानी समाप्त हो जायेगी और कहने के लिये और कुछ न बचेगा। इसीलिये कहा जाता है कि विश्व में अगर सृष्टि भगवान् के साथ पूर्ण तादात्म्य प्राप्त कर ले तो फिर सृष्टि ही न रहेगी . . .।

अतः एक ही समाधान है, वह है क्रीड़ा में भी आनंद को पाना, इस विनिमय में, जिसमें तुम देते भी हो और लेते भी हो, जिसमें एक दो प्रतीत होता है; और इसीलिये वे द्वैत बनाये रखते हैं।

अन्यथा तादात्म्य में तादात्म्य के सिवा कुछ नहीं रहता। अगर तादात्म्य पूर्ण और समग्र हो तो फिर विषय-निष्ठता नहीं रहती।

प्रेम की कहानी के बारे में बोलते हुए कहीं पर मैंने कहा था कि वह तादात्म्य के आनंद से शुरू होती है और सृष्टि की परिधि पूरा करने के बाद ऐक्य के आनंद में समाप्त होती है। अगर परिधि न होती तो ऐक्य का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आनंद भी कभी न होता, केवल तादात्म्य का आनंद होता, अगर परिधि न होती तो ऐक्य होता ही नहीं। यह शायद है तो कुछ सूक्ष्म परंतु है तथ्य। शायद पूरी परिधि इसीलिये बनायी गयी थी कि तादात्म्य का आनंद अपनी परिपूर्णता और अपना मुकुट ऐक्य के आनंद में पा ले . . .।

शब्दों से और अपने मस्तिष्क से समझने की कोशिश न करो क्योंकि ये दो शब्द (पूर्ण तादात्म्य और पूर्ण ऐक्य) एकदम भिन्न अनुभूतियों को प्रकट करते हैं। फिर भी इनका परिणाम एक ही है लेकिन एक उन सब चीजों से समृद्ध है जो दूसरे में नहीं थीं—समस्त अनुभूति की समृद्धि, समस्त वैश्व अनुभव।

सुख की खोज

कहा जाता है कि मनुष्य के सभी कर्मों और प्रयासों के पीछे प्रेरक शक्ति है सुख की खोज। क्या यह ठीक है ?

यह एक आसानी से किया गया मनोवैज्ञानिक प्रस्ताव है जो तथ्यों की अवहेलना करने से ही टिक सकता है। अगर तुम यह कहो कि पर्दे के पीछे छिपा आनंद गति देनेवाली शक्ति है "प्रेरक शक्ति" नहीं, तो यह हो सकता है परंतु यह तत्त्वज्ञान है, मनोवैज्ञानिक साधारणीकरण नहीं। जब कोई कम्यूनिस्ट नाज़ी के नज़रबंदी शिविर में यातनाएं सहता है तो आनंद या सुख के नहीं बल्कि किसी और चीज के लिये जो उसे आनंद या सुख के लिये उदासीन बना देती है या उसे इन चीजों के अभाव का सामना करने के लिये या एकदम विरोधी चीज के लिये बाधित करती है, वह चाहे जितनी कष्टकर क्यों न हो।

लेकिन स्पष्ट ही है कि अधिकतर लोग सुख की टोह में होते हैं और उसे ही अपने जीवन का लक्ष्य बना लेते हैं ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह कहना कि सभी मनुष्य सदा ऐसा सुख चाहते हैं जिसमें दुःख का दागतक न हो—यह बहुत अधिक व्यापक सामान्यीकरण है, जो चीज आसानी से स्वीकार की जा सकती है वह यह है कि यह मानव स्वभाव की एक बहुत बलवान् प्रवृत्ति है। लेकिन ऐसे भी बहुत-से लोग हैं जो सुख के पीछे नहीं भागते और यह नहीं मानते कि वही उनके जीवन का सच्चा लक्ष्य है। और यह ख्याल रखो कि केवल मानव भौतिक चेतना ही सुख की खोज करती है। मानव प्राण ऐसे सुख को अस्वीकार कर देता है जिसमें दुःख का पुट न हो, वह उसे एकरस और उबाऊ स्थिति मानता है। अगर वह उसे स्वीकार कर भी ले तो कुछ समय बाद वह उसके चिह्नों को भी लात मार देता है और किसी नये कष्टप्रद या जोखिम भरे साहस-कार्य की ओर चला जाता है। उच्चतर प्राण अपने आवेशों, शक्ति की खोज, महत्त्वाकांक्षा, ख्याति या किसी अन्य उद्देश्य को संतुष्ट करने के लिये सुख की बलि देने को तैयार होता है। अगर तुम कहो कि यह शक्ति, ख्याति आदि से मिलनेवाले सुख के कारण है तो यह भी व्यापक सत्य नहीं है। शक्ति सब कुछ दे सकती है, पर सुख नहीं। यह अपने स्वभाव से ही बहुत श्रम-साध्य है और उसे पाना, रखना या उपयोग में लाना बहुत कठिन है—हम यहां निस्संदेह सामान्य अर्थ में "शक्ति" का उपयोग कर रहे हैं। आदमी को यह पता हो सकता है कि वह इस जीवन में कभी ख्याति नहीं पा सकता फिर भी वह मृत्यूत्तर ख्याति या उसकी संभावना के लिये कार्य कर सकता है। हो सकता है कि उसे मालूम हो कि उसके आवेशों की तुष्टि सुख तो नहीं, और सब कुछ, दुःख, यातना, विनाश ला सकती है, फिर भी वह अपने आवेश का अनुसरण करेगा। इसी भांति मन और विशालतर प्राण भी सुख की तलाश में नहीं बंधे होते। वह सत्य अथवा अपने उद्देश्य की विजय की खोज कर सकता है। इस सारे को एक कठोर रचना में बांध देना घटिया मनोविज्ञान प्रतीत होता है। न तो प्रकृति न वस्तुओं में विशाल आत्मा इतनी सीमित या एकपथगामी होती है।

(क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सृष्टि

यदि भगवान्, जो पूर्ण प्रेममय हैं, सृष्टि के मूल हैं तो फिर पृथ्वी में ये जो बुराइयां भरी पड़ी हैं, वे कहां से आयीं ?

सब कुछ भगवान् में से ही आया है; किंतु उस 'एक चेतना' ने, परमात्मा ने जगत् को सीधा अपने-आपमें से नहीं रचा है; एक 'शक्ति' उसमें से निकली और अपने कार्य की अनेक सीढ़ियों से होती हुई नीचे उतरी, अनेक मार्गों से गुजरी। अनेक मध्यस्थ सृष्टिकर्ता या आकार-निर्माता—उनका यही नाम अधिक उपयुक्त होगा—हैं जिन्होंने सृष्टि की रचना में प्रधान भाग लिया है। ये मध्यवर्ती प्रतिनिधि हैं, जिन्हें मैं सृष्टिकर्ता की अपेक्षा आकार-निर्माता कहना अधिक पसंद करती हूं; क्योंकि इन्होंने जड़-तत्त्व को केवल आकार, प्रवृत्ति और स्वभाव ही दिया है। ये आकार-निर्माता अनेक हुए हैं, और इनमें से कइयों ने सामंजस्यपूर्ण तथा कल्याणकारी वस्तुओं का निर्माण किया है तो कइयों ने हानिकारक और बुरी वस्तुएं गढ़ी हैं। और कुछ तो बनानेवालों की अपेक्षा बिगाड़नेवाले ही हुए हैं, कारण जिस वस्तु को दूसरों ने अच्छे रूप में आरंभ किया था उसे उन्होंने हस्तक्षेप करके बिगाड़ डाला।

क्या यह ठीक नहीं है कि सृष्टि में, जो अनेकविध जगतों का समूह है, हमारा भौतिक जगत् सबसे नीची श्रेणी का है ?

हमारा अत्यंत स्थूल जगत् है, परंतु यह स्थूल होने के कारण ही "नीची श्रेणी" का नहीं है; यदि यह नीची श्रेणी का है तो इसलिये कि यह अज्ञानमय और अंधकारमय है, न कि इसलिये कि यह स्थूल है। "जड़-तत्त्व" को अज्ञान और अंधकार का पर्यायवाची बना देना भूल है। इसके अतिरिक्त, हम केवल स्थूल-भौतिक जगत् में ही तो नहीं रहते : यह तो उन अनेक जगतों में से एक है जिनमें हम एक साथ निवास करते हैं, एक तरह से यह इन सब जगतों में सबसे अधिक प्रधान है। क्योंकि जड़-तत्त्व का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह जगत् वह बिंदु है जहां सभी जगत् संकेंद्रित होते हैं; यह वह क्षेत्र है जहां सभी जगत् ठोस रूप धारण करते हैं; वह स्थान है जहां सभी जगतों को अभिव्यक्त होना होगा। वर्तमान में यह असामंजस्यपूर्ण और तमोग्रस्त है; किंतु यह तो केवल एक दुर्घटना है, मानों दौड़ का नियम-विरुद्ध आरंभ है। एक दिन यह सुंदर, छन्दोमय, ज्योति से भरपूर हो जायेगा; कारण, यही वह परिपूर्णता है जिसके लिये इसे बनाया गया है।

(श्रीमातृवाणी खंड ३ से)

सोसायटी समाचार

नवंबर और दिसंबर के महीनों में आश्रम के विशेष दिन—

१७ नवंबर—माताजी का शरीर त्याग (१९७३)।
२० नवंबर—माताजी की समाधि का दिन (१९७३)।
२४ नवंबर—श्रीअरविंद का सिद्धि दिवस (१९२६)।
१ दिसंबर—स्कूल का वार्षिकोत्सव।
२ दिसंबर—शारीरिक शिक्षण का वार्षिक प्रदर्शन।
५ दिसंबर—श्रीअरविंद का शरीर त्याग (१९५०)।
९ दिसंबर—श्रीअरविंद की समाधि का दिन (१९५०)।

८ नवंबर से १५ नवंबर तक सोसायटी ऑफिस में सावित्री के अध्ययन शिविर की व्यवस्था प्रो. एम. वी. नाडकर्णी के द्वारा की गयी।

महिला संघ समिति की बैठक सोसायटी आफिस में २१ से २३ नवंबर तक होगी, जिसमें माताजी और श्रीअरविंद के प्रकाश में "कष्ट और उसका समाधान" विषय पर चर्चा होगी।

१७ नवंबर—आश्रम की एक नयी अतिथिशाला, आंध्र भवन का उद्घाटन होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चेतना द्वारा प्रबंध कौशल—प्राचीन भारत के लोकाचार और योग पर आधारित पद्धति के अनुसार, माताजी और श्रीअरविंद के दिये हुए प्रकाश में प्रबंध कौशल का अध्ययन करने और उसके साथ संबंध रखनेवाले विषयों के बारे में शोध-कार्य करने और इस विषय के वीडियो तैयार करने की व्यवस्था की जा रही है। जिन लोगों को इस विषय में रस हो वे श्री विजय पोद्दार, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी—६०५००२ से पत्र-व्यवहार करें।

वीडियो कैसेट—पांच डाक्यूमेंटरी फिल्मों के अंग्रेजी, हिंदी, बंगला, गुजराती, मराठी, तमिल, कन्नड़ और मलयालम में वीडियो तैयार हैं, संस्कृत, ओड़िया और तेलुगु में तैयार हो रहे हैं। इनके विषय हैं, १. श्रीअरविंद के जीवन की झांकी, २. श्रीअरविंदाश्रम, ३. शिक्षा में नये परीक्षण, ४. फूलों की मूक भाषा, ५. फूलों के आध्यात्मिक अर्थ (सब मिलाकर एक घंटा ४५ मिनट) अंग्रेजी का दाम ५७२ और भारतीय भाषाओं में प्रत्येक का ४१६। पैकिंग और डाक खर्च २० रुपये। पता—शब्द, श्रीअरविंदाश्रम पांडिचेरी—६०५००२।

१५ अगस्त को अनेक स्थानों पर नाना प्रकार से श्रीअरविंद जन्म-दिवस मनाया गया। कहीं भाषण हुए तो कहीं कविता पाठ, भजन, गान आदि।

————

मनुष्य गंगा-जमुना बहाते हैं क्योंकि उनके कोई बेटा नहीं हुआ। दूसरे ऐसे हैं जो दिल को मसोसते रहते हैं क्योंकि उनको धन-दौलत नहीं मिली। लेकिन ऐसे कितने हैं जो इसलिये रोते हैं कि उन्हें भगवान् के दर्शन नहीं हुए? जो भगवान् की खोज करता है उसे वे मिल जाते हैं। जो तीव्र अभीप्सा के साथ भगवान् के लिये आंसू बहाता है वह भगवान् को पा चुका है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानसिक तनाव व शारीरिक शक्ति, स्फूर्ति के लिये
सारे परिवार की सुरक्षा का प्राकृतिक साधन

"योगी रसायन" (रजि०)

निर्माता

योगी फार्मेसी प्रा० लि०

लक्सर रोड, हरिद्वार—२४९४०४

(आयुर्वेदिक अनुसंधान एवं निर्माण में अग्रणीय)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

O Lord, awaken in me an ardent desire to know Thee. I aspire that my life may be consecrated to Thy service.

The Mother

Space donated by

Kooverji Devshi & Co., Pvt. Ltd.

FIREX LEADS TO SAFETY

SAFETY LEADS TO PROSPERITY

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुमसे सबसे अधिक मांग की जाती है प्रकाश की ओर मुड़ने में अध्यवसाय की। प्रकाश हम जितना समझते हैं उससे कहीं अधिक हमारे निकट है और किसी भी क्षण उसका मुहूर्त आ सकता है।

— श्रीअरविन्द

029501

सहारनपुर सर्विस स्टेशन

पैट्रोल पम्प, देहरादून रोड

सहारनपुर–२४७००१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Registered with the Registrar of Newspapers for India
No. R. N. 18135/70

REGD. No. M. 8731

दूसरों पर नियंत्रण रखने के लिये स्वयं अपने ऊपर पूर्ण नियंत्रण पाना अनिवार्य शर्त है।

— श्रीमां

With Best Wishes from:

MRS. KOYAL DEORAH CHARITABLE TRUST

28, VARSHA, 69/B, NEPEANSEA ROAD

BOMBAY - 4000 006

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

078501

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar